

# वेद क्यों पढ़ना चाहिये ?

इसलिये कि—

- (१) वेद हिन्दूधर्मकी मूल पुस्तक है।
- (२) वेद मनुष्यजातिकी सबसे प्राचीन पुस्तक है।
- (३) सदाचार, वीरता, परोपकार, देश-सेवा, सत्य, त्याग आदि मनुष्यजातिकी जितनी उच्चतम गुणावली है, सबका वेदमें बड़ा ही सुन्दर विवरण है।
- (४) वेद हमारी जातिके प्राचीन इतिहास, कला, विज्ञान, धर्म-प्रेम, समाज-व्यवस्था, राष्ट्र-धर्म, यज्ञ-रहस्य आदि-आदिको दर्पण-की तरह दिखाता है।

इसलिये जिस प्रकार हर एक ईसाई बाइबिलको और हर एक मुसलमान कुरानको, गाढ़ और खुदाकी विमल वाणी जानकर, अपने पास रखता है, उसी प्रकार ईश्वरका पवित्र उपदेश समझकर वेदको अपने पास रखना हर एक हिन्दूका आवश्यक कर्त्तव्य है।

लज्जाकी बात है कि, जर्मनी, फ्रान्स, अमेरिका, इङ्ग्लैण्ड आदि के विद्वानोंने तो वेदकी सारी पुस्तकोंको छपा डाला और हिन्दीमें एक भी ऋग्वेदका सरल अनुवाद नहीं। इसी अभावकी पूर्तिके लिये हमने “वैदिकपुस्तकमाला” द्वारा सरस-सरल हिन्दीमें चारों वेदोंका अनुवाद कराना निश्चित किया है, जिसका द्वितीय पुष्प आपके सामने है। इसका मूल्य केवल लागत भर २) रु० रखा गया है; क्योंकि इसके प्रधान संरक्षक भारतप्रसिद्ध बनैलीराज्यके अधीश्वर हैं।

॥) देकर “वैदिक-पुस्तकमाला”के स्थायी ग्राहक बननेवालोंको आगे कभी भी डाकखर्च नहीं देना होगा और पुस्तक निकलते ही, सूचना देकर, वी० पी० से, भेज दी जायगी।

# ऋग्वेद-संहिता

( सरल-हिन्दी-टीका-सहित )

द्वितीय अष्टक

टीकाकार

प० रामगोविन्द त्रिवेदी वेदान्तशास्त्री

( “दर्शनपरिचय”, “हिन्दी-विष्णुपुराण”, “राजर्षि प्रह्लाद”, “महासती महालसा” आदिके लेखक,  
“सेनापति”, “विश्वदूत” आदिके भूतपूर्व सम्पादक, “गीताप्रचारक-महामण्डल” (मोरिशस) के  
जन्मदाता, “दक्षिण अफ्रीकन सनातनधर्म-महामण्डल” (हरबन, नेटाल) के भाजीवन  
सभापति, “गंगा” के प्रधान सम्पादक तथा सनातनधर्मके महोपदेशक )

— ❀ श्रीरू ❀ —

प० गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ

( प्राइवेट सेक्रेटरी, बनैली-राज्याधिपति साहित्य-विभूषण कुमार कृष्णानन्द  
सिंह बहादुर तथा “गङ्गा” और “वैदिकपुस्तकमाला” के  
अन्यतम जन्मदाता और सम्पादक )

प्रकाशक

प० गौरीनाथ झा व्याकरणतीर्थ,

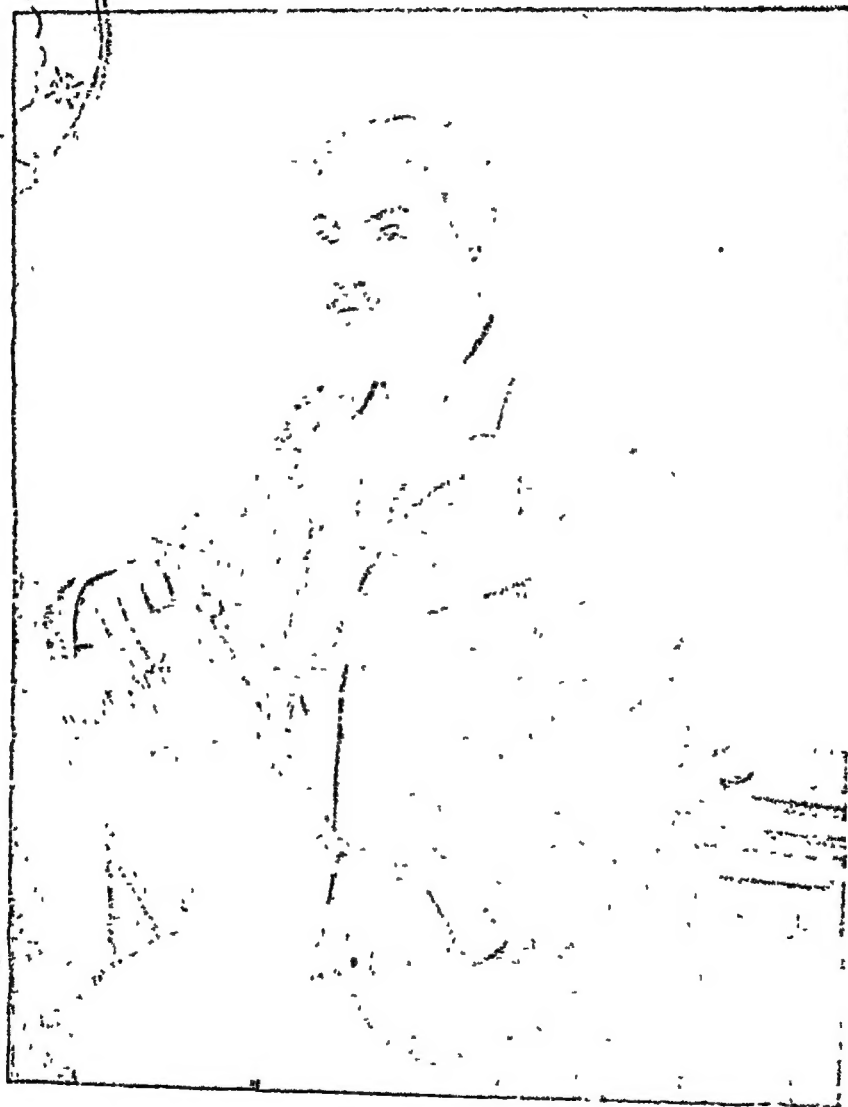
संचालक, “वैदिकपुस्तकमाला”, कृष्णगढ़, सुलतानगञ्ज, भागलपुर

मूल्य २ )

ज्येष्ठ, १९८६ विक्रमीय

{ प्रथम संस्करण

५२००



—ॐ वनेली-नोशा—

राजा कीर्त्यानन्द सिंह बहादुर वी० ए०

# समर्पणा

जिनका हिन्दी-साहित्य-प्रेम भारत-प्रसिद्ध है, जो वैदिक धर्मके अनन्य  
भवत हैं, जिनकी विद्वत्ता और लेखनकलाकी प्रशंसा  
शत मुखसे की जाती है, जिनकी राजशासन-  
निपुणता, सरलता, दानपरायणता और  
सृजना-प्रवीणता आदर्श और  
अनुकरणीय हैं, उन

—०००—

— यन्त्रालय-नरेश, ब्राह्मण-रत्न —

## राजा कीर्त्यानन्द सिंह बहादुर बी० ए०

— \* \* \* —

कमनीय कर-कमलोंमें

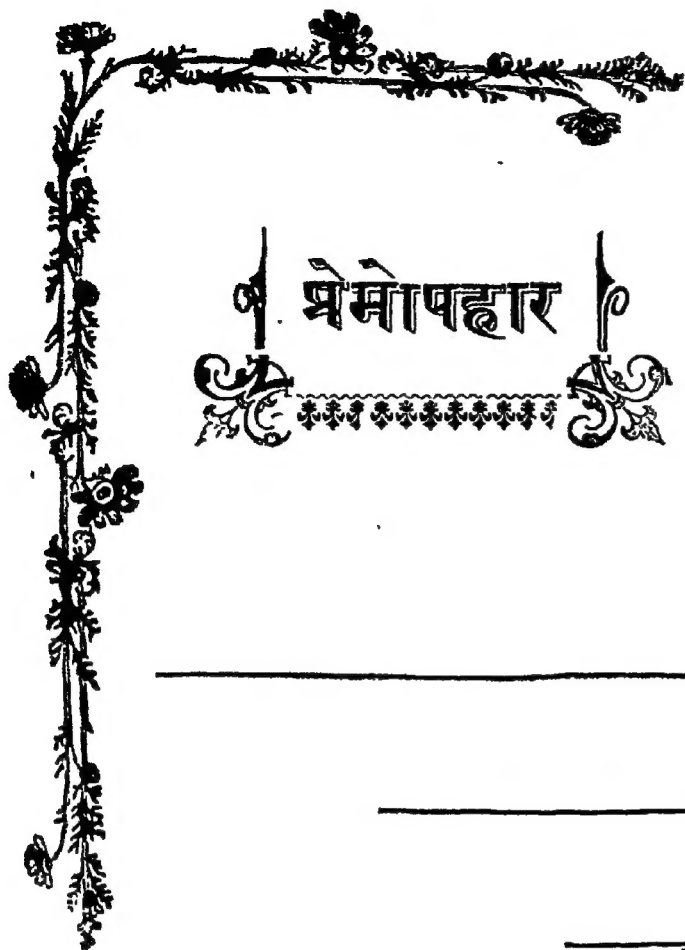
— सादर समर्पित —

— ००० —

— रामगोविन्द त्रिवेदी  
गौरीनाथ झा





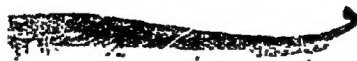


# प्रेमोपहार

---

---

---





## ॥ प्राक् कथन ॥

संसारके प्राचीनतम साहित्यिक ग्रन्थ तीन गिने जाते हैं—वेद, चीनियोंका शुकिंग और पारसियोंको गाथाएँ अथवा अवस्था । प्रकृत विद्यालयकी यूरोपियनोंने इन तीनोंका यथेष्ट मन्थन किया है । इनपर, उन्होंने, लाखों रुपये खर्च किये हैं, कितने ही आम्बोचनाएँ—प्रत्यालोचनाएँ और भाष्य-टीकाएँ लिखी हैं । कह्योने तो एक-एक शब्दका विदलेपन और निर्लेपन करनेमें महीनों बिना छोड़े हैं ! इन ग्रन्थोंके बलपर उन्होंने तुलनात्मक देवता-विज्ञान और भाषा-विज्ञान नामक नवीन शास्त्रोंको भाग्यशून्य अथवा पुष्पिन किया है ।

सबको तो मही; परन्तु अधिकांश विद्वानोंका राय है कि, उक्त तीनोंमें वेद सबसे प्राचीन हैं । वेदोंमें भी ऋग्वेद प्राचीनतम है । मानवजातिके प्राथमिक समाजकी माड़ी पररानेके लिये ऋग्वेदसे बढ़कर कोई वैध नहीं है । मनुष्यका क्रमिक-विकास-रहस्य जाननेके लिये ऋग्वेद कुञ्ज है । संसारकी सर्प-प्रथम विजेता जाति ( आर्यजाति, जिसे यूरोपियन भी अतना पूज्य कहते हैं ) को तो मारी पुद्गविद्या, निखिल धर्म-कर्म, आचार-विचार और सभ्यता-संस्कृतिका ऋग्वेद धार्मिक कोष ही माना जाता है । बल्कि संसारका सच्चा आदिम इतिहास जाननेके लिये ऋग्वेद दीप-स्तम्भ है ।

ये ही सब कारण हैं, जिनसे प्रेरित होकर प्रचण्ड विद्यालयकी यूरोपियनोंने ऋग्वेदके लिये, उसका तत्त्व जाननेके लिये, समय, धन, शक्ति और द्रव्यका अपार और सार्थक व्यय किया है । राय और प्रयत्नफिज्ज जैसे कितने ही विद्वानोंने तो वेद-परिक्षाक्रममें अपना जीवन ही खपा दिया था ! यूरोपियनोंके सिवा संसारके अन्य देशों और भारतके भी कितने ही विद्वान्, उक्त कारणोंसे ही, ऋग्वेदके सामने सिर नवाते हैं । परन्तु हिन्दुओंके लिये इन कारणोंके सिवा एक और भी कारण है, जिसके लिये हिन्दू वेदोंको प्राणके समान मानते हैं । वेद हमारे धर्म-ग्रन्थ भी हैं । हमारे दर्शन, धर्मशास्त्र, पुराण आदि इन वेदोंकी व्याख्याएँ हैं—“वेदा मूलम्”—मूल धर्म-ग्रन्थ वेद ही हैं । इस नाते भी जो श्रद्धा ईसाइयों और मुसलमानोंका बाइबिल और कुरानपर है, वेदोंपर यह प्रत्येक हिन्दूकी है । परन्तु वेदोंकी परावरी अन्य ग्रन्थोंसे नहीं की जा सकती; क्योंकि वेद मूल धर्म-ग्रन्थ होनेके सिवा विह्वकी सर्प-श्रेष्ठ आर्यजातिका वास्तविक इतिहास भी हैं । यही कारण है कि, सीमांसा, सांख्य आदि जैसे अनीदवरघादी शास्त्र भी, अपनी अर्च्छेष्ट श्रद्धाके कारण, वेदोंको अपौरुषेय और नित्यतक मानते हैं । धर्म-शास्त्र-ग्रन्थोंमें तो वेदज्ञानशून्य हिन्दूका सामाजिक बहिष्कारतक लिखा हुआ है । प्रत्येक द्विजके लिये वेदाध्ययन अनिवार्य माना गया है ।

शोक है कि, ऐसे अमूल्य ग्रन्थके ज्ञानसे हम वञ्चित हो रहे हैं । यही कारण है कि, हम हर तरहसे पराधकम्बी, दरिद्र और दुःखी बन गये हैं । भ्रान्त रहे, वेदके अध्ययन और प्रचारकी ओरसे हमारी यह बड़ासीनता हमें रसातल भेज देगी ।

परन्तु इस उदासीनताके सिवा वेद-प्रचारमें एक दूसरी जवर्द्धत बाधा भी है। वह है टोका-ग्रन्थोंकी महार्घता। सम्पूर्ण ऋग्वेदपर केवल सायणाचार्यका भाष्य मिलता है और उसका मूल्य १५०) २०से कम कहीं भी नहीं है। भारतको राष्ट्र-भाषा हिन्दीमें भी उसका आजतक अनुवाद नहीं हुआ है—यह और दुःखकी बात है। इसी समान्तक अभावकी पूर्तिके लिये बनैलीराज्याधिपति साहित्य-विभूषण कुमार कृष्णानन्द सिंह बहादुरकी सशयतासे “वैदिकपुस्तकमाला” की स्थापना को गयो, जिसमें सर्व-प्रथम ऋग्वेदके सम्पूर्ण सायण-भाष्यका संक्षिप्त हिन्दी-अनुवाद निकालना निश्चय किया गया। इसी निश्चयके अनुसार, कई महाने हुए, ऋग्वेदके आठ अष्टकोंमेंसे प्रथम अष्टक प्रकाशित किया गया था। प्रसन्नताकी बात है कि, प्रथम अष्टकको देश और विदेशके पिट्टानोंने खूब पसन्द किया। ब्रिटिश म्युजियम (लण्डन) के डा० बर्नेट, छुरे (इंग्लैण्ड) के डा० प्रियसन, ओरियण्टल स्कूल (लण्डन) के प्रो० रैप्सन आदि तथा चीनके “वर्ल्ड फिक्-रेशन” ने प्रथम अष्टकको बड़ी प्रशंसा की और “बाम्बे क्रानिकल”, “हिन्दू”, “न्यू इण्डिया” जैसे अँग्रेजीके विख्यात पत्रों तथा “प्रताप”, “आज”, “माधुरी” जैसी प्रतिष्ठित हिन्दी-पत्रपत्रिकाओंने बढ़ियासे बढ़िया समालोचनाएँ छपीं।

आज द्वितीय अष्टक भी आपके सामने है। यह भी प्रथम अष्टककी ही तरह, कई रंगीन चित्रों, टिप्पणियों, कई ज्ञातव्य विषयों और हिन्दी-अनुवादसे सुसज्जित किया गया है। इसका भी मूल्य २) २० ही रखा गया है। यदि यही ग्रन्थ विलायतमें छपता, तो कम-से-कम १०)५० मूल्य रखा जाता। प्रो० मैकडानलके द्वारा प्रकाशित, इससे भी छोटी, शौनक-की सर्वानुक्रमणीका मूल्य १८) २० है। जो हो, जहाँ सायण-भाष्य १५०) में मिलता है, वहाँ उसका, सम्पूर्ण आठो अष्टकोंका संक्षिप्त, हिन्दी-अनुवाद हमने सिर्फ १६) २०में देना निश्चित किया है। यदि इतना समय और शक्तिका व्यय न होता, तो कदाचिद इससे कम मूल्यमें भी हम इस पुस्तकको देते। इसपर भी “वैदिकपुस्तकमाला” और हमारे द्वारा सम्पादित “गंगा” मासिक पत्रिकाके माहोंसे ढाक खर्च नहीं लिया जाता। इस पुस्तक-मालाका उद्देश्य व्यापार करना नहीं। अनुवाद-कार्यके लिये १०००) २०से अधिककी तो हमें पुस्तकें ही मँगानी पड़ी हैं।

जिस “वेदरहस्य”के लिखे जानेको सूचना प्रथम अष्टकमें दी गयी थी, वह बहुत कुछ लिखा जा चुका है। सम्पूर्ण होनेपर उसके प्रकाशनमें हाथ लगेगा। हमने जो “गंगा” का “वेदाङ्क” निकाला है, उसमें “वेदरहस्य” की अनेक बातें भी आयी हैं।

तृतीय अष्टक छप रहा है। छपाई-सफाईमें प्रथम और द्वितीय अष्टकोंसे वह अधिक सुन्दर होगा।

कृष्णगढ़, सुलतानगंज, भागलपुर

बट्टाचित्री, १९८९ विक्रमीय

—रामगोविन्द त्रिवेदी

गौरीनाथ झा

## द्वितीय अष्टककी जानने योग्य बातें

प्रथम अष्टकमें यह शीर्षक नहीं था; परन्तु उसमें अत्यधिक टिप्पनियाँ देकर स्थूल-स्थूलपर ऐसी बातें लिखी गयीं, जिनका संग्रह भूमिकाके पास छापा गया था। इस अष्टकमें टिप्पनियाँ कम देकर जानने योग्य बातोंका, पाठकोंके समीपके लिये, यहाँ संग्रह कर दिया गया है। इस अष्टकमें प्रथम मण्डलके दोष सूक्तोंके अतिरिक्त सम्पूर्ण द्वितीय मण्डल तथा तृतीय मण्डलके छ सूक्तोंका भी समावेश है; इसलिये प्रत्येक जानने योग्य विषयके आगे मण्डल, सूक्त और मन्त्रकी संख्याएँ दी गयी हैं। प्रथम मण्डलके १२१ सूक्तोंमें प्रथम अष्टक समाप्त हुआ है। इसलिये १ (मण्डल) के १२१ सूक्तके पहलेकी संख्याओंका जहाँ उल्लेख है, वहाँ प्रथम अष्टक देखना चाहिये।

१।१२२।१—रुद्रके लिये अष्ट शब्द आया है। सब मिलकर देव, राजा, ऋत्विक् और स्वर्गलोकके लिये द्वितीय अष्टकमें दस बार और प्रथम अष्टकमें सात बार अष्ट शब्दका प्रयोग हुआ है। प्रथम अष्टक (१।५४।३) देखिये।

१।१२२।५—घोषाके कोढ़की बात। १।११७।७ भी देखिये।

१।१२२।१२—इष्टादव राजाका उल्लेख है। के० पु०० ब्रजजीके मतसे यहाँ इष्टादव, विष्टारूप, गुष्टारूप वा कुष्टारूप जेन्द-धर्मके प्रचारक थे।

१।१२३।४—अहजाका विवरण है। १।३०।२२ भी देखिये।

१।१२३।८—सूर्यकी दैनिक गतिका विवरण।

१।१२६।७—गन्धारदेवाकी स्त्रीका उल्लेख।

१।१२८।६—सूर्यका सवर्ण-धन धारण करना। १।२२।५ भी देखिये।

१।१३०।७—दिवोदासके लिये इन्द्रका ९९ नगरोंका अष्ट करना।

१।१३०।८—इसमें सायणाचार्यने दस हजार अनुशरोवाके कृष्ण नामके असुरका उल्लेख किया है।

१।१३१।३—पुरुषके साथ स्त्रीका यज्ञमें सम्मिलित होना। इसमें स्वर्गकी भी बात है।

१।१३२।२—स्वर्ग-निवास।

१।१३३।५—पिशाच और राक्षस।

१।१२९—१३३ तकके सूक्तोंमें यूरोपियन वेदाम्बासी आर्योंके साथ कोलों (आदि द्रविड़ों) और द्रविड़ोंके युद्धका आभास पाते हैं।

१।१३८।४—सूर्यका वाहन छाग।

१।१३९।११—तैत्तिरीय देवता।

१।१५४।१—वामनावतार।

१।१५५।६—चौरानवे कालावयव ये हैं—संवत्सर, दो अयन पाँच ऋतु (हेमन्त और शिशिर एकमें), बारह चैत्रोत्पक्ष, तीस अश्विना, आठ पक्ष और न राशियाँ। म्योरके मतसे “चतुर्भिः नवर्ति” का अर्थ है नक्षत्रका चौगुना अर्थात् वर्षके ३६० दिन

१।१५८।३—तुष राजाके पुत्र भुज्युकी समुद्र-यात्राका उल्लेख १।११६।३ भी देखिये।

१।१६१।१—सधन्वा नामक अङ्गिरा मनुष्यके पुत्र देवता बन जाना। छठे मंत्रमें और भी उल्लेख है। १।२०।२—४ और १।११०।३—५ भी ऋग्वेदकी विशेष बातें हैं।

१।१६२—पूरे सूक्तमें अदवमेघ-यज्ञका विस्तृत विवरण है। अदवमांसका विषय दर्शनीय है।

६३।२—यमराजका उल्लेख। १।३५।६ में भी उल्लेख है।

१।१६४।२—सूर्यके सात घोड़े और किरण। १ भी देखिये।

१।१६४।६—परमात्माका घणन।

१।१६४।११—बारह राशियों और ३६० दिनों तथा ३६ राशियोंका उल्लेख।

१।१६४।१२—बारह मास। इसमें दक्षिणायन और यणकी भी कुछ बर्चा है।

१।१६४।२०—परमात्माका उल्लेख।

१।१६४।३०—जीवात्माका अमरत्व।

१।१६४।४४—क्षौरकर्मकर्ताकी चर्चा ।

१।१६४।४५—ब्राह्मणका उल्लेख ।

१।१६४—यह समस्त सूक्त पढ़ने योग्य है । यह सूक्त अथर्व-वेदमें भी है । इस सूक्तकेसे विचार दशम मण्डलमें ही अधिक हैं ।

१।१९१।—१४ और १५ में मयूर और नकुलका उल्लेख ।

२।२।१०—चार वर्णोंका उल्लेख । १।७।९ में भी चारों वर्णोंका उल्लेख है ।

२।३।६—स्त्रियोंका कपड़े बुनना । दो स्त्रियाँ तामा-वाना भी करती थीं ।

२।७।१—भारत शब्दका उल्लेख ।

२।११।१७—दाढ़ीमें लगे सोमरसको झाड़ना ।

२।१२।१२—सूर्यकी सात किरणों या रंगोंकी चर्चा ।

२।१५।५—पक्ष्णी, इन्द्रधुनि अथवा इरावती नदीका उल्लेख ।

२।१५।५—अन्धे और लंगड़े परावृज ऋषिका कई कन्याओंके साथ विवाह । १।११२।८ भी देखिये ।

२।१७।७—आजोवन अधिवाहिता कन्याका पितृसम्पत्तिकी अधिकारिणी बनना ।

२।१९।५—पुतल ऋषिकी चर्चा । १।६१।१५ भी देखिये ।

२।२०।७—काळे रंगकी द्रविड़जातिका उल्लेख ।

२।२३।२—वृष अक्षरके लिये देव शब्दका प्रयोग । १।३२।१२ भी देखिये ।

२।२३।३—१७—कोलों ( आदि द्रविड़ों ) और द्रविड़ोंके उपद्रव तथा शत्रुताका उल्लेख ।

२।२७।१—छ सूर्योंका नाम—द्वादशका नहीं । १।१४।३ भी देखिये ।

२।२७।१०—सौ वर्षकी परमायु ।

२।२८।९—ऋण-ग्रस्तका परिताप ।

२।२७—२९—दोनों सूक्त भगवद्गीताके लिये पठनीय हैं ।

२।२९।१—गुप्त-प्रसविनी स्त्रीका उल्लेख ।

२।३०।८—अक्षर-पुरोहित ब्राह्मणमर्कका उल्लेख ।

२।३२।४—कपड़ेपर धूल-धूटे काढ़ना ।

२।३४।३—सोनेके मुकुट या शिरस्त्राणका वर्णन ।

२।३४।१३—क्षोणी (क्षीणा-विशेष) नामके वाजेका उल्लेख ।

२।३५।६—इन्द्रके उच्चैःश्रवा नामक घोड़ेका उल्लेख ।

२।३८।४—कपड़े बुननेवालों स्त्रियों ।

२।३९।३—चक्रवाकका उल्लेख ।

२।३९।४—कवचका उल्लेख । १।२५।१३ भी देखिये ।

२।४१।५—सहस्र स्तम्भवाले भवनका उल्लेख ।

२।४२—४३—सूक्तोंके देवता शकुनि या कपिश्रुल-रूपी इन्द्र हैं । पक्षियोंका अशुभ ध्वनि सुननेपर इन दोनों सूक्तोंका जप किया जाता है ।

३।१।१०—स्वर्ग और पृथिवीके पति सूर्यदेव हैं ; इसलिये धावापृथिवी सपत्नी कहे जाते हैं ।

३।४।८—भारतो और सारस्वत शब्दोंका उल्लेख ।

३।६।९—तीस देवोंका उल्लेख । १।३४।११ और १।४५।२ भी देखिये ।



## सायणाचार्यके मतानुसार द्वितीय अष्टकमें पौराणिक कथाएँ

द्वितीय अष्टकमें प्रथम मण्डलके १२ से १९१ सूक्त, द्वितीय मण्डलके सप्त (४३) सूक्त और तृतीय मण्डलके ६ सूक्तसक हैं। हर एक कथाके आगे मण्डल, सूक्त और मंत्रकी संख्याएँ दी गयी हैं।

१ सुप्तोद-प्रस्ता घोषा	१११२१५
२ इष्टादप और इष्टरदिन नामक राजाकी शश्वत्तारक	
मेताओं ( पयगादि ) में दास्यता	११२२११३
३ मयानार राजाके और अवधत्त राजाके	
पुत्रोंका उपग्रह	११२२११५
४ कथीपात्रका पिपाठ	११२५१
५ त्वनप राजा द्वारा कथीपात्रकी प्रशस्त देहज	११२५१३-५
६ लोमशाने माय त्वनपका सम्भोग	११२५१४-७
७ दाम्बरके पिपादाने लिये इन्द्रका दिव्यशसके	
लिये माहाप्य	११३०१७
८ संश्रमतीके तटपर इन्द्रने एज्यासुरकी काली	
धनदा उषेदी	११३०१८
९ उटपर चक्रकर युद्ध करना	११३०१२
१० क्षत्रियोंका दीर्घ जीवन	११३०१९
११ गर्भिणी श्रीर्धतमाकी माताके माय	
वृद्धन्पतिका सम्भोग	११४७१३
१२ रातदण्डकी दुग्धदन्वा गौका दुग्धधनी होना	११५३१३
१३ धामनावनार	११५४११
१४ अदिषनीकुमारोंका औषध-ज्ञान	११५५१४
१५ आनायों द्वारा एक वृद्धकी घोटी-घोटी	
काटा जाना	११५८१५ और ११५९१२
१६ सधन्वाके पुत्रोंद्वारा चमयका बनाया जाना	११६१११
१७ अदधर्मासका उपभोग	११६२ पूरा सूक्त
१८ इन्द्र और मरुद्गणका मनोरञ्जक संलाप	११६५
	पूरा सूक्त
१९ मरुद्गणकी शृंगार-प्रियता	११६६१२०
२० पृथिवी द्वारा महासंग्रामके लिये मरुद्गणका	
प्रस्तुत होना	११६८१९
२१ इन्द्र द्वारा अत्यन्त बड़ सात पुरियोंका	
तोड़ा जाना	११७४१२

२२ दुर्योणि राजाके लिये इन्द्र द्वारा कुयवका वध	११७४१७
२३ अगस्त्य और लोपासुद्राका कामपूण सम्भाषण	
	११७९ पूरा सूक्त
२४ दूधते हुप, सुभसुत्रके लिये अदिषनीकुमारोंने	
समुद्रमें नौका दौड़ायी थी	११८२१५-६
२५ पिपाक्त सरिच्छपण	११९१ पूरा
२६ इन्द्रने त्रितोके बन्धुत्वमें त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपका	
वध किया	२११११२
२७ इन्द्रका दस सौ घोड़ोंपर प्रभुत्व। दभीति	
नरपिका दस्युओं द्वारा घ्राण पाना	२१३१९
२८ निन्यानये बाहुवाला उरण	२१४१४
२९ शुष्णका स्कन्ध-हीन होकर मरना	२१४१५
३० घर्चके सौ हजार पुत्र	२१४१६
३१ इन्द्रने सिन्धुकी उत्तरवाही किया	२१५१६
३२ अन्धे और लंगड़े परावृजके विवाहके लिये	
कन्याएँ आयीं; पर परावृजको इस प्रकारका	
देखकर भाग गयीं; पीछे परावृज भी दौड़े—	
इसी क्षण इन्द्रकी क्रुपासे वे सुन्दर	
अङ्गवाले हो गये	२१५१७
३३ इन्द्रने सुसुर और धुनि अश्वोंको दीर्घ-	
निद्रित करके विनष्ट किया	२१५१९
३४ इन्द्र द्वारा पर्वतोंका परास्त होना	२१७१५
३५ अनेकानेक घोड़ोंवाले इन्द्र	२१८१५-६
३६ अंगिरा लोगोंको गो-प्राप्ति	२१८०१५
३७ गौओंका अन्वेपण करते समय अंगिरा	
गौओंके विकट मार्ग	२१८१६-७
३८ रुद्रदेवका दवा तैयार करना	२१३१७
३९ रुद्र द्वारा पृथ्वीके उदरसे मरुतोंका जन्म	२१३४५
४० रुद्र द्वारा पृथ्वीके अधोभागका दोहन	२१३४१०
४१ समुद्रसे उच्चैःश्रवाका जन्म	२१३५१६
४२ स्त्री द्वारा वरुणका हुना जाना	२१३८४
४३ पक्षियों द्वारा शकुन	२१४२-४३
४४ जन्मके साथ ही अग्निने शुषनोंको प्रकाशित	
किया	३१४२-७





## देव-विवरण

इला (भू-देवी)	१।१२८।१	आमुक्षा	१।१८६।१०
	१।१४२।९	इन्द्र और त्वष्टाकी वाहुता २।११।१९। तैत्तिरीय संहिता (२।९।१)	
	१।१८६।१		और वातपथ ब्राह्मण (१।६।३)
	१।१८८।८		में भी यह कथा है।
	२।१।११		
आसी देवता त्रित और त्रैतन	३।१।२३	शका, सिनीवालो, गुंगु	२।३२।५-८
	३।४।८	मस्तोका पाहन पृथती वा	
	१।१४२ सूक्त	विन्दु-विहित मृग	२।३४।३ । प्रथम अष्टक (१।३।१२)
	१।१५८।४-५ । प्रथम अष्टक		भी देखिये।
	(१।५२।५) भी देखिये।		
रोदसी (विष्णुदेवता)	१।१६७।६	गरुडमान् (गरुड)	१।१६४।४६
इन्द्रके साथ मरुद्गण	१।७।१।४	असुर	१।१२२।१
अहिर्बुध्न [रुद्र] वा अहि	१।१८६।९ । रुद्रके सम्बन्धमें	३३ देवता	( १।१३९ और
	१।४३ सूक्त देखिये।		( ३।६।९
	२।३।१।६		



## वैदिक पुस्तकमाला की नियमावली

- ( १ ) इस मालामें हिन्दी-अनुवाद-सहित चारो वेद और विशेषतः वैदिक ग्रन्थ ही गूँथे जायेंगे।
- ( २ ) ॥ मेजकर मालाके स्थायी ग्राहक बननेवालों और "गंगा" के ग्राहकोंको किसी भी पुस्तक पर डाकखर्च नहीं देना पड़ेगा।
- ( ३ ) स्थायी ग्राहकोंको मालामें प्रकाशित सभी पुस्तकोंको खरीदना होगा।
- ( ४ ) मालामें प्रकाशित पुस्तकें, सूचना देकर बी० पो० से, भेजी जायेंगी।

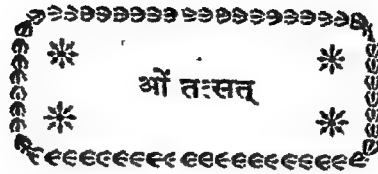
मैनेजर, वैदिक-पुस्तकमाला, कृष्णागढ़, सुलतानगंज, भागलपुर



# ऋग्वेद-संहिता



वेद-कालीन ऋष्याश्रम



# ऋग्वेद-संहिता

( हिन्दी टीका और टिप्पणियोंसे संयुक्त )

२ अष्टक । १ ऋण्डल । १ अध्याय । १८ अनुवाक ।

१२२ सूक्त । विश्वेदेव देवता । यहाँसे १२५ सूक्तक कक्षीवान् ऋषि और ऋष्टुप् छन्द हैं ।

प्रवः पान्तं रघुमन्यवोन्धो यज्ञं रुद्राय मंहिषे भरध्वम् ।

दिवो अस्तोष्यसुरस्य वीरैरिषुध्येव मरुतो रोदस्योः ॥१॥

( क्रोध-विरहित शक्तिको, तुम लोग कर्म फलवाता रुद्रदेवको पालनशील और यज्ञ-साधन रघु' अर्पण करो । मैं भी उन सुलोकके अस्त्र (देव) और उनके अनुचर एवं स्वर्ग और पृथिवीके मध्यस्थवासी मरुद्गणकी स्तुति करता हूँ । जैसे तूणीर द्वारा शत्रुओंको निरस्त किया जाता है, वैसे ही रुद्र भी वीर मरुत्तोंके द्वारा शत्रुओंको निरस्त करते हैं ।

पत्नीच पूर्वहृतिं वावृधध्या उषासानका पुरुधा विदामे ।  
 स्तरीर्नात्कं न्युतं वसाना सूर्यस्य श्रिया सुदृशी हिरण्यैः ॥२॥  
 ममत्तु नः परिज्ज्मावसर्द्धा ममत्तु वातो अपां वृषणवान् ।  
 शिशितमिन्द्रापर्वता युवं नस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवाः ॥३॥  
 उतत्या मे यशसा श्वेतनायै व्यन्ता पान्तौशिजो हुवध्यै ।  
 प्र वो नपातमपां कृणुध्वं प्र मातरा राक्षिपनसयायोः ॥४॥  
 आ वो रुवण्युमौशिजो हुवध्यै घोषेव शंसमर्जुनस्य नशे ।  
 प्र वः पूष्णे दावनआँ अच्छा वोचेय वसुतातिमघ्नेः ॥५॥  
 श्र तं मे मित्रावरुणाहर्षमोत श्रुतं सद्ने विश्वतः सीम् ।  
 श्रोतु नः श्रोतुरातिः सुश्रोतुः सुक्षेत्रा सिन्धुरद्भिः ॥६॥  
 स्तुपे सा वां वरुण मित्र रातिर्गवां शता पृक्षयामेपु पञ्चे ।  
 श्रुतरथे प्रियरथे दधानाः सद्यः पुष्टिं निरुन्धानासो अगमन् ॥७॥

२ जैसे स्वामीके प्रथम आह्वानपर पत्नी स्त्री आती है, वैसे ही अहोरात्र-देवता नानाविध स्तुतियों द्वारा स्तुत होकर हमारे प्रथम आह्वानपर शीघ्र आवें । अग्नि-मर्दन सूर्यकी तरह उषादेवी हिरण्यवर्ण किरणोंसे युक्त होकर और विशाल रूप धारण कर सूर्यकी शोभासे शोभन हों ।

३ वसनयोग्य और सर्वलोगामी सूर्य हमारी प्रसन्नता बढ़ावें । वारि-वर्षक वायु हमारा आनन्द बढ़ावें । इन्द्र और शर्व ( मेघ ) हमारी बुद्धिको बढ़ावें । विश्वेदेवगण, हमें यथेष्ट अन्न देनेकी चेष्टा करें ।

४ मैं उशिज्ज्का पुत्र हूँ । श्रुतिको, मेरे लिये अन्न-भक्षक और स्तुति-भाजन अश्विनीकुमारोंको, संसारको प्रदायित करनेवाली उषाके समय, बुलाओ । जलके नसा अग्निकी स्तुति करो तथा मेरे सदृश स्वोत्ता मनुष्योंके मातृ-स्थानीय अहोरात्र-देवताओंको भी स्तुति करो ।

५ देवगण, मैं उशिज्ज्का पुत्र कक्षीवान् हूँ । मैं तुम्हारे सम्बन्धमें कहने योग्य स्तोत्रका, आह्वानके लिये, पढ़ करता हूँ । अश्विद्वय, जैसे अपने शरीरगत श्वेतवर्ण त्वचा-रोगके विनाशके लिये घोषा नामक ब्रह्मवादिनी सहिलाने तुम्हारी स्तुति की, वैसे ही मैं भी स्तुति करता हूँ । देवो, फलदाता पूषा देवकी भी स्तुति करता हूँ और अग्नि-सम्बन्धी धनकी भी स्तुति करता हूँ ।

६ मित्र और वरुण, मेरा आह्वान सुनो । यज्ञ-गृहमें समस्त आह्वान सुनो । प्रसिद्ध धनवाली जलामिमानी देव त्रेतामें जल बरसाकर हमारा आह्वान सुनें ।

७ मित्र और वरुण, मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ । जिस स्तोत्रसे अन्नका नियमन होता है, वही स्तोत्र पढ़ा जाय । इसलिये कक्षीवान् ( अग्नि ) को अपनी प्रसिद्ध गौ दो । प्रसिद्ध और सुन्दर रथसे युक्त कक्षीवान्के प्रति प्रसन्न होकर तुम लोग आओ तथा आकर मुझे पोषण करो ।

अस्य स्तुये महिमघस्य राधः सचा सनेम नहुषः सुवीराः ।  
 जमो यः पञ्चेभ्यो वाजिनीवानश्वावतो रथिनो मह्यं सूरिः ॥८॥  
 जमो यो मित्रावरुणावभिधुगपो न वां सुनोत्यक्ष्णयाधुक् ।  
 स्वयं स यक्ष्मं हृदये निधत्त आप यदी होत्रामिष्टताचा ॥९॥  
 स प्राधतो नहुषो दंसुजुतः शर्धस्तरो नरां गूर्तश्रवाः ।  
 विष्टुष्टरातिर्वाति वाहसृत्वा विश्वासु पृत्सु सधमिच्छूरः ॥१०॥  
 अधगमन्ता नहुषो हवं सूरैः श्रोता राजानो अमृतस्य मन्द्राः ।  
 नभो जुवो यन्निरवस्य राधः प्रशस्तये महिना रथवते ॥११॥  
 पतं शब्दं धाम यस्य सूरैरित्यवोचन् दशतयस्य नंशे ।  
 द्युस्मानि येषु घसुतातौ रारन् विश्वे सन्वन्तु प्रभृथेषु धाजम् ॥१२॥  
 मन्दांमहे दशतयस्य धासेर्द्विर्यत् पञ्च विघ्नतो यन्त्यन्ता ।  
 किमिष्टाश्व इष्टरश्मिरेत ईशानासनासस्तरुप ऋजते नृन् ॥१३॥

८ मैं महान् धनवाले देवोंकी स्तुति करता हूँ । हम मनुष्य हैं; इसलिये द्योमन पुत्र-पौत्र आदिसे लड़ होकर इन इस धनका संभोग करें । जो देव अङ्गिरा गोप्रभे उत्पन्न कक्षीवान् के लिये अन्न प्रदान करते हैं, अश्व और देते हैं, उनकी स्तुति करता हूँ ।

९ हे मित्र और वरुण, जो तुम्हारा द्रोही है, जो किसी तरह भी तुम्हारा द्रोह करता है, जो तुम्हारे लिये लो रसका अभिषेक नहीं करता, वह अपने हृदयमें यत्ना रोग धारण करता है । जो व्यक्ति यज्ञ करता और स्तुति-यज्ञ सोमरस तैयार करता है—

१० यह व्यक्ति शान्त अश्व प्राप्त करता, मनुष्योंको पशस्त करता और समान मनुष्योंमें अन्नके लिये प्रसिद्ध है । अतिथियोंको धन देता है और सारे दुर्द्धोंमें हिंसक मनुष्योंकी ओर निश्चिन्त होकर सदा जाता है ।

११ सर्वाधिपति, आनन्द-वर्द्धक, तुम मरण-रहित स्तोत्रकारी मनुष्यके ( अर्थात् मेरे ) आत्मानको छोड़ आओ । तुम आकाशवासी हो । तुम अन्य-रक्षक-रहित रखते संयुक्त यजमानकी समृद्धिके साधन हव्यकी प्रकाशा पसन्द करते हो ।

१२ “जिस यजमानके इसो इन्द्रियोंके बलकारक अन्नकी प्राप्तिके लिये हम आये हैं, उसे यह मनुष्य-विजेषता दिया” — देवोंने ऐसा कहा । इन देवोंका प्रकाशमान अन्न और धन अत्यन्त शोभा पाता है । उत्तम यज्ञमें देवता अन्न दान करें ।

१३ चूँकि इन्द्रियाँ इस प्रकारकी हैं; इसलिये श्रुतिवक् लोग, इस अवयवोंसे युक्त अन्न धारण करके गमन करते हैं हम विश्वदेवोंकी स्तुति करते हैं । इष्टाश्व और इष्टरश्मि नामके राजा शत्रुसारक नेसाओं ( वरुणादि ) का क्या सकते हैं ।

विरत्यकर्णं मणिग्रीवमर्णस्तन्तो विश्वे वरिस्थन्तु देवाः ।  
 अर्यो गिरः सद्य आ जग्मुषीरोस्त्राश्च कन्तूमयेण स्त्रमे ॥१४॥  
 चत्वारो मा मशर्शाः स्य शिश्वस्त्रयो राक्ष आयवसस्य जिष्णोः ।  
 रथो चां मित्रावरुणा दीर्घोप्ताः स्यूमगमस्तिः सूर्ये नादाद्यौत् ॥१५॥



१२३ सूक्त । उषा देवता ।

पृथूरथो दक्षिणाया अयोज्यैनं देवासो अमृतासो अस्थुः ।  
 कृष्णादुदस्थादर्या विहायाश्चिकित्सन्ती मानुषाय क्षयाय ॥१॥  
 पूर्वा विश्वस्मान्नुवनादवोधि जयन्ती वाजं बृहती सनुत्री ।  
 उच्चवापयत्यद्युदतिः पुनर्भूरोषा अगन् प्रथमा पूर्वहूतौ ॥२॥  
 यद्य भागं विभजसि नृभ्य उषो देवि मर्त्यत्रा सुजाते ।  
 देवो नो अत्र सविता दक्ष्णा अनागसो वोचति सूर्याय ॥३॥  
 गृहं गृहमहना यात्यच्छा दिवेदिवे अधिनामा दधाना ।  
 सिंघासन्ती द्योतनाशश्वदामादग्रमग्रमिज्जते वसूनाम् ॥४॥

१४ विश्वदेव हमें द्वािगशक्याँ, मणिग्रीव और रूपवान् पुत्र प्रदान करें । श्रेष्ठ विश्वदेवगण सद्योनिर्गत स्तुति और पकी आकांक्षा करें ।

१५ मशर्शा राजाके चार पुत्र और विजयी अवस राजाके तीन पुत्र सुके वाधा देते हैं । मित्रावरुण, सुम्हारा अति स्तुत और गोमन दोसिपाली रथ सूर्यको तरह कान्ति प्राप्त किये हुए है ।

१ दक्षिणा या उषाका रथ अश्व-संयुक्त हुआ । अमर देव लोग उस रथपर सवार हुए । कृष्णवर्ण अन्वकारसे त्रिपद, पूजनीय, विचित्र-गतिमती और मनुष्यके निवासस्थानोंका रोग दूर करनेवाली उषा उदित हुई ।

२ सब जीवोंके पहले ही उषा जागी । उषा अन्वदायिनी, महती और संसारको खल देनेवाली है । वह युवती है; र-वार आविर्भूत होती है । ऊर्ध्वस्थिता उषा देवी हमारे जुलानेपर पहले ही जाती है ।

३ सजाता उषा देवी, तुम मनुष्योंकी पालिका हो । तुम अभी मनुष्योंको जो प्रकाशांच प्रदान करती हो, उसीको दान कर, दानशील सविता या प्रेरक देव, सूर्यके आगमनके लिये, हमें पाप-रहित कहकर स्वीकार करें ।

४ अहना या उषा प्रतिदिन नम्र भगवते हर एक वरको ओर जाती है । भोगेच्छापालिनी और धु तिमती प्रतिदिन आगमन करती और हव्यरूप घनका श्रेष्ठ भाग ग्रहण करती है ।

५ अहना ही कदाचिद् ग्रीकोंकी Athena या Minerva है ।

भगस्य सस्ता वरुणस्य जामिरुपः सूनृते प्रथमा जरस्व ।  
 पश्चान्नदध्या यो भघ्न्य राता जयेम तं दक्षिणया रथेन ॥५॥  
 उदीरतां सूनृता उत्पुन्यीरुदध्याः शुशुवानासो अस्थुः ।  
 स्यर्ता वमूनि तमस्तान्गूहा पिष्कृणन्त्युपसो विभातीः ॥६॥  
 अपान्पदेन्यभ्यन्यदेति विपुरुषे अहनीः सश्वरेते ।  
 परिक्षितोस्तमो अन्या गुहाकरद्यौदुपाः शोशुवता रथेन ॥७॥  
 सदृशीरद्य सदृशारिदुश्रो दीर्घं सवन्ते वरुणस्य धाम ।  
 अनवद्याक्षिशतं योजनान्येकैका क्रतुं परियन्ति सद्यः ॥८॥  
 जानत्यहः प्रथमस्य न ग शुक्रान्पणादजनिष्ट शिवतीची ।  
 ऋतस्य द्योपा न भिनानि धामा र्हर्निष्कृतमानरन्ती ॥९॥  
 कन्येव तन्या ज्ञाशदनीं एपि देवि देवमियक्षमाणम् ।  
 संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती ॥१०॥

५ सूनृता उपा, तुम भग या सूर्यकी भगिनी और वरुण या प्रकाशदेवकी महजाता हो। तुम श्रेष्ठ हो। सब देवता तुम्हारी स्तुति करें। इसके अनन्तर जो दुःखका उत्पादक है, उह आवे। तुम्हारी सहायता पाकर उसे रथ द्वारा हम जीतेगे।

६ सभी बातें कही जायें। प्रज्ञा प्रबुद्ध हो। अत्यन्त प्रकाशमान आगे प्रज्वलित हों। इससे विचित्र प्रभावती उपा अन्धकारावृत्त स्पृहणीय घन आविष्कार करती हैं।

७ बिलक्षण रूपवान् दोनों अहोरात्र-देवता व्यवधान-रहित होकर चलते हैं। एक जाते हैं, एक आते हैं। पर्यायवाची दोनों देवताओंमें एक पदार्थोंको द्विपाते हैं, दूसरे ( उपा ) अनेक दीप्तिमान् रथ द्वारा उसे प्रकाशित करते हैं।

८ उपा देवी जैसे आज्ञा हैं, वैसे ही कल भी वे विशुद्ध हैं। प्रतिदिन वे वरुण या सूर्यके अत्रस्थिति-स्थानसे तीस योजन आगे अवस्थित होती हैं। एक एक उपा उद्य-कालमें ही गमन-आगमनरूप कार्य सम्पादित करती हैं।

९ उपा दिनके प्रथमार्धके आगमनका काल जानती हैं। वह सूर्य ही शीत और श्वेतवर्ण हैं। छूटणवर्णसे उनकी उत्पत्ति हुई है। वह सूर्य-लोकमें मिश्रित होती हैं, किन्तु उसको हानि नहीं पहुँचाती, बल्कि उसकी शोभा बढ़ाती हैं।

१० देवि, कन्याकी तरह अपने अंगोंको विकसित करके तुम दानपरायण और दीप्तिमान् सूर्यके निकट जाओ। अनन्तर युवतीकी तरह अतीव प्रकाश-सम्पन्न होकर, कुछ दौंसती हुई, सूर्यके सामने अपना हृदय-देश उधारो।

ॐ सायणाचार्यके मतानुसार सूर्य प्रतिदिन ५०५६ योजन भ्रमण करते हैं। इस तरह सूर्य, प्रत्येक द्युब्धमें, ७६ योजन घूमते हैं। चूँकि उपा सूर्यसे ३० योजन पूर्व-गामिनी हैं, इसलिये सूर्योदयसे प्रायः आधा द्युब्ध ( ३ ) पहले उपाका उदय मानना चाहिये। कुछ यूरोपियनोंके मतसे सूर्य प्रतिदिन २०००० मील चलते हैं।



सुसामुशा मातृमृष्टेव योषाधिस्तन्वं कृणुषे दृशेकम् ।  
 भद्रा त्वमुषो वितरं व्युच्छ न तत्ते अन्या उपसो नशन्त ॥११॥  
 अश्वाक्षतीर्णोमतीर्विश्ववारायतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य ।  
 पराव्यस्ति पुनराचयन्ति भद्रा नाम वहमाना उषासः ॥१२॥  
 ऋतस्य रश्मिमनुयच्छाना भद्रं भद्रं कतुमस्मासु घेहि ।  
 उषो नो अद्य सुहवा व्युच्छालमासु रायोमघवत्सु चस्युः ॥१३॥



१२४ सूक्त । उषा देवता ।

उषा उच्छन्ती समिधाने अग्रा उद्यन् सूर्य उर्विया ज्यातिरश्रेत् ।  
 देवो नो अत्र सवितान्वर्थः प्रासावीद्विपत् प्र सतुष्पदित्यै ॥१॥  
 अमिनती वैव्यामि व्रतानि प्रमिनती मनुष्या युगानि ।  
 ईयुषीणामुपमा शश्वतीनामायतीनां प्रथमोषान्वद्यौत् ॥२॥  
 एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात् ।  
 ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न विशो मिनाति ॥३॥

११ जैसे मातापिता देहको जो देनेपर कन्याका रूप उज्ज्वल हो जाता है, वैसे ही तुम भी होकर दर्शनके लिये अपने शरीरको प्रकाशित करो । तुम कल्याणशीला हो । अन्धकारको दूर कर दो । अन्य उषाएँ तुम्हारे कार्यको नहीं क्याह करेंगी ।  
 १२ अथ और गौसे सम्पन्न, सर्वकालीन और सूर्यरश्मियोंके साथ समोन्निवारणके लिये चेष्टा-विशिष्ट उषा-देवियों कल्याणकर मान धारण करके जाती और आती हैं ।

१३ उषा, ऋत या सूर्यकी रश्मिका अनुधावन करती हुई हमें कल्याणकारिणी प्रज्ञा प्रदान करो । हम तुम्हें बुलाते हैं । अन्धकार दूर करो । इस इविलक्षण घनसे युक्त हैं । हमारे पास घन हो ।

१ अग्निके समीपमान होनेपर उषा, अन्धकारका निवारण करती हुई, सूर्योदयकी तरह प्रभुत ज्योति फैलाती हैं । हमारे व्यवहारके लिये सविता द्विपद और सतुष्पदके संयुक्त धन देते हैं ।

२ उषा देव-सम्बन्धी व्रतोंमें विघ्न नहीं करती, मनुष्योंकी आयुका हास करती, अतीत और नित्य उषाओंके समान हैं और आगामिनी उषाओंकी प्रथमा हैं । उषा क्षुति फैलाती हैं ।

३ उषा स्वर्ग-पुत्री हैं । वह प्रकाश द्वारा आच्छादित होकर धीरे-धीरे पूर्व दिशाकी ओर बिखरती हैं । उषा मानो सूर्यका अग्निप्राय जानकर ही उनके मार्गपर अच्छी तरह भ्रमण करती हैं । वह कभी भी दिशाओंको नहीं मारती ।

उपो भद्रशि शुन्ध्युवो न वक्षो नोधा इवाविरक्त प्रियाणि ।  
 अशसन्न ससतो बोधयन्ती शश्वत्तमागात् पुनर्युषीणाम् ॥४॥  
 पूर्वे अर्धे रजसो अपत्यस्य गर्वां जनित्र्यकृत प्रकेतुम् ।  
 व्युप्रयते वितरं वरीय ओभापृणन्ती पित्रोरुपस्थां ॥५॥  
 एवेवेषा पुरुतमा दृशेकं नाजामि न परिवृणक्ति जामिम् ।  
 अरेपसा तन्वा शाश्वदाना नाभादीषते न महो विभाती ॥६॥  
 अभ्रातेव पुंस एतिप्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम् ।  
 जायेव पत्य उशती सुवासा उपाहस्त्रेव निरिणीते अप्सः ॥७॥  
 स्वसा स्वस्त्रे ज्यायस्यै योनिमारैर्गपैत्यस्याः प्रतिवक्ष्येव ।  
 व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याज्ज्यंके समनगा इव त्राः ॥८॥  
 आसां पूर्वास्त्रामहसु स्वस्तृणामपरा पूर्वामभ्येति पश्चात् ।  
 ताः प्रत्नवन्नव्यसीर्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उषासः ॥९॥  
 प्रबोधयोषः पृणतो मघोन्यबुध्यमानाः पणयः संसन्तु ।  
 रेवदुच्छ मघवद्भ्यो मघोनि रेवत् स्तोत्रे स्रूते जारयन्ती ॥१०॥

४ जैसे सूर्य अपना वक्षःस्थल प्रकटित करते हैं और नोधा ऋषिने जैसे अपनी प्रिय वस्तुका आविष्कार किया है, उसी प्रकार उषा भी अपनेको आविष्कृत किया है । जैसे गृहिणी जागकर सबको जगाती है, वैसे ही उषा भी मनुष्योंको जगाती है । अभिसारिकाओंके बीच उषा सर्वापेक्षा अधिक आती है ।

५ विस्तृत आकाशके पूर्व भागमें उत्पन्न होकर उषा दिशाओंको चेतनता-युक्त करती है । उषा पितृ-स्थानोद्य स्वर्ग और पृथिवीके अन्तरालमें रहकर अपने तेजसे देवोंको परिपूर्ण करके विस्तृत और विशिष्ट रूपसे प्रक्याप्त हुई है ।

६ इस तरह अत्यन्त विस्तृत होकर उषा सरलतासे दर्शन-निमित्त मनुष्यादि और देवादिकोंसे किसीको भी नहीं छोड़ती । प्रकाशशालिनी उषा विमल शरीरमें क्रमशः स्पष्ट होकर छोटे या बड़े किसीसे भी नहीं हटती ।

७ भ्रातृ-हीना स्त्री जैसे पित्रादिके अभिमुख गमन करती है, गतमर्चुका जैसे धन-प्राप्तिके लिये घर आती है, उषा भी वैसा ही करती है । जैसे पत्नी पतिकी अभिलाषिणी होकर छन्दर वस्त्र पहनती हुई हास्य द्वारा अपनी दन्त-राजि प्रकाशित करती है, उसी प्रकार उषा भी करती है ।

८ भगिनी-रूपिणी रात्रिने बड़ी बहन (उषाको) अपर रात्रि-रूप उत्पत्ति-स्थान प्रदान किया है एवं उषाको जना कर स्वयं बली जाती है । सूर्य-किरणोंसे अन्वकार हटाकर उषा विष्णुद्वाराशिकी तरह जगत्को प्रकाशित करती है ।

९ इन सब भगिनीभावापन्न प्राचीन उषाओंमें पहली दूसरीके पीछे प्रतिदिन गमन करती हैं । प्राचीन उषाओंकी तरह नयी उषा सदिन पैदा करती हुई हमें प्रभूत-धन-विशिष्ट करके प्रकाशित करें ।

१० धनवती उषा, हविर्वाताओंको जगाओ । पणिलोग न जागकर निद्रामें पड़े । धनशालिनि, धनी यजमानोंको समृद्धि दो । स्रूते, तुम सारे प्राणियोंको क्षीण करती हुई यजमानको समृद्धि दो ।

अवेयमश्वैद्युवतिः पुरस्ताद्युक्ते गवामरुणानामनीकम् ।  
 वि दूनमुच्छादसति प्रकेतुर्गृहं गृहमुपतिष्ठति अग्निः ॥१॥  
 उत्तेवयश्चिद्वसतेरपसन्नश्च ये पितुमाजो व्युष्टौ ।  
 अमा सते वहसि भूरिवाममुपो देवि दाशुपे मत्स्याय ॥ २ ॥  
 अस्तोद्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मेधीवृधश्च मुशतीरूपासः ।  
 युष्माकं देवीरवसा सनेम रुदन्निणं च शतिनं च वाजम् ॥ ३ ॥

१२५ सूक्त । दान देवता । ७

प्रातारर्चनं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान् प्रतिगृह्णा निधत्ते ।  
 तेन प्रजां वर्धयमान आयूरायस्पोषेण सचते सुवीरः ॥ १ ॥

११ युवती अथा पूर्व दिशासे आती और सात घोड़ोंको रथमें जोतती हैं । वह दिनकी सूचना करके रूप-रहित अंतरिक्षमें अन्धकारका निवारण करती हैं । घर-घरमें आग जलती है ।

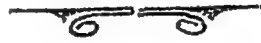
१२ दधा, जुम्हारा उदय होनेपर चिड़ियां अपने बोंसलेसे ऊपर उड़ती हैं । भन्न-प्राप्तिमें आसक्त होकर मनुष्य ऊपर मुँह करके जाते हैं । देवि, देव पूजन-गृहमें अवस्थित हव्य-दाता मनुष्यके लिये प्रभुत धन से आओ ।

१३ स्तुति-पात्र उषार्प, मेरे मन्त्र द्वारा तुम स्तुत हो । मेरी समृद्धिकी इच्छा करके हमें वर्द्धित करो । देवियो, जुम्हारी रक्षा प्राप्त करके हम सहस्रसंख्यक और शतसंख्यक धन प्राप्त करें ।

१ स्वनय राजाने, प्रातःकाल जाकर, प्रातःकाल ही रत्न ला रखा । कक्षीवान्ने उठकर, रत्न ग्रहणकर, स्थापित किया । छवीर धीर्घतमाने उस रत्नराजि द्वारा प्रजा और आयुकी वृद्धि करके धन लाभ किया ।

७ 'शुक्लमें अक्षयन समाप्त कर रात्रिमें घर आते हुए कक्षीवान् ऋषि मार्गमें सो गये । स्वयं नामके राजा, अनुचरोंके साथ, घूमते हुए आये और कक्षीवान्का सौन्दर्य देखकर मुग्ध हो गये । राजा उन्हें घर लाये और अपनी दस कन्याओंके साथ उन्हें व्याह दिया । राजाने ऋषिको १०० निष्क ( तौल ) हवर्ण, १८० घोड़े, १०० वृषभ, १०६० गायें और ११ रथ, दहेजमें, प्रदान किये । इन सबको कक्षीवान्ने अपने पिता दीर्घतमाको अर्पण कर दिया ।' — सायणाचार्यने यहां यह कथा लिखी है । स्वनय राजाका दान ही इस सूक्तका देवता है अर्थात् उस दानके सम्बन्धमें ही यह सूक्त रचा गया है ।

सृगुरस्तु सुहिरण्यः स्वश्वो बृहदस्मै च इन्द्रो दध्नाति ।  
 यस्त्वायन्तं वसुना प्रातरित्वो मुक्षीजयेव पदिमुत्सिनाति ॥ १ ॥  
 आरुमष्ट सुकृतं प्रातरिच्छन्निष्टः पुत्रं वसुमता रथेन ।  
 अंशोः सुतं पायय मत्सरस्य श्वश्रीरं बद्ध य सूनृताभिः ॥ २ ॥  
 उपशरन्ति सिन्धवो मयोभुव ईजानं चयक्ष्यमाणं च धेनवः ।  
 पृणन्तं च पपुर्णि च धनस्यो घृतस्य धारा उपयन्ति विश्वतः ॥ ३ ॥  
 नावस्य पृष्ठे अधितिष्ठति शितो यः पृणाति सहदेवेषु गच्छति ।  
 तस्या आयो घृतमर्पन्ति सिन्धवस्तस्मा इयं दक्षिणा पिब्यते सदा ॥ ४ ॥  
 दक्षिणावनाग्निदिमानि चित्रा दक्षिणावतां दिवि सूर्यासः ।  
 दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तः प्रतिरन्त आयुः ॥ ५ ॥  
 मा पृणन्तो दुरितमेन आरु मा जारिपुः सूर्यः सुवतासः ।  
 अन्धस्तेषां परिधिरस्तु काश्चिदपृणन्तमभिसंयन्तु शोकाः ॥ ६ ॥



२ उन राजाके पास बहुत गो घन हो । उनके पास बहुत खर्बण और बहुत घोड़े हों । उन्हें इन्द्र बहुत अन्न दें । जैसे लोग रस्सीसे पशु, पक्षी आदिको बांध देते हैं, उसी तरह उन्होंने भी प्रातःकाल पैदल ही भाकर आगमनकारीको घन द्वारा आबद्ध किया ।

३ मैं यज्ञके आता शोभनकर्माको देखनेकी इच्छा करके, सलजित रथपर चढ़कर, आज उपस्थित हुआ हूँ । वीसि-शाली गादक सोमके अमिषुत रसका पान करो । प्रभूत-वीर-पुत्रादि-विशिष्टको प्रिय और सत्य वाक्य द्वारा समृद्ध करो ।

४ दुग्धवती और कल्याण-दायिनी गायें, यज्ञमान और यज्ञ-संकल्पकारीके पास जाकर, दुग्ध प्रदान करती हैं । समृद्धिके कारणभूत घृतधारा, तर्पणकारी और हितकारी पुरुषोंके पास, चारो ओरसे उपस्थित होती है ।

५ जो व्यक्ति देवोंको प्रसन्न करता है, वह स्वर्गके पृच्छदेशमें अवस्थान करता तथा देवोंके बीच गमन करता है । प्रवहमान जल, उसके पास, तेजोविशिष्ट सार प्रदान करता है । पृथिवी यस्य आदिते सफल होकर उसे सन्तोष प्रदान करती है ।

६ जो व्यक्ति दक्षिणा प्रदान करता है, उसीकी ये सारी मणि-मुक्तादि वस्तुएँ होती हैं । दक्षिणा दाताके लिये धु-लोकमें सूर्य रहते हैं । दक्षिणा-दाता ही जरा-मरण-शून्य स्थान प्राप्त करते हैं । दक्षिणा देनेवाले दीर्घ आयु प्राप्त करते हैं ।

७ जो देवोंको प्रसन्न रखता है, उसे दुःख और पाप नहीं मिलते; शोभन-व्रतशाली स्तोता भी जरायुस्त नहीं होते । देवोंके प्रति-प्रदाता और स्तुतिकर्तासे भिन्न पुरुषोंको पाप आश्रित करे । जो देवोंको प्रसन्न नहीं करते, उन्हें शोक प्राप्त हो ।

१२६ सूक्त । १ से ४ मंत्र राजा भावययके लिखे हैं और इनके ऋषि कक्षीवान् हैं । ६ठा मंत्र राजाकी स्त्रीके लिये है और इसके ऋषि उक्त राजा हैं । ७ वाँ मंत्र लोमशाके पतिके लिये है और इसके ऋषि लोमशा हैं । १ से ५ तरु त्रिष्टुप् और अन्तरु दो अनुष्टुप्में हैं ।

अमन्दान् स्तोमान् प्रमरे सनीपा सिन्धावधिक्षियतो भावयस्य ।  
यो मे सहस्रममिमीत सवानूर्तो राजा श्रव इच्छमानः ॥ १ ॥  
शतं राज्ञोनाधमानस्य निष्काञ्जुतमश्वान् प्रयत्नान्त सय आदन् ।  
शतं कक्षीर्वा असुरस्य गोनां दिवि श्रगो जरमाततान ॥ २ ॥  
उप मा शशावाः स्वनयेन दत्ता वधूमन्तो दशरथसा अस्थुः ।  
पष्टिसहस्रमनुगव्यमागात् रुनत् कक्षीर्वा अभिपित्वे अहाम् ॥ ३ ॥  
चत्वारिंशदशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणि नयन्ति ।  
मद्व्युतः कृशानवतो अत्यन् कक्षाचन्त उदमृशन्त पज्राः ॥ ४ ॥  
पूर्वामनुप्रयतिमाददे वल्लोन्मुक्तो अष्टावरिधयसो गाः ।  
सुबन्धो ये विद्या इव वाः अनस्यन्तः श्रव एयन्त पज्राः ॥ ५ ॥  
आगधिता परिगधिता या कक्षीक्षेव जङ्गहे ।  
ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भावया शता ॥ ६ ॥

१ सिन्धुनिवासी भावयय-पुत्र स्वनयके लिये, अपने बुद्धि-वञ्छे, बहुसंख्यक स्तोत्र सम्पादन (प्रगयन) काता हैं । हिसा-विशदित राजाने कीर्त्ति-प्राप्ति की इच्छासे मेरे लिये हजार लोग-यज्ञोंका अनुष्ठान किया है ।

२ असा-राजाके ग्रहणके लिये मुझसे वाचना करने में (कक्षीवान्) ने उनसे १०० निष्क (आभोग या स्वर्गसाप), १०० घोड़े और १०० बैल ले लिये । स्वर्ग-लोकमें राजा नित्य कीर्त्ति-विस्तार करने ।

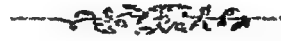
३ स्वनय द्वारा भूरे रंगके अश्ववाले दस रथ मेरे पास आये, तिनपर वृष्टुं आरुढ़ थीं । १०६० गायें भी पीछेसे आयीं । मैं (कक्षीवान्) ने ग्रहण करनेके पश्चात् ही सब आने पित्तको दे दिया ।

४ हजार गायोंके सामने, दसो रथोंमें चालीस (१-१में ४-४) लोहितवर्ण अश्व पंक्ति-बद्ध होकर चलने लगे । कक्षीवान्के अनुचर उनके लिये घास आदि जुटाकर मदमत्त और स्वर्गाभरण-विशिष्ट एवं सतत गमनशील अश्वोंको मलने लगे ।

५ वधुगण, पहलेके वानका स्मरण करके तुम्हारे लिये तीन और आठ—सब बयारह रथ मैंने ग्रहण किये हैं । बहुसंख्य गायोंको लिया है । प्रजाओंकी तरह परस्पर-अनुराग-सम्मान होकर संक्रापन्न अङ्गिरा लोग कीर्त्ति प्राप्त करनेकी चेष्टा करें ।

६ यह सम्भोग-योग्य रमणी (लोमशा) अच्छी तरह आलिङ्गित होकर, सूत्रवत्ता मनुष्यीकी तरह, विर कालतक रमण करती है । बहुतेरतुष्टा होकर रमणी मुझे (स्वनय राजाको) बहुत बाद भोग प्रदान करती है ।

उपोष मे परामृशगामेदभ्राणि मन्त्रथाः ।  
सर्वात्मस्मि गोमशा गन्धारीणामिवाविका ॥ ७ ॥



९ अनुवाक । १२७ सूक्त । अग्नि देवता । यहाँसे १:६ सूक्तों तकके ऋषि दिवोदासके पुत्र परच्छेद हैं । छंद अतिधृति ।

अग्नि होतारं मन्यं दस्वन्तं वसुं सूनं सहस्रो जातवेदसं विप्र न जातवेदसम् ।  
य ऊर्ध्वर्वा स्वध्वरो देवो देवाच्या कृपा ।  
धृतस्य विभ्राष्टिमनुवष्टि शोचिषा जुह्वानस्य सर्पिषः ॥ १ ॥  
यजिष्ठं त्वा यजमाना हुवेम ज्येष्ठमङ्गिरसां विप्र मन्मभिविप्रेभिः शुक्र मन्मभिः  
परिजमानमिव द्यां होतारं र्दर्पणीनाम् ।  
शोचिष्येशं धृणं यस्मिमाविशः प्राचन्तु जूतये विशः ॥ २ ॥  
स हि पुरुचिदोजसा दिस्वमता दीद्यानो भवति द्रुहन्तरः परशुर्न द्रुहन्तरः ।  
वीलुचिद्यत्य समृती श्रुवद्वनेव यत् स्थिरम् ।  
निष्पहमाणो यमते नायते धन्वास्तहा नायते ॥ ३ ॥

७ (स्वनय राजाके लिये यवन—) मेरे पास आकर मुझे अच्छी तरह स्पर्श करो । यह नहीं जानना कि, मेरे शरीरमें क्या लोभ है । मैं गान्धारी तपो या गर्भधारिणी रमणीकी तरह लोभपूर्ण और पूर्णावयवा हूँ ।

१ विद्वान् विप्र या ब्राह्मणकी तरह प्रज्ञावान्, बलके पुत्र-स्वरूप, सबके निवास-भूमि-रूप और अत्यन्त दानशील अग्निको मैं होता कहकर सम्मान-युक्त करता हूँ । यज्ञ-निर्वाहकारी अग्नि उन्मृष्ट-देव-पूजा-समर्थ होकर चारों ओर फैली हुई वृक्षकी दीप्तिका अनुसरण करके अपनी दिक्षा द्वारा उस धृन्को स्वीकृत करते हैं ।

२ मेधावी शुभ्रदीप्ति अग्निदेव, इस यजमान हैं । हम मनुष्योंके उपकरणके लिये मनवशील और अत्यन्त प्रसन्नता-दायक मन्त्र द्वारा अङ्गिरा लोगोंमें महान् तुरप्ते घुमते हैं । सर्वनोगामो सूर्यकी तरह तुम यजमानोंके लिये देवोंको बुलाते हो । देशकी तरह विसृष्ट ज्वाला-विशिष्ट और अभीष्टवर्णी हो । यजमान लोग अभिमत फल पानेके लिये तुम्हें प्रसन्न करें ।

३ अग्निदेव अतीव दीप्तिसे संयुक्त ज्वाला द्वारा भली भाँति दीप्यमान हैं । वह विद्रोहियोंके छेदनार्थ परशुकी तरह विनाशमें अमूल्य हैं । उनके साथ मिलनेपर दृढ़ और स्थिर वस्तु भी जलवी तरह शीघ्र हो जाती है । शत्रुओंका विनाश करनेवाला धनुर्धर जैसे नहीं भागता, वेसे ही अग्नि भी शत्रुओंको परास्त करनेसे बाज नहीं आते ।

हृत्वाचिदस्मा अनुदुर्यथा विदे तेजिष्ठमिरराणमिर्दाण्यवसेत्रये दाण्यवसे ।

प्रयः पुरुणि गाहये तक्षद्वनेव शोचिषा ।

स्थिरा चिदन्ता निरिणात्योजसा नि स्थिराणि चिदोजसा ॥ ४ ॥

तमस्य पृक्षमुपरासु धीमहि नक्तं यः सुदर्शतरो दिवातरादप्रायुषे दिवातरात् ।

आदस्यायुर्भणवद्दधीलु शर्म न सूनवे ।

भक्तमभक्तमव्यव्यन्तो अजरा अग्रयो व्यन्ता अजराः ॥ ५ ॥

स हि शर्धो न मारुत दुर्विष्वणिप्रसवतोपूर्वरास्विष्टनिरार्तनास्विष्टनिः ।

आदद्व्यान्याददिर्यश्चस्य केतुरहणा ।

अधस्मास्य हर्पतो हृषीवतो विश्वे जुषन्त पन्थां तरः शुभेन पन्थम् ॥ ६ ॥

द्विता यदो कीरतासो अभिद्यो नमस्यन्त उपवोचन्त भृगवो मथन्तो दाशा भृगवः

अग्निरीशे वसूनां शुचिय धर्णिरेषाम् ।

प्रियां अपिथीर्वनिषीष्ट मेधिर आवनिषीष्ट मेधिरः ॥ ७ ॥

४ जैसे विद्वान् पुरुष को द्रव्य दान किया जाता है, उसी प्रकार अग्निको सारवान् द्रव्य, मन्त्रानुक्रमसे, प्रदान किया जाता है। तेजोविष्टिष्ट यज्ञादि द्वारा अग्नि हमारी रक्षाके लिये स्वर्गादि प्रदान करते हैं। यजमान भी रक्षार्थ, अग्निंको द्रव्य देते हैं। यजमानके द्वारा प्रदत्त द्रव्यमें प्रवेश करके अग्नि, अपनी ज्योतिःशिला द्वारा, उसे वनकी तरह जला चालते हैं। अग्निदेव अपनी ज्योति द्वारा अन्नादिका परिपाक करते और तेजके द्वारा हृद् द्रव्यको विनष्ट करते हैं।

५ रातमें अग्निदेव दिवसे भी अधिक दर्शनीय हो जाते हैं। दिनमें अग्नि पूरी आयु या तेजस्वितामें शून्य रहते हैं। हम अग्निके उद्गमसे वेदीके पास द्रव्य दान करते हैं। जैसे पिताके पास पुत्र हृद् और खलकर गृह प्राप्त करता है, उसी प्रकार अग्नि भी अन्न ग्रहण करता है। भक्त और अभक्तको समझकर भी अग्नि दोनोंकी रक्षा करते हैं। द्रव्य-भक्षण करके अग्नि अजर हो जाते हैं।

६ मरुतोंके जलकी तरह स्तवनीय अग्नि यथेष्ट ध्वनिसे युक्त है। कर्मकारिणी उर्वरा अर्थात् श्रेष्ठ भूमिपर अग्निका यज्ञ करना उचित है। सेवा-विजय करनेके लिये अग्निका याग करना उचित है। अग्नि द्रव्य भक्षण करते हैं। वह सर्वत्र दानशील और यज्ञकी पताका है। वह सर्वत्र पूजनीय है। यजमानोंके लिये हर्षदाता और प्रसन्न अग्निके मार्गकी, निर्भय राजपथकी तरह, खल-लाभके लिये, सब लोग सेवा करते हैं।

७ श्रौत और समाप्त—उभय प्रकारके अग्निका गुण कहनेवाले, दीप्तिशाली, नमस्कार-प्रवीण और द्रव्यदाता ऋगुगोत्रज महर्षि लोग, हवि देनेके लिये, अग्नि द्वारा अग्निका मन्थन करके स्तुति करते हैं। प्रदीप्त अग्नि सारे घनोंके अधीश्वर हैं। अग्नि यज्ञवाले हैं और भलो भाँति प्रिय द्रव्य भोगनेवाले हैं। अग्नि मेधावी हैं और वह अन्य देवताको भी भाग देते हैं।

विशांसां स्वः विशां पतिं हवागहे सर्वासां समानं दम्पतिं भुजे सत्यगिर्वाहसं भुजे ।

अतिगिं मानुषाणां पितुर्न यस्यासया ।

अमी न विश्वे अमृतास आचक्षो ऋष्य देवेष्ववावय ॥ ८ ॥

त्तमग्ने सहसा सतन्तमः शुष्मिन्तमो जायसे देवतातये रयिर्न देवतातये

शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युश्मिन्तम उत क्रतुः ।

अधस्माते परिवरन्त्यजर शुन्दीधानो नाजर ॥ ९ ॥

प्र वां महे सहसा सहस्वत उपर्वुध पशुवे नाग्रये स्तोमो बभूवग्रये ।

अति यदौ हविष्मान्निष्पनासु क्षासु जोगुधे ।

अग्रे रेगे न जरत ऋपूणां जूर्णिर्होत ऋपूणाम् ॥ १० ॥

मनोनेदिष्टं ददृशान आभगग्रे देवेभिः ससनाः सुचेतुना महो रायः सुचेतुना ।

महि शविष्ठ न स्तुधि सञ्चक्षे भुजे अस्यै ।

महि स्तोतृभ्यो मघनस्तुवीर्यं मथीकरो न शयसा ॥ ११ ॥



८ सारे यजमानोंके रक्षक, सारे मनुष्योंके एकमे गृह-पालक, सर्व-सम्मत-फल-विशिष्ट, स्तुति-वाहक और मनुष्य आदिके लिये अतिगिकी तरह पूज्य अग्निको, भोगके लिये, हम बुलाते हैं । जैसे प्रथम लोग पिताके पास जाते हैं, वैसे ही इन्धनके लिये मे सारे देवता अग्निके पास आते हैं । ऋत्विक् लोग भी देवोंके यज्ञ-कालमें, अग्निको इन्धन प्रदान करते हैं ।

९ जैसे देवोंके यजनके लिये धन पैदा होता है, उसी प्रकार हे अग्नि, तुम भी देवोंके यज्ञार्थ उत्पन्न होते हो । अपने मन्त्रों से तुम शत्रुओंके अभिभवकर्ता और अतीव तेजस्वी हो । तुम्हारा आनन्द अत्यन्त बल-दाता है । तुम्हारा यज्ञ-साग्वन्त फल-प्रद है । हे अजर और हे भक्तोंके जरा-निवारक अग्नि, इसीलिये यजमान लोग, तुम्हारी तरह, तुम्हारी पूजा करते हैं ।

१० हे स्तोता लोग, चूंकि हाँववाले यजमान इन अग्निके लिये सारी बेड़ी-भूमिपर बार-बार गमन करते हैं, इस लिये तुम्हारा स्तोत्र इस पूज्य, शत्रु-पराभवकारी, प्रातःकालमें जागरणशील और पशु-दाता अग्निकी प्रीति उत्पन्न करनेमें समर्थ हो । घनधानके पास जैसे घन्टी स्तव करता है, वैसे ही होता लोग पहले, देवोंमें श्रेष्ठ, अग्निकी स्तुति करते हैं ।

११ हे अग्नि, यद्यपि तुम्हें पासमें ही हम प्रदीप्त देखते हैं; तथापि तुम देवोंके साथ आहार करते हो । तुम अपने शोभन अन्ताकरणसे अपने अधीनके लिये अनुग्रह करके पूजनीय घन लाते हो । बलवान् अग्निदेव, हमारे लिये यथेष्ट इन्धन प्रदान करो, जिससे हम पृथिवीको देख और भोग सकें । भववन् अग्नि, स्तोताओंके लिये वीर्यशाली घन-प्रदान करो । यथेष्ट दत्त-सम्पन्न होकर क्रूर व्यक्ति जैसे शत्रु-विनाश करता है, वैसे ही हमारे शत्रुका विनाश करो ।



१२८ सूक्त । अतिधृति छन्द ।

अयं जायत मनुषो धर्मीमणि होता यजिष्ठ उशिजामनुव्रतमग्निः स्वमनुव्रतम् ।  
 विश्वश्रुष्टिः सखीयते रयिरिव श्रवस्यते ।  
 अद्ध्यो होता निपदिदृस्पदे परिवोत इदृस्पदे ॥ १ ॥  
 तं यज्ञसाधमपि वातयामस्यृतस्य पथा नमसा हविष्मता देवताता हविष्मता ।  
 स न ऊर्जामुपाभृत्यथा कृपा न जूर्यति ।  
 यं मातरिश्वा मनवे परावतो देवं भाः परावतः ॥ २ ॥  
 एवेन सद्यः पर्येति पार्थिवं मुहुर्गीं रेतो वृषमः कनिक्कदद्धद्रेतः कनिक्कदत् ।  
 शतं ऋक्षाणो अक्षभिर्देवो वनेषु तुर्वर्णः ।  
 सद्यो दधान उपरेषु सानुव्रग्निः परेषु सानुषु ॥ ३ ॥  
 स सुक्रतुः पुरोहितो दमेदमग्निं यज्ञस्याध्वरस्य चेतति क्रत्वा यज्ञस्य चेतति  
 क्रत्वा वैधा हूयते विश्वा जातानि पस्पशे ।  
 यतो घृतश्रीरतिथिरजायत वह्निर्वैधा अजायत ॥ ४ ॥

१. देवोंको गुलानेवाले और अतीव यज्ञशील यह अग्नि फल-प्राप्तियोंके और अपने व्रत या हविर्भोजनके उद्देश्यसे मनुष्यसे ही उत्पन्न होते हैं। सारे विषयोंके कर्त्ता अग्निदेव बन्धुऋषी और अन्नाभिलाषी यज्ञमानके घन-स्थानीय हैं। पृथिवीमें सार-श्रुत वेदीपर, यज्ञ-स्थानमें, अहिंसित, होम-निष्पादक तथा ऋत्विग्गृहेष्टित अग्नि बैठे हैं।

२. हम लोग यज्ञानुष्ठान और घृत आदिसे युक्त तथा नम्रतासे सम्पन्न स्तोत्र द्वारा बहु हव्यवाले और देव-यज्ञमें साधक अग्निकी, परितोषके साथ, सेवा करते हैं। वह अग्नि हमारे हव्यरूप अन्नको लेनेमें समर्थ होकर नाशको नहीं प्राप्त होगा। मनुके लिये मातरिश्वाने अग्निको, दूरसे लाकर, प्रदोषित किया था। इसी प्रकार, दूरसे, हमारी यज्ञशालामें अग्नि लावें। \*

३. सदा गाये या स्तुति किये जानेवाले, हविः-सम्पन्न, अभीष्ट-फलदाता और सामर्थ्यशाली अग्नि शब्द करके आते हुए तुरन्त पार्थिव वेदीकी चारो ओर शब्द करके आते हैं। अग्निदेव स्तोत्र ग्रहण करके अग्रस्थानीय शिखा द्वारा चारो ओर प्रक्षालित हो रहे हैं। उच्च-स्थानीय अग्नि उत्तम यज्ञमें तुरन्त आते हैं।

४. होमनकर्त्ता और पुरोहित अग्नि हर एक यज्ञमानके घरमें नाश-रहित यज्ञको जान सकते हैं। अग्नि कर्मों द्वारा यज्ञ-क्षतन सकते हैं। वह कर्मोंके विविध फलदाता बनकर यज्ञमानके लिये अन्नकी इच्छा करते हैं। अग्नि हव्य आदिको ग्रहण करते हैं; क्योंकि वह घृत-भक्षी अतिथिके रूपमें उत्पन्न हुए हैं। अग्निके प्रवृद्ध होनेपर हव्यदाता विविध फल प्राप्त करते हैं।

॥ १ मण्डल, ६० सूक्त, १ मंत्रसे विहित होता है कि, ऋग्वेदके लिये भी मातरिश्वा ही अग्निको लाये थे।

कृत्वा यदस्य तत्रिषीषु पृथ्वतेऽग्नेरवेण मरुतां न भोज्येविराय न भोज्या ।

सहिष्णुमादानमिन्वन्ति वसूनां च मज्जना ।

स नखासने दुरितादभिहृतः शंसादघादभिहृतः ॥ ५ ॥

विश्वो विहाया अरतिर्धंसुदंवे हस्ते दक्षिणं तरणिर्न शिश्रश्चक्षुषस्यया न शिश्रश्चक्षु ।

विश्वरमा इद्विपुध्यते देवत्रा हव्यमोहिषे ।

विश्वस्या इत् सुकृते वारमृणवत्यग्निर्द्वारा व्यृणवति ॥ ६ ॥

स मानुषे वृजने शन्तमो हिनोऽग्निर्पक्षेपु जेन्यो न विश्वपतिः प्रियो यज्ञेषु विश्वपतिः ।

स हव्या मानुषाणामिडाकृणानि पत्यते ।

स नखासने वरुणस्य धूर्तेर्महोदेवस्य धूर्तेः ॥ ७ ॥

अग्निं होतारमीदृते वसुधितिं प्रियं चेतिष्टमरतिं न्येरिरे हव्यवाहं न्येरिरे ।

विश्वायुं विश्ववेदसं होतारं यजतं कविम् ।

देवास्तो रणवमवसे वसूयधो गीर्भिरणवं वसूयधः ॥ ८ ॥



५. जैसे मरुत लोग भक्षणीय द्रव्यको एकत्र मिलाते हैं, इन अग्निको जैसे मरुत द्रव्य दिया जाता है, वैसे ही यजमान लोग कर्म द्वारा अग्निको प्रयत्न शिवामें, वृष्टिके लिये, भक्षणीय द्रव्य मिलाते हैं । अपने धनके अनुसार यजमान हव्य दान करता है । जो पाप हमारा हरण करता है, उस हरणकारी दुःख और हिंसक पापसे अग्नि हमें बचावे ।

६. विश्वात्मक, नमान् और विरामरहित अग्नि सूर्यकी तरह दक्षिण हाथमें धन रखते हैं । उनका वक्ष हव्य यज्ञकारीके लिये श्लथ होता है, खुला रहता है । केवल हवि पानेकी आशारे अग्नि उसे नहीं छोड़ते । अग्निदेव, सारे हव्य-कामी देवोंके लिये तुम हवि चढ़ान करते हो । सब उन्नत पुरुषोंके लिये अग्नि वरणीय धन प्रदान करते और स्वर्गवा द्वार उद्गुह्य करते हैं ।

७. मनुष्यके पाप-निमित्तक यज्ञमें अग्नि विशेष हितकारी है । विजयी राजाकी तरह यज्ञ-स्थलमें अग्नि रुजुव्यके पाकक और प्रिय है । यजमानोंकी यज्ञवेदीमें रखे हव्यके लिये अग्नि आते हैं । हिंसक यज्ञ-वाधकके भयसे और उन महाशू पापरेवकी हिंसासे अग्निदेव हमारा उद्धार करें ।

८. धनधारक, सर्व-प्रिय, सुखदाता और विरामरहित अग्निकी, ऋत्विक् लोग, स्तुति करते और उन्हें भली-भांति प्राप्त किये हुए हैं । हव्यवाही, प्राणियोंके प्राण-रूप, सर्वप्रज्ञा-समन्वित, देवोंके बुलानेवाले, यजनीय और मेधावी अग्निको ऋत्विक्ने अच्छी तरह प्राप्त कर लिया है । अर्थाभिलाषी होकर ऋत्विक् लोग, अग्निको हव्य-रूप अन्न देनेकी इच्छा करते हुए, आश्रय-प्राप्तिके लिये, रमणीय और शब्दकारी अग्निको प्राप्त हुए हैं ।

१२६ सूक्त । इन्द्र देवता ।

यं त्वं रथमिन्द्र मेघसातये पाका सन्तमिषिर प्रणयसि प्रानवद्य नयसि ।

सद्यश्चिन्तमभिष्टये करोवशश्च वाजिनम् ।

मास्माकमनवेद्य तूतुजान वेधसामिमां वाक्च न वेधसाम् ॥ १ ॥

मः श्रुधि यः स्मा पृतनासु कासुचिद्विषाग्य इन्द्र भरहृतये नृभिरसि प्रतूर्तये नृभिः ।

यः शूरैः स्वः सन्तिता यो विप्रैर्वाजं तरुता ।

तमोशानास इरधन्त वाजिनं पृक्षमत्यं न वाजिनम् ॥ २ ॥

दस्मो हि ष्मावृषणं पिन्वांसि त्वचं कश्चिद्याधीररुं शूर मर्त्यं परिवृणक्षि मर्त्यम् ।

इन्द्रोत तुभ्यं तद्विवेताद्द्राय स्वयशसं ।

मित्राय वोचं वरुणाय सप्रथः सुमृलीकाय सप्रथः ॥ ३ ॥

अस्माकं व इन्द्रसुश्रमसीष्टये सखायं विश्वायुं प्रासहं युजं वाजेषु प्रासहं युजम् ।

अस्माकं ब्रह्मोतये वा पृत्सुषु कासुचित् ।

नहि त्वा शत्रुः स्तरते स्तृणोयि यं विश्वं शत्रुं स्तृणोपि यम् ॥ ४ ॥

विषूनसातिमतिं कयस्यचित्ते जिष्ठाभिररणिभिर्नातिभिरुप्राभिरुप्रेतिभिः ।

नेषिणो यथा पुराणेनाः शूर मन्यसे ।

विश्वानि पूरोरपर्षपि वहिरासा वहिर्नो अच्छ ॥ ५ ॥

१ हर्ष-सम्पन्न यज्ञगामी इन्द्र, यज्ञ-लाभके लिये रथपर चढ़कर जिस प्रभूत ज्ञान-युक्त यजमानके पास जाते हो और जिसे घन और विद्यामें उन्नत करते हो, उसे तुरत सफल-मनोरथ और हव्यशाली कर दो । हर्ष-युक्त इन्द्र, हम पुरु-हितोंमें भी पुरोहित हैं; हमारे स्तुत्य करनेपर तुम शीघ्रतासे हमारी स्तुति और हव्य ग्रहण करते हो ।

२ इन्द्र, तुम युद्धके नेता हो । तुम महर्षिके साथ प्रधान-प्रधान युद्धोंमें स्पृहार्थके साथ शत्रु-संहारमें समर्थ हो । धीरोंके साथ तुम स्वयं संग्राम-रुख अनुभव करते हो । श्रुतिवर्कोंकी स्तुति करनेपर तुम उन्हें अन्न दो । हमारी स्तुति सुनो । प्रार्थनापरायण श्रुतिवक्त्र लोग गमनशील अन्नवान् इन्द्रकी, अन्नकी तरह, सेवा करते हैं ।

३ इन्द्र, तुम शत्रुओंका नाश करनेवाले हो । वृष्टिपूर्ण त्वचारूप मेघका भेदन करके जल गिराते हो और मर्त्यकी तरह गमनशील मेघको पकड़कर और उसे वृष्टि-रहित कके छोड़ देते हो । इन्द्र, तुम्हारे इस कार्यको हम तुमसे और धृष्ट, यशोयुक्त रथ, प्रजाओंके सुखदायी मित्र तथा वरुणसे कहेंगे ।

४ श्रुतिवर्को, अपने यज्ञमें हम इन्द्रको चाहते हैं । इन्द्र हमारे सखा, सर्व-यज्ञगामी, शत्रुओंके अभिभवकारी और हमारे सहायक हैं । वह यज्ञ-विघ्नकारियोंको पराभूत करते और महर्षीमें सम्मिलित हैं । इन्द्र, तुम हमारे पालनके लिये हमारी रक्षा करो । लड़कईके जेबमें तुम्हारे विरुद्ध शत्रु नहीं खड़ा हो सकता । तुम्हीं सारे शत्रुओंका निवारण करते हो ।

५ उग्र इन्द्र, अपने भक्त यजमानके विरुद्धाचारीको, उग्र-रक्षणकार्य-रूप तेजोमय उपायोसे, अवनत कर देते हो । जैसे तुम पहले हमारे पूर्वजोंको मार्ग दिखाकर ले गये थे, वैसे ही हमें भी ले जाओ । तुम्हें संसार निष्पाप जानता है । इन्द्र, तुम जगत्पालक होकर मनुष्यके सारे पापोंको दूर करते हो । हमारे सामने यज्ञ-फल लाकर अनिष्टोंका विनाश करो ।

प्रतद्वोचेर्यं भव्यायेन्दवे हव्यो न यः क्षपवान् मन्मरेजति रक्षोहा मन्म रेजति ।  
 स्वयं सो अस्मदानिदो वधैरजेत दुर्मतिम् ।  
 अवस्रवेदधशंसोऽवतरमव क्षुद्रमिव स्रवेत् ॥ ६ ॥  
 धनेम तद्वोत्रया चितन्त्या धनेम रयि रयिषः सुवीर्यं रथं सन्तं सुवीर्यम् ।  
 दुर्मन्मानं सुमन्तुभिरेमिषा पृथ्वीमहि ।  
 आसत्याभिस्त्रिंशु स्रहृतिभिर्यजत्रं यु स्रहृतिभिः ॥ ७ ॥  
 प्रप्रावो अस्मे स्वयशोभिरुती परिवर्न इन्द्रो दुर्पतीनां दरीमन्दुर्मतीनाम् ।  
 स्वयं सारिष्यधै यान उपेपे अत्रैः । हतेमसन्म वक्षति क्षिता जूर्णिनं वक्षति ॥ ८ ॥  
 त्वं न इन्द्र राया परीणसा याहि पथां अनेहसा पुरो याह्यरक्षसा ।  
 सचस्व नः पराक आसन्नस्वास्तमीक मा ।  
 पाहि नो दूरादारादभिष्टिभिः संदा पाह्यभिष्टिभिः ॥ ९ ॥  
 त्वं न इन्द्र राया तरूपलोमं चित्वा महिमा सक्षदवसे महे मित्रं नावसे ।  
 ओजिष्ठ त्रातरविता रथं कश्चिदमर्त्यं ।  
 अन्यमस्मद्विरिपेः कश्चिद्विद्यो रिरिक्षन्तं चिद्विद्वः ॥ १० ॥

६ भवनशील चन्द्रके लिये हम इस स्तोत्रको पढ़ते हैं। चन्द्र, आग्रहके साथ, हमारे कर्मके उद्देशसे, राक्षस-विनाशी और बुलागे योग्य इन्द्रकी तरह आते हैं। वह स्वयं हमारे निन्दक दुर्बुद्धिके वधका उपाय उद्बभूत करके उसे दूर कर देगे। चोर, क्षुद्र जलकी तरह, अतीव निवृष्टतासे, अदःपतित हो।

७ इन्द्र, हम स्तोत्र द्वारा तुम्हारा गुण-कीर्तन करके तुम्हें भजते हैं। धनवान् इन्द्र, हम सामर्थ्यवान्, रमणीय, सदा वर्त्मान और पुत्र-भृत्यादि-विशिष्ट धनका उपभोग करें। इन्द्र, तुम्हारी महिमा अज्ञेय है। हम उत्तम स्तोत्र और अन्न प्राप्त करें। हम यज्ञ-निष्पादक इन्द्रको यज्ञाभिलाष फल देनेवाले और यशोवर्द्धक आह्वान द्वारा प्राप्त हों।

८ क्षत्रिको, तुम्हारे और हमारे लिये हृद्र यशस्कर आश्रयदान द्वारा दुर्बुद्धि लोगोंके विनाशक संग्राममें प्रवृद्ध हों और उन्हें विदीर्ण करें। हमारे भक्षक शत्रुओंके हमारे विरुद्ध, हमारे नापके लिये, जो देगवली सेना-भेजी थी, वह सेना स्वयं हत हो गयी है; हमारे पास पहुँची भी नहीं; शत्रुओंके पास भी नहीं लौटी।

९ इन्द्र, राक्षस-शत्रु और पाप-रहित मार्गसे प्रसन्न धन लेकर हमारे पास आओ। इन्द्र, तुम दूर देश और निकटसे आकर हमारे साथ मिलो। तुम दूर और निकट प्रदेशोंसे, यज्ञ-निर्वाहके लिये, हमारी रक्षण करो। यज्ञ-निर्वाह करके सदा हमें पालित करो।

१० इन्द्र, जिस धनसे हमारी आपदाका उद्धार हो सकता है, उसी धनसे हमारा उद्धार करो। तुम उग्र-रूप हो। जैसी मित्रकी महिमा है, हमारी रक्षाके लिये तुम्हारी भी वैसी ही महिमा हो। हे अलवत्तग, हमारे रक्षक, प्राता और अमर इन्द्र, किसी भी स्थान पर चढ़कर आओ। शत्रुनाशक इन्द्र, हमें छोड़कर सभके बाधा दो। शत्रु-भक्षक, अतीव कुकर्मी शत्रुको बाधा दो।

पाहि न इन्द्र सुष्टुत स्त्रियोऽव्याता सदमिद्रु मतीनां देवः सन्दुर्मतीनाम् ।  
इन्सा पापस्य रक्षसस्त्राता विप्रस्य मावतः ।  
अघाहि त्वा जनिता जीजनद्वसो रक्षोऽहणं त्वा जीजनद्वसो ॥ ११ ॥



११० सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् और अत्यष्टि छन्द ।  
एन्द्रयाह्नु प नः परावतो नायमच्छा विदथानीव सत्पतिरस्तं राजेव सत्पतिः ।  
इवामहे त्वा वयं प्रयस्वन्तः सुते सत्वा ।  
पुत्राक्षो न पितरं वाजसातये मंहिष्टं वाजसातये ॥ १ ॥  
पिबा सोममिन्द्र सुवानमद्रिभिः कोशेन सिद्धमवतं न वंसगस्तृषाणो न वंसगः ।  
मदाय ह्यतस्य ते तुविष्टमाय धायसे ।  
आ त्वा यच्छन्तु हरितो न सूर्यमहाविश्वेव सूर्यम् ॥ २ ॥  
अविन्दद्विवो निहितं गुहानिधिं वेनं गर्भं परिवीतमश्मन्यनन्ते अन्तरश्मनि ।  
व्रजं वज्रो गवामिव सिंघासन्नङ्गिरस्तमः ।  
अपावृणोद्विष इन्द्रः परीवृताद्वार इषः परीवृताः ॥ ३ ॥

११ शोभन स्तुतिसे युक्त इन्द्र, दुःखसे हमें बचाओ; क्योंकि तुम सदा दुष्टोंको नोचा दिखाते हो । हमारी स्तुतिसे प्रसन्न होकर यज्ञ-वह्निकारियोंको दमन करो । तुम पाप-राक्षसके इन्सा और हमारे समान बुद्धिमानोंके रक्षक हो । जग-निवास इन्द्र, इसीलिये परमेश्वरने तुम्हें उत्पन्न किया है । निवास-प्रद इन्द्र, राक्षसोंके विनाशके लिये तुम्हारे उत्पत्ति हुई है ।

१ जैसे यज्ञशालामें क्षत्विर्कोके पति यजमान हैं और जैसे नक्षत्रोंके पति चन्द्र अस्तावल जाते हैं, वैसे ही तुम भी, पुरोवर्त्ती सोमकी तरफ, स्वर्गसे हमारे पास आओ । जैसे पुत्र-लोग, अन्न-भक्षणके लिये पिताको बुलाते हैं, वैसे ही तुम्हें हम-सोमाभिषवमें बुलाते हैं । क्षत्विर्कोके साथ दृष्य-ग्रहणके लिये महान् इन्द्रको हम बुलाते हैं ।

२ जैसे शोभनगति वृषभ पिपासित होकर कूप-जलका पान करता है, हे रमणीयगति इन्द्र, वैसे ही वृषि, पराक्रम, मष्टत्व और आश्वन्दोत्पात्तके लिये प्रस्तर द्वारा अभिषुत और जल-सिक्त अथवा दशापवित्र द्वारा शोधित सोमरस पान करो । जैसे हरि नामक अश्व सूर्यको लाते हैं, वैसे ही तुम्हारे अश्वगण प्रतिदिन तुम्हें ले आवें ।

३ जैसे चिड़ियां दुर्गम स्थानमें अपने बच्चोंकी रक्षा करके उन्हें प्राप्त करती वा बच्चोंवाली होती हैं, वैसे ही इन्द्रने भी अत्यन्त गोपनीय स्थानमें स्थापित और अनन्त तथा महान् प्रस्तर-राशिमें परिवेष्टित सोमरसको स्वर्गसे प्राप्त किया । अङ्गिरा लोगोंमें अग्रगण्य वज्रधारी इन्द्रने जैसे पहले, सोमपानकी इच्छासे, गोशालाको प्राप्त किया था, वैसे ही सोमरसको भी पाया । इन्द्रने चारो ओर मेघावृत और अन्नके कारण जलके द्वारोंको खोलते हुए पृथिवीमें चारो ओर अन्न विस्तार किया ।

दादृहाणो वज्रमिन्द्रो गभस्त्योः क्षत्रेव तिग्ममसनाय संश्यदहिहरयाय संश्यत् ।  
 संविष्यान ओजसा शवोभिरिन्द्र मज्जना ।  
 तष्टे वृक्षं वनिनो निवृश्चसि परश्वेव निवृश्चसि ॥४॥  
 त्वं वृथा नद्य इन्द्र सतवेच्छा समुद्रमसृजो रथां इव वाजयतो रथां इव ।  
 इत ऊतीरशुभ्रत समानमर्थमक्षितम् ।  
 धेनूरिष मनवे विश्वदोहसो जनाय विश्वदोहसः ॥५॥  
 इमां ते घाचं घस्यन्त आयवो रथं न धीरः स्वपा अतक्षिषुः सुन्नाय त्वा मतक्षिषुः ।  
 शुभ्यन्तो जेन्यं यथा वाजेप विप्र वाजिनम् ।  
 अत्यमिष शवसे सातये घना विश्वाघनानि सातये ॥६॥  
 भिन्त पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि दाशुपे नृवो वज्रेण दाशुपे नृवो ।  
 अतिथिन्वाय शम्बरं गिरिक्रो अवामरत् ।  
 महो घनानि दयमान ओजसा विश्वा घनान्योजसा ॥७॥

४ इन्द्र दोनों हाथोंमें अब्रु की तरह वज्र धारण करके, शत्रु के प्रति फेंकने के लिये, वज्र के तीक्ष्ण होने पर भी, जैसे मंत्रों द्वारा जल को तीक्ष्ण किया जाता है, वेते ही उसे और भी तीक्ष्ण करते हैं; वृत्र-विनाश के लिये और भी तीक्ष्ण करते हैं। इन्द्र, जैसे वृक्ष काटने वाले वृक्ष को काटते हैं, वेते ही तुम अपनी शक्ति, तेज और शरीर-बल से वर्द्धित होकर हमारे शत्रुओं का ध्वंस करते हो, मानों फरसे से काटते हो ।

५ इन्द्र, तुमने, समुद्र की ओर गमन करने के लिये, रथ की तरह, नदियों को अनायास बनाया है। जैसे बौद्धा रथ को बनाते हैं, वेते ही तुमने भी बनाया है। जैसे मनु के लिये गायेँ सर्वायंदाता हैं और जैसे समर्थ मनुष्य के लिये गायेँ सर्वदुग्ध-प्रद हैं, वेते ही हमारी अभिसुखिनी नदियाँ एक ही प्रयोजन से जल संग्रह करती हैं ।

६ जैसे कर्म-कुशल और धीर मनुष्य रथ बनाता है, वेते ही घनामिलापो मनुष्यों ने तुम्हारी यह स्तुति की है। उन्होंने अपने कल्याण के लिये तुम्हें प्रसन्न किया है। जैसे संसार में दिविजय की प्रशंसा की जाती है, वेते ही हे मेघावी और दुर्धर्ष इन्द्र, उन्होंने तुम्हारी प्रशंसा की है। जैसे संग्राम में अश्व की प्रशंसा होती है, वेते ही बल, धनरक्षण और सारे मंगलों की प्राप्ति के लिये तुम्हारी प्रशंसा होती है ।

७ संग्राम-काल में नृत्यकर्ता इन्द्र, तुमने हविःप्रद और अभीष्ट-दाता दिवोदास राजा के लिये नष्ट नगरों को नष्ट किया था। नृत्यशील इन्द्र, तुमने वज्र द्वारा नष्ट किया था। उग्र इन्द्र, तुमने अतिथिसेवक दिवोदास राजा के लिये पर्वत से शम्बर अश्व को नीचे पटक दिया था और दिवोदास राजा के लिये अपनी शक्ति से अगाध घन दिया था—और क्वा, सारा घन दिया था ।

इन्द्रः समस्तु यजमानमार्यं प्रावद्विश्वेषु यत्सूतिरापिषु स्वर्मीहे ग्याजिषु ।  
 मनवे शासवत्तान् त्वचं कृष्णामरन्धयत् ।  
 दक्षन्विश्वं तवृषाणमोपति न्यर्शत्तानप्रापति ॥८॥  
 सूरश्चक्रं प्रवृहज्जात ओजसा प्रपित्वे धाम्मरुणो मुपायतीशान आमुपावति  
 उशनायत् परावतो जगन्मृतये कवे ।  
 सुप्तानि विश्वा मनुषेव तुर्वणिरहः विश्वेव तुर्वणिः ॥९॥  
 स नो नव्येभिर्वृषकर्मन्नुक्थैः पुरां वर्तो पायुभिः पाहि शम्भैः ।  
 दिवोदासेभिरिन्द्रस्तवानो वावृधीथा अहोभिरिव द्यौः ॥१०॥



१३१ सूक्त । इन्द्र देवता । अत्यष्टि छन्दः ।

इन्द्राय हि धीरसुरो अनघतेन्द्राय महीं पृथिवी वरीमभिर्द्युं ज्ञसाता वरीमभिः ।  
 इन्द्रं विश्वे सजोषसो देवासो दधिरे पुरः ।  
 इन्द्राय विश्वा सवनानि मानुषा रातानि सन्तु मानुषा ॥१॥

८ युद्धमें इन्द्र आर्य यजमानकी रक्षा करते हैं। असंख्य बार रक्षा करनेवाले इन्द्र सारे युद्धोंमें उसकी रक्षा करते हैं। छलकारी युद्धमें उसकी रक्षा करते हैं। इन्द्र मनुष्यके लिये व्रत-शून्य व्यक्तियोंका शासन करते हैं। इन्द्रने कृष्ण नामके अछरकी काली त्वचा उखाड़कर उसका (अंशुमती नदीके तटपर) वध किया। इन्द्रने उसे जला डाला। इन्द्रने सारे हिंसकोंको जला डाला। उन्होंने समस्त निष्ठुर व्यक्तियोंको मरमसात् किया।

९, सूर्यका रथ-चक्र ग्रहण करनेपर इन्द्रके शरीरमें वादली वृद्धि हुई। इन्द्रने उस चक्रको फेंका और अरुणवर्ण-रूप धारण करके, शत्रुओंके पास जाते हुए, उनके वाक्यका हरण कर लिया। तमोजिवारक इन्द्रने उनके वाक्यका हरण कर लिया। वीरकुर्मा इन्द्र, उषावाकी रक्षाके लिये, जैसे तुम दूरस्थित स्वर्गते आये थे, वैसे ही हमारे समस्त सुख-साधन धनके साथ हमारे पास शीघ्र आओ। दूसरोंके पास भी तुम इसी प्रकार आते हो। हमारे पास प्रतिदिन आते हो।

१० जल-वर्षक और नगर-विदारक इन्द्र, हमारे नये मन्त्रसे संतुष्ट होकर विविध प्रकारकी रक्षा और सुख देते हुए, हमें प्रतिपालित करो। हम दिवोदासके गोत्रज हैं; तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम दिग्में, सूर्यकी तरह, प्रवृद्ध हो जाओ।

१ विशाल शुलोक स्वयं इन्द्रके पास नष्ट हुआ है। विस्तृता पृथिवी वरणीय या स्वीकरणीय स्तुति द्वारा इन्द्रके पास नष्ट हुई है। अन्नके लिये भजमान लोग वरणीय हव्य द्वारा नष्ट हुए हैं। सारे देवोंने एक मतसे इन्द्रको अभिषेक किया है। मनुष्योंके सारे यज्ञ और मनुष्योंके सारे दान आदि इन्द्रके सुखके निमित्त हैं।

विश्वेषु हि त्वा सवनेषु तुञ्जने समानमेकं वृषमण्यवः पृथक् स्वः सन्निप्यवः पृथक् ।  
 तं त्वा नाचं नपर्षणिं शृपस्य धुरि धीमहि ।  
 इन्द्रं न यजेद्विषयन्त आयवः सतोमेभिरिन्द्रमायवः ॥२॥  
 यि त्वा ततन्त्रे मिथुना अन्नस्यवो यजस्य साता गव्यस्य निःसृजः सक्षन्त इन्द्र निःसृजः ।  
 यदुगव्यन्ता ह्य जना स्वयन्ता समूहसि ।  
 आविष्करिण्डुपणं सचाभुयं वज्रमिन्द्र सचाभुवम् ॥३॥  
 विदुष्टे अस्य वीर्यस्य पूरवः पुरो यदिन्द्र शारदीरवातिरः सासहानो अवातिरः ।  
 शासस्तमिन्द्र मर्त्यमयज्युं शवस्वरूपते ।  
 महीममुष्णाः पृथिव्यामिमा अपो मन्दसान इमा अपः ॥४॥  
 आदिक्ते अस्य वीर्यस्य चर्किरन्मदेषु वृषन्नुशिजो यदाविथ सखीयतो यदाविथ ।  
 चकथं फारमेभ्यः पृतनासु प्रवन्दध्वं ।  
 ते अत्यामन्यां नद्यं सनिष्णतः श्रवस्वन्तः सनिष्णत ॥ ५ ॥

२ इन्द्र, तुम्हारे पास अभिमत पशुकी प्राप्ति को आपा में प्रत्येक सगर्भ में यजमान लो॥ तुम्हें हव्य प्रदान करते हैं ।  
 तुम सबके लिये समान हो । स्वर्ग-प्राप्ति के लिये केवल तुम्हें ही हव्य दिया जाता है । जैसे नदी पार होने के समय नौका  
 लकी की जाती है, वैसे ही हम सेना के आगे तुम्हें खड़ा करते हैं । यज्ञ द्वारा मनुष्य इन्द्र की ही चिन्ता करते हैं । मनुष्य  
 स्तुति द्वारा इन्द्र की चिन्ता करता है ।

३ इन्द्र, तुम्हारे सेवक और निष्पाप यजमान गो-पुत्र, तुम्हारी वृत्ति की इच्छा से, बहुसंख्यक गोधन की प्राप्ति के  
 लिये, बहुत हव्य दान करते हुए तुम्हारे उद्देश्य से यज्ञ-विस्तार करते हैं । ये गोधन चाहते हैं और स्वर्ग-गमन के लिये उत्सुक  
 हैं । तुम उनको अभीष्ट प्रदान करो । इन्द्र, तुम अभीष्ट-वर्धक हो । तुमने अपने सहजन्मा और चिर-सहचर वज्रका आवि-  
 ष्कार किया है ।

४ इन्द्र, मनुष्य तुम्हारी महिमा जानते हैं । तुमने जिन शत्रुओं की संवत्सर पर्यन्त खाई या परिखा आदि से  
 छड़ी-छत नगरियों को नष्ट किया था, उन्हें पराजित कर विनष्ट किया था—वह कथा मनुष्य जानते हैं । दलपति इन्द्र,  
 तुमने यज्ञ-विघातक मनुष्यका शासन किया था । तुमने विशाल पृथ्वी और जलराशिको जीता था । तुमने आनन्द से  
 लक्ष निकाल किया था ।

५ इन्द्र, सोमपान कर द्रव्यमान होने पर मनोरथ-दाता बनो । चूँकि तुम यजमानों को रक्षा किया करते हो; अपने  
 मनुष्यताकामी यजमानों की रक्षा किया करते हो; इसलिये मैं, तुम्हारी वृद्धि के निमित्त, बार-बार हव्य प्रदान करते हैं ।  
 बुद्ध-संरक्षक, भोरा के लिये तुमने सिंहनाद किया था । यजमान लोग तुमसे नाना प्रकार की भोग्य वस्तु पाते हैं; अन्वारी-  
 शोकर तुम्हारे पास प्राप्त होते हैं ।



उतो नो अस्या स्यसो जुपेतह्यर्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः स्वर्पाता हवीमभिः ।  
यदिन्द्र हस्तस्य मृधो वृषा वज्रिश्चिकेतसि ।  
आ मे अस्य वैधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥ ६ ॥  
त्वं तमिन्द्र वावृधादो अस्मश्रुमित्रयन्तं तुविजात मर्त्यं वज्रेण शूरमर्त्यम् ।  
अहि यो नो अधायति शृणुष्व सुश्रवस्तमः ।  
रिष्टं न यामन्नपभूनु दुर्मतिर्विश्वापभूत दुर्मतिः ॥ ७ ॥



११२ सूक्त । इन्द्र देवता । अत्यष्टि छन्दः ।

स्वया वयं मध्वन् पूर्व्यं धन इन्द्रतोताः सासह्याम पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यतः ।  
नेदिष्टे अस्मिन्नहन्यधिवोवानु सुन्वते ।  
अस्मिन् यज्ञे विनयेमामरेकृतं वाजयन्तो मरे कृतम् ॥ १ ॥  
स्वर्जपे भर आपस्य वक्त्रम्युषर्वधः स्वस्मिन्नञ्जसि काणस्य स्वस्मिन्नञ्जसि ।  
अहन्निन्द्रो यथा विदे शीर्ष्णा शीर्ष्णोपवाच्यः ।  
अस्मन्नाते सन्नयक सन्तु रातयो भद्रामद्रस्य रातयः ॥ २ ॥

६ इन्द्र, तुम हमारे प्रातःकालीन यज्ञको आश्रित करोगे क्या? इन्द्र, आह्वान-मंत्र द्वारा प्रदत्त, पूजाके लिये, हव्यको जानो। आह्वान मंत्र द्वारा आह्वान होकर छत्र-भोगके स्थानपर उपस्थित हो जाओ। वज्रयुक्त इन्द्र, निन्दकोंके विनाशके लिये अनौपचारिक होकर जागो। इन्द्र, मैं मेवावो और नया मनुष्य हूँ; मैं स्तुतिवाला हूँ; मेरा मनोहर स्तोत्र छनो।

७ अनेक गुण-विशिष्ट इन्द्र, हे शूर, तुमने हमारी स्तुतिसे इन्द्रि पायी है और हमारे प्रति सन्तुष्ट हो। जो व्यक्ति हमारे प्रति शत्रुताका आचारग करता है और जो हमें दुःख पहुँचाना चाहता है, उसे वज्र द्वारा विनष्ट करो। हे छननेके लिये उत्कृष्ट इन्द्र, छनो। इन्द्र, मार्गमें यज्ञे-मन्त्रि व्यक्तिको जो दुर्बुद्धि मनुष्य पीड़ा पहुँचाते हैं, उस प्रकारके सारे दुर्मति मनुष्य हमारे पाससे दूर हो जायें।

१ हे छत्र-संयुक्त इन्द्र, तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर हम प्रबल वाहिनीसे सभन्न शत्रुओंको परास्त करेंगे। प्रहारके लिये प्रसन्न शत्रुपर प्रहार करेंगे। इन्द्र, पूर्व-धन-संयुक्त यह यज्ञ निकटवर्ती है; इसलिये आज हविर्वाता यज्ञमानके उत्साहके लिये कथा कहो। इन्द्र, तुम युद्ध-जयी हो। तुम्हारे उद्देश्यसे हम हव्य लाते हैं। तुम युद्ध-विजेता हो।

२ शत्रुवधके लिये छत्र-छत्र दौड़नेवाले वीर पुरुषोंके स्वर्ग-साधन तथा कपटादि-रहित मार्ग-स्वरूप संपादनके जागे इन्द्र, प्रातःकालमें जागे हुए याज्ञिकोंके, शत्रुओंका नाश करते हैं। सर्वज्ञकी तरह इन्द्रकी सबल-भक्त होकर स्तुति करना सबका कर्तव्य है। इन्द्र, तुम्हारा दिया धन केवल हमारे ही लिये हो। तुम भद्र हो, तुम्हारा दिया धन स्थिर हो।

तत्तु प्रयः प्रजया ते शुशुक्तं यस्मिन् यक्षे धारमकृत्वत क्षयमृतस्य धारसि क्षयम् ।

वितहोचेरधहितान्तः पश्यन्ति राश्मभिः ।

सघा चिदे अन्विन्द्रो गवेपणो बन्धुक्षिद्रभ्यो गवेपणः ॥ ३ ॥

तु इरया ते पूर्वथा च प्रधाच्यं यदङ्गितोम्योवृणोरपव्रजमिन्द्र शिक्षन्पव्रजम् ।

एभ्यः समान्यादिशास्मभ्यं जेपि योत्सि च ।

सुन्वद्भ्योरन्धया कश्चिद्वतं हृणायन्तं चिद्वतम् ॥ ४ ॥

सं यज्जनान् फतुभिः शूर ईक्षयद्धने हिते तरुपन्त ध्रुवस्यवः प्रयक्षन्त श्रवस्यवः

तस्मा आयुः प्रजावदिद्वाधे अचन्त्योजसा ।

इन्द्र ओवयं दिधिपन्त धीतयो देवाँ अच्छान घीतयः ॥ ५ ॥

युवन्तमिन्द्रापर्षता पुरोयुधा दो नः पृतन्यादपतःतमिद्वतं वज्रं ण तं तस्मिद्धतम् ।

दूरे चत्तायच्छन्तसद्गहनं यदिनक्षत्

अस्माकं शत्रून् परि शूर दिष्टो दर्मादर्पोष्ट विश्वतः ॥ ६ ॥



३ इन्द्र, पूर्वकी तरह इस समय भी अतीव दीप्त और प्रसिद्ध दृश्य-रूप अन्न तुम्हारा ही होगा । तुम यज्ञके निवास-स्थान-स्वरूप हो । जिस अन्न द्वारा आत्त्विक लोग स्थान सुपोषित करते हैं, वह अन्न तुम्हारा ही होगा । तुम यज्ञकी कथा कहो । ऐसा होनेपर संसार आकाश और पृथिवीके बीच सूर्य-किरण द्वारा देख सकेगा । इन्द्र जलकी गोपेपणामें तत्पर हैं । वह अपने बन्धु यजमानोंके लिये गौ दोजते हैं । वह उक्त क्रमसे सारी कथाएँ जानते हैं ।

४ इन्द्र, पूर्व कालकी तरह तुम्हारा कर्म इस समय भी सबकी प्रशंसाके योग्य है । तुमने अङ्गिरा लोगोंके लिये मेघका उद्घाटन किया था । तुमने षपहस गो-धनका उद्धार करके उन लोगोंको दिया था । इन्द्र, तुम उक्त ऋषियोंकी तरह ऋषीयोंके लिये युद्ध करते और विजयी बनते हो । जो अभिषव करते हैं, उनके लिये यज्ञ-विश्वकारियोंको अवनत करते हो । जो वज्र-विश्वकारी रोष प्रकाशित करते हैं, उन्हें अवनत करो ।

५ चूँकि शूर इन्द्र, कर्म द्वारा मनुष्योंके विषयमें यथार्थ विचार करते हैं, इसलिये अन्नामिलापी यजमानगण अभिमता धन प्राप्त करके शत्रुओंका विनाश करते हैं । वे अन्नामिलापी होकर विशेष रूपसे यज्ञ करते हैं । इन्द्रके उद्देश्यसे प्रदत्त अन्न पुत्रादि प्राप्ति का कारण है । अपनी शक्तिये शत्रुके निवारणके लिये लोग इन्द्रकी पूजा करते हैं । यज्ञकारी लोग इन्द्रके पास वास-स्थान प्राप्त करते हैं, मानों याज्ञिक लोग देवोंके पास ही रहते हैं ।

६ हे इन्द्र और पर्यव या मेघके अभिमानी देव, तुम दोनों अग्रगामी होकर, जो शत्रु हमारे विरोधमें सेना-संग्रह करते हैं, उन सबको विनष्ट करो । वज्र-प्रहार द्वारा उन सबको विनष्ट करो । यह वज्र अत्यन्त दूरगामी शत्रुका भी विनाश करनेकी इच्छा करता और अति गहन स्थानपर भी व्याप्त होता है । शूर इन्द्र, तुम हमारे सारे शत्रुओंको त्रिविध उपायों द्वारा विधीर्ण करते हो । शत्रु-विहारक वज्र विविध उपायोंसे विधीर्ण करता है ।

१३३ सूक्त । इन्द्र देवता । छन्द त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, गायत्री, धृति और अत्यष्टि ।

उभे पुनामि रोदसी ऋतेन द्रुहो इहामि संमहीरन्दिन्द्राः ।

अभिबलम्य यत्र हता अमित्रा वैलस्थानं परितृह्य अशेरन् ॥ १ ॥

अभिबलम्याष्विद्विवः शीर्षां यातु मतीनाम् ।

छिन्धि घटूरिणा पदा महाघटूरिणा पदा ॥ २ ॥

अवासां मघवज्जहि शर्धो यातुमतीनाम् ।

वैलस्थानके अर्मके महावैलस्थे अर्मके ॥ ३ ॥

यासां तिरः पश्चाशतोभिबलङ्ग रपावपः ।

तत् सुते मनायति तक्तु ते मनायति ॥ ४ ॥

पिशाङ्गभृष्टिमभृष्टं पिशाचिमिन्द्र संमृण । सर्वं रक्षो निवर्ह्य ॥ ५ ॥

अवर्मह इन्द्र दाहहि श्रुधी नः शुशोच हि द्यौः क्षानभीषाँ अद्रिवोघृणां न भीषाँ अद्रिवः ।

शुष्मिन्तमो हि शुष्मिभिवधैरुग्रेभिरीयसे ।

अपूरयघ्नो अग्रतीत शूर सत्वमिहिससतैः शूर सत्वभिः ॥ ६ ॥

१ मैं आकाश और पृथिवी, दोनोंको, यज्ञ द्वारा पवित्र करता हूँ । मैं इन्द्र-शून्या और विद्रोहिणी पृथिवीको अच्छी तरह दग्ध करता हूँ । जिस-किसी स्थानपर शत्रुगण एकत्र हुए, वहीं मारे गये । अच्छी तरह विह्वल होकर वे रमणा-नकी चारों ओर पड़ गये ।

२ शत्रु-भक्षक इन्द्र, हिसावाली सेनाका तिर एकत्र करके तुम उसे विशाल पद द्वारा छेदन करो । तुम्हारा पद मदाविस्तीर्ण है ।

३ मघवन् इन्द्र, इस हिसावती सेनाका बल चूर्ण कर दो और उसे कुत्सित अथवा महान् रमशानमें फेंक दो ।

४ इन्द्र, इस तरह तुमने त्रिगुणित पचास सेनाओंका नाश किया है । तुम्हारे इस कार्यको लोग बहुत पसन्द करते हैं । तुम्हारे लिये यह कार्य सामान्य है ।

५ इन्द्र, कुछ रक्तवर्ण, अति मयंकर और शब्दकारी पिशाच या अनार्यका विनाश करो और समस्त राक्षसों वा अनार्योंको समाप्त करो ।

६ इन्द्र, तुम विशाल मेघको, निम्न सुख करके, विदीर्ण करो । हमारी बात सुनो ! मेघ-युक्त इन्द्र, जैसे घाम्ब्र में होनेसे ढरके मारे पृथिवी शोक करती है, वैसे ही स्वर्ग भी शोक करता है । मेघ-संपन्न इन्द्र, पृथिवी और स्वर्गका भव कीप्त अग्निही मूर्त्तिकी तरह है । इन्द्र, अपने बलसे तुम महाबली हो; इसलिये तुम सत्यन्त क्रूर वधोपायका आश्रय करते आ रहे हो । यजमानोंका विनाश जहाँ कर सकते । तुम शूर हो । जीवराण तुम्हारे उपर आक्रमण नहीं कर सकते । तुम इक्कीस अनुचरोंसे युक्त हो ।

॥ कदाचित् ये इक्कीस अनुचर मरुद्गण हैं ।

वनोति हि सुन्नन् क्षयं परीणसः सुन्नानो हिष्मा यजत्यवहिषो देवानामवहिषः ।  
 सुन्नान इत् सियासति सहस्रा वाज्यवृतः ।  
 सुन्नानायेन्द्रो ददात्याभुव १ यि ददात्याभुवम् ॥ ७ ॥

२० अनुवाक । १३४ सूक्त । वायु देवता ।

आ त्वा जुयो शरदाणा अभिप्रयो वायो वहन्त्विहः पूर्वप्रीतये सोमस्य पूर्वप्रीतये ।  
 ऊर्ध्वति अनु सूनुता मनस्तिष्ठतु जानती ।  
 नियुत्यता रथेनावाहि दावने वायो मखस्य दावने ॥ १ ॥  
 मन्दन्तु त्वा मन्दिनो वार्यावन्दवोस्मत् क्राणासः सुल्लता अभिचवो गोभिः क्राणा अभिचवः ।  
 यद्ध क्राणा इरर्ध्यै दक्षं सत्तन्त ऊतयः ।  
 सधीचीना नियुतो दावने धिय उपमृवत ईन्ध्रियः ॥ २ ॥  
 वायुर्युक्ते रोहिता वायुररुणा वायू रथे अजिरा धुरिवोहवे वहिष्ठा धुरिवोहवे ।  
 प्रधोधयः पुरन्धिं जार आस्रसतीमिव ।  
 प्रचक्षगरोदसी वासयोपसः श्रवसे वासयोपसः ॥ ३ ॥

७ इन्द्र, अभिषव करनेवाला यजमान गृह प्राप्त करता है । सोमयज्ञ करनेवाला चारो ओरके शत्रुओंका विनाश करता है । देव-शत्रुओंका भी विनाश करता है । अन्नवाला और शत्रुके आक्रमणसे शून्य अभिषवकर्ता अपरिमित धन प्राप्त करता है । इन्द्र सोमयाजक यजमान वस्तुर्विद्क उत्पन्न और अति समृद्ध धन प्रदान करता है ।

१ वायुदेव, शीघ्रगामी और चलवान् अश्व तुम्हें, अन्नके उद्देश्यसे और देवोंके बीच प्रथम, सोमदानके लिये, इस यज्ञमें ले आये । हमारी प्रिय, सत्य और उच्च स्तुति अच्छी तरह तुम्हारे गुणकी व्याख्या करती है । वह तुम्हें अभिमत्त हो । यज्ञके हव्यकी स्वीकृति और हमें अभीष्ट देनेके लिये नियुत नामक अश्वोंसे युक्त रथपर आओ ।

२ वायु, मादकतोत्पादक, हर्षजनक, सम्यक् प्रस्तुत, उज्ज्वल और मन्त्र द्वारा हूयमान सोमदिन्दु तुम्हारे सामने आकर हर्ष उत्पन्न करें; क्योंकि कर्म-कुशल, प्रीतियुक्त, निरन्तर सदागामी नियुत, तुम्हारा उत्साह देखकर, हव्य ग्रहणके लिये, तुम्हें यज्ञभूमिमें लानेके लिये मिलते हैं । बुद्धिमान् यजमान लोग तुम्हारे पास आकर समोगत भाव व्यक्त करते हैं ।

३ भारवहनके लिये वायु लोहितवर्ण अश्व योजित करते हैं । वायु रुक्णवर्ण अश्व योजित करते हैं । वायु अजिर-वर्ण या गमनशील अश्व योजित करते हैं; क्योंकि, ये भारवहनमें, अत्यन्त समर्थ हैं । जैसे थोड़ी मिट्टीमें आयी सूनीको उसका आसक्त जगा देता है, उसी तरह तुम भी गृहयज्ञ-प्रबोधित यजमानको जगाते हो । तुम आकाश और पृथिवीको प्रकाशित करते हो । उषाको स्थापित करते हो । हव्य ग्रहणके लिये उषाको स्थापित करते हो ।

तुभ्यमुपासः शुचयः परावति भद्रा वस्त्रा तन्वते दंसुराश्मिषु चित्ता नध्येषु रश्मिषु ।  
 तुभ्यं धेनुः सवर्दुषा विश्वा वसूनि दोहते ।  
 अलनयो मरुतो वक्षणाभ्यो दिव आवक्षणाभ्यः ॥४॥  
 तुभ्यं शुक्रासः शुचयस्तुरण्यवो मदेपूत्रा इपणन्त भुर्वण्यपामिपन्तु भुर्वणि ।  
 त्वांत्सारी दंसमानो भगमीदृ तक्वीये ।  
 त्वं विश्वस्माद्भुवनात् पासि धर्मणा सूर्यात् पासि धर्मणा ॥५॥  
 त्वं नो वायवेषामपूर्यः सोमानां प्रथमः पीतिमर्हसि सुतानां पीतिमर्हसि ।  
 उतो विहुत्सतीनां विशां ववर्जु पीणाम् ।  
 विश्वा इतो धेनवो दुह आशिरं घृतं दुहत आशिरम् ॥६॥



१३५ सूक्त । वायु देवता । अत्यन्ति छन्द ।

स्तीर्णं बहिरूप नो याहि वीतये सहस्रेण नियुता नियुत्वते शतिनीभिर्नियुरवते ।  
 तुभ्यं हि पूर्वपीतये देवा देवाय येमिरे ।  
 प्र ते सुतासो मधुमन्तो अस्थिरन्मदाय कृत्वे अस्थिरन् ॥ १ ॥

४-दीप्तियुक्त उपास, दूर देशमें, तुम्हारे ही लिये, घरोंको ढकनेवाली किरणोंसे कल्याणकर वस्त्रका विस्तार करती हैं। नदी किरणोंसे विचित्र वस्त्रका विस्तार करती हैं। अमृत घरसानेवाली गायें तुम्हारे ही लिये समस्त घन दान करती हैं। तुमने वर्षा और नदियोंके उत्पादनके लिये अन्तरीक्षसे मस्तोंको उत्पादित किया है।

५-पील, शुद्ध, उग्र और प्रवाहवाली सोम, तुम्हारे आनन्दके लिये आहवनीय अग्निके पास जाता है और जलमार-वाहक नेत्रकी आकांक्षा करता है। वायु, यजमान लोग, अत्यन्त भीत और क्षीणकाय होकर चोरोंके हडनेके लिये तुम्हारी पूजा करते हैं। हमारे धार्मिक होनेसे हमें सारे भूतोंसे रक्षा करो। हमें, धर्म-संयुक्त होनेके कारण, अघरोंसे रक्षा करो।

६-वायु, तुमसे पहले किसीने सोमपान नहीं किया है। तुम्हीं पहले हमारे हस्त सोमपातको करनेके योग्य हो; अमिषुत सोमपान करने योग्य हो। तुम हवनकर्त्ता और निष्पाप लोगोंका हव्य स्वीकार करते हो। सारी गायें तुम्हारे लिये दूध देती हैं और तुम्हारे लिये जी भी देती हैं।

१ नियुत अम्बवाले वायु, तुम कितने ही नियुतोंपर चढ़कर, अपने लिये प्रस्तुत हव्यके भक्षणके लिये, हमारे निजाये कुशोंपर आओ। अलंक्य नियुतोंपर चढ़कर आओ। तुम नियुतवाले हो। तुम्हारे पहले पान करनेके लिये अम्ब देवता सुप हैं। अमिषुत मधुर सोम तुम्हारे आनन्दके लिये है; यज्ञ-सिद्धिके लिये है।

तुभ्यार्यं सोमः परिपूतो अद्रिमिः स्पर्धावसानः परिक्रीशमर्पति शुक्रावसानो अर्चति ।

तथार्यं भाग आयुषु सोमो देवेषु ह्यते ।

यह वायो नियुतो याहास्मयुर्जुपाणो याहास्मयुः ॥ २ ॥

आ नो नियुक्तिः क्षतिनोभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुपयाहि वीतये वायो हव्यानि वीतये ।

तथार्यं भाग अत्विषः सरश्मिः सूर्ये सत्वा ।

अध्वर्यभिर्मरमाणा अंसत वायो शुक्रा अर्यंसत ॥ ३ ॥

आयां रयो नियुत्वान्वक्षद्वलेमि प्रयांसि धुधितानि वीतये वायो हव्यानि वीतये ।

पिबतं मध्वो अन्धसः पूर्वपेयं हि पांहितम् ।

वायवा चन्द्रेण राधसागतमिन्द्रश्च राधसागतम् ॥ ४ ॥

आ वां धियो चवृत्युरध्वरं उपेममिन्दं ममृजस्त वाजनमाशुमर्त्यं न वाजिनम् ।

तेषां पिबतमस्मयू आ नो गन्तमिहोत्या ।

इन्द्रवायू सुतानामद्रिमिर्यवं मदाय वाजदा युयम् ॥ ५ ॥

इमे वां सोमा अपस्वा सुता इहाध्वर्युभिर्मरमाणा अर्यंसत वायो शुक्रा अर्यंसत ।

पते वामम्यसुक्षत तिरः पवित्रमाशवः ।

युवायवोति रोमाण्यव्यया सोमासो अत्यव्यया ॥ ६ ॥

३ वायु, तुम्हारे लिये, परस्परते परियोधित और आर्काक्षणीय तथा तेजा-सम्पन्न सोम अपने पात्रमें जाता है; शुक्र तेजसे संयुक्त होकर तुम्हारे पास जाता है। मनुष्य लोग देवोंके मध्य तुम्हारे लिये यही अन्ध सोम प्रदान करते हैं। वायु, तुम हमारे लिये नियुक्त अर्घ्योंको जोतो और प्रस्थान करो। हमारे ऊपर अनुपद कर और प्रसन्न होकर प्रस्थान करो।

१ वायु, तुम सैकड़ों और हजारों नियुक्तोंपर सवार होकर अभिमता-सिद्धि और हव्य भक्षणके लिये हमारे यज्ञ-में उपस्थित हो। यही तुम्हारा नेने योग्य हिस्सा है; यह सूर्यके तेजसे तेजस्वी है। अत्विक्के हाथका सोम तेजार है। वायु, पवित्र सोम तेजार है।

४ हमारी रक्षाके लिये, हमारे सगृहीत अन्न-भक्षणके निमित्त और हमारे हव्यकी सेवाके लिये, हे वायु, नियुक्ते युक्त रथ तुम दोनों (इन्द्र और वायु) को ले आने। तुम दोनों मधुर सोमरस पान करो। पहले पान करना हो तुम लोगोंके लिये ठीक है। वायु, मनोहर धनके साथ आओ। इन्द्र भी धनके साथ आओ।

५ हे इन्द्र और वायु, हमारे सजोत्र आदि तुम लोगोंके यज्ञमें आनेके लिये प्रेरित करते हैं। जैसे वीज्रगामी अरवको परिमार्जित किया जाता है, वैसे ही ऋतसे लाये हुए सोमको अत्विक् लोग परिमार्जित करते हैं। अध्वर्युओंका सोमपान करो। हमारी रक्षाके लिये यज्ञमें आओ। तुम दोनों अन्नदाता हो; इसलिये हमारे प्रति प्रपन्न होकर, आनन्दके लिये, परस्परके टुकड़से अभिषुत सोम पान करो।

६ हमारे इस यज्ञ-कार्यमें अभिषुत और अध्वर्युओं द्वारा गृहीत सोम निश्रय ही तुम्हीं दोनोंका है। यह वीत सोम निश्रय ही तुम लोगोंका है। यह यथेष्ट सोम निश्रय ही तुम्हारे लिये देके सोमाधार कुपमें परिष्कृत हुआ है। तुम्हारा सोम अक्षिन्न लोगोंको काँवकर प्रभु परिमाणमें जाता है।

अति वायो ससतो याहि शश्वतो यत्र ग्रावा वदति यत्र गच्छतं गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् ।  
 विसृता ददृशे रीयते घृतमापूर्णया नियुता याथो अध्वरमिन्द्रश्च याथो अध्वरम् ॥ ७ ॥  
 अत्राह तद्वेदे मध्व आहुतिं यमश्वत्थमुपतिष्ठन्त जायदोस्मेते सन्तु जायवः ।  
 साकं गावः सुवते पच्यते यवोनते वाय उपदस्यन्ति धेनवोः नापदस्यन्ति धेनवः ॥ ८ ॥  
 इमे ये ते सुवायो बाह्वोजसोन्तर्नदी ते पतयन्त्युक्ष्णो महि ब्राधन्त वसूणः ।  
 धन्वश्चिद्ये अनाशवो जीराश्चिदगिरौकसः ।  
 सूर्यस्येव रश्मयो दुर्नियन्तवो हस्तयोर्दुर्नियन्तवः ॥ ९ ॥



१३६ सूक्त । मित्रावरुण देवता । अत्यष्टि और त्रिष्टुप् छन्द ।

प्रसुज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमो हव्यं मतिं भरता मृडयद्भ्यां स्वादिष्टं मृडयद्भ्याम् ।  
 ता सभ्राजा घृतासुती यज्ञे यज्ञ उपसुता ।  
 अथैनोः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं नूचिदाधृषे ॥ १ ॥

७ वायु, तुम निद्रालु यजमानोंको अधिक्रम करके उस गृहमें जाओ, जिस गृहमें प्रस्तरका शब्द होता है । इन्द्र भी उसी गृहमें जायें । जिस गृहमें प्रिय और सत्य स्तुतिका उच्चारण होता है, जिस घरमें घृत जाता है, उसी यज्ञस्थानमें मोहें नियुक्त बोझोंके साथ जाओ । इन्द्र, वहाँ जाओ ।

८ हे इन्द्र और वायु, तुम इस यज्ञमें मधुके समान उस आहुतिको धारण करो, जिसके लिये विजेता यजमान पर्वत आदि प्रदेशोंमें जाते हैं । हमारे विजेता लोग यज्ञके निर्वाहके लिये समर्थ हों । इन्द्र और वायु, गायें एक साथ वृष देवी हैं और बबसे बनाया हव्य तैयार होता है । ये गायें न तो कम होंगी, न नष्ट होंगी ।

९ वायु, ये जो तुम्हारे बलशाली, नौजवान बलोंके समान और अत्यन्त दृढ़-पुष्ट घोड़े हैं, वे तुम्हें स्वर्ग और पृथिवीमें ले जाते हैं; ये अन्तरोक्षमें भी देर नहीं करते; ये बड़बड़ घोघ्रगामी हैं; कौटसे भी इनकी गति नहीं रक्खी । सूर्य-क्षिणोंकी तरह इनकी गतिका रोकना दुःसाध्य है । हाथोंसे इनकी गतिका रोकना कठिन है ।

१ ऋत्विक्कृष्ण, चिरन्तन मित्रावरुणको उद्ध्य कर प्रशंसनीय और प्रबुद्ध सेवा करो । उन्हें हव्य देनेमें कृत-निश्चय बनो । मित्रावरुण यजमानोंको सुख देनेमें कारण हैं । वे स्वादिष्ट हव्यका भक्षण करते हैं । वे सभ्राह् हैं । उनके लिये घृत गृहीत होता है । प्रतियज्ञमें उनकी स्तुति होती है । उनकी चित्का कोई अलङ्घन नहीं कर सकता । उनके देवत्वमें किसीको सन्देह नहीं होता ।

अदृशिं धातुस्त्वे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयंस्त रश्मिभिश्चक्षुर्भगस्य रश्मिभिः ।

युष्मं मित्रस्य सादनमर्थम्णो वरुणस्य च ।

अथा दधाते वृद्धदुष्यम् वय उपस्तुत्यं वृद्धयः ॥ २ ॥

ज्योतिष्मतीमदिति धारयतिस्विति स्वर्पतीमासद्येते दिवेदिवे जागृवांसा दिवेदिवे ।

ज्योतिष्मत् क्षत्रमाशाते आदित्या दानुनरुपती ।

मित्रस्तयोवेदणो यातयज्जनोर्यमा यातयज्जनः ॥ ३ ॥

अयं मित्राय वरुणाय शन्तमः सोमो भूत्ववपानेष्वामगो देवो देवेन्द्रामगः ।

तं देवासो जुपेरत विश्वे अद्य सजोपसः ।

तथा राजाना करथो यदीमह ऋतावाना यदीमहे ॥ ४ ॥

यो मित्राय वरुणायविधज्जनो नर्वाणं तं परिपातो अंहसा दाश्वंसं मर्तमंहसः ।

तमर्यमाभिरक्षत्यृज्यन्तमनुव्रतम् ।

स्वयैर्य पनोः परिभूयति व्रतं स्तोमैराभूयति व्रतम् ॥ ५ ॥

नमो दिवे वृद्धते रोदसीभ्यां मित्राय वोचं वरुणाय मोदुलुपे सुवृज्जीशाय मोदुलुपे ।

इन्द्रमग्निमुपस्तुहि द्युक्षमर्यमणं भगम् ।

ज्योतीवन्तः प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि ॥ ६ ॥

२ अष्ट उपा निस्तुत यज्ञकी ओर जाती है—ऐसा देखा गया । श्रीब्रह्मगामा सूर्यका पक्ष व्याप्त हुआ । सूर्य-किरणोंमें मनुष्यकी आँखें खुलीं । मित्र, अर्यमा और वरुणके उज्ज्वल गृह प्रकाशसे परिपूर्ण हुए; इस लिये तुम दोनों प्रदासनीय और बहुत अन्न धारण करो । प्रदासनीय और प्रभूत अन्न धारण करो ।

३ यत्रमानं ज्योतिष्मतो, सम्पूर्ण-लक्षणा और स्वर्ग-प्रदायिनी वेदी तैयार की । तुम लोग सदा जागरूक रहकर और प्रतिदिन वहाँ उपस्थित होकर तेज और बल प्राप्त करा । तुम लोग अद्विष्टके पुत्र और सर्व-प्रकार दानके कर्ता हो । मित्र और वरुण लोगोंका अर्घ्य व्यापारमें लगाते हैं । अर्यमा भी ऐसा करते हैं ।

४ मित्र और वरुणके लिये यह सोम प्रसन्नता-दायक हो । वे दोनों जीवे सुँह करके इसे पान करें । दीप्यमान सोम देवोंकी सेवाके उपयुक्त है । सारे देवगण अतीव प्रसन्न होकर इसे पियें । प्रकाशशाली मित्र और वरुण, हम जैसी प्रार्थना करते हैं, वेता हो करा । तुम लोग सत्यवादी हो; हम जिसके लिये प्रार्थना करते हैं, उसे करो ।

५ जो व्यक्ति मित्र और वरुणकी सेवा करता है, उसे तुम पापसे बचाओ । ह्येष-शून्य और हृष्यवासा मनुष्यको सारे पापोंसे बचाओ । उस सरल-स्वभाव वरुणको, उससे त्रयको लक्ष्यकर, अर्यमा रक्षा करते हैं । वह यजमान मंत्र द्वारा मित्रावरुणका व्रत ग्रहण करता और स्तोत्र द्वारा उसकी रक्षा करता है ।

६ मैं प्रकाशशाली और महान् सूर्यको नमस्कार करता हूँ । पृथिवी, आकाश; मित्र, वरुण और स्वर्गकी भी नमस्कार करता हूँ । ये सब अमोघ फल और सज्जे दाता हैं । इन्द्र, अग्नि, दीप्तिमान् अर्यमा और भगकी स्तुति करो । हम बहुत दिनों जोर मित्रावरुणका बुद्धिसे बिदे रहेंगे । इसी प्रकार सोम द्वारा हम रक्षित होंगे ।



उत्ती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयशसो भरुन्निः ।  
अग्निमित्रो वरुणः शर्मयसन्तदश्याम मघवानो वयं च ॥ ७ ॥



७ हमने इन्द्रको प्राप्त किया है । हमारे ऊपर भरदृगण कृपा करते हैं । देवता लोग हमें बचावें । इन्द्र, अग्नि, मित्र और वरुण हमारे लिये छलवाता हों । हम अन्नते संयुक्त होकर उसी छलका भोग करें ।

प्रथम अध्याय समाप्त



## २ अध्याय



१३७ सूक्त । मित्रावरुण देवता । अतिशक्ती छन्द ।  
 सुपुमायातमद्रिमिर्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे ।  
 आ राजाना दिविस्पृशाः मत्रा गन्तमुप नः ।  
 इमे वा मित्रावरुणा गवाशिरः सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥ १ ॥  
 इम आयातमिन्दवः सोमासो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः ।  
 उत वामुपसो युधिसाकं सूर्यस्य रश्मिभिः ।  
 सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये ॥ २ ॥  
 तां वा धेनुं नवासरीमंशुं दुहन्त्याद्रिभिः सोमं दुहन्त्याद्रिभिः ।  
 भस्मत्रा गन्तमुप नोर्वाञ्चा सोमपीतये ।  
 अयं वा मित्रावरुणा नृभिः सुतः सोम आपातये सुतः ॥ ३ ॥



१३८ सूक्त । पूषा देवता । अत्यष्टि छन्द ।  
 प्र प्र पूष्णस्तुविजातस्य शस्यते महित्वमस्य तवसो न तन्दते स्तोत्रमस्य न तन्दते ।  
 मर्त्वामि सुस्यन्नहमन्त्यूतिं मयोभुवम् ।  
 विश्वस्य यो मन आयुयुवे मस्रो देव आयुयुवे मखः ॥ १ ॥

१ हम पत्थरके टुकड़ोंसे सोम जुभाते हैं । मित्रावरुण, आओ । दूध-मिला और पृथि करनेवाला सोम यही कामने है । यह सोम वृत्ति देनेवाला है । तुम राजा, स्वर्गवासो और हमारे रक्षक हो । हमारे यज्ञमें आओ । तुम्हारे ही किये यह सोम दूधके साथ मिलाया गया है । दूध-मिलाया सोम विशुद्ध होता है ।

२ मित्रावरुण, आओ । यह तरुण सोमरस दहीके साथ मिलाया हुआ है । अमिपुत्र सोमरस दहीके साथ मिलाया गया है । उषाके उदय-कालमें हो हां अपवा सूर्य-किरणोंके साथ ही हो—तुम्हारे लिये सोम अमिपुत्र है । यह सुन्दर सोम-रस मित्र और वरुणके पानके लिये है—यज्ञ-स्थलमें उनके पीनेके लिये है ।

३ तुम्हारे लिये बहुत रसवाली सोमकृताको, दुग्धवती गायकी तरह, पत्थरके टुकड़ोंसे बे दूहते हैं । वे प्रस्तर-कवच द्वारा सोमको दूहते हैं । तुम हमारे रक्षक हो । सोम पानके लिये हमारे सामने हमारे पास तुम आओ । मित्र और वरुण, नेताओंने तुम्हारे लिये सोम जुवाया है—अच्छी तरह पीनेके लिये अमिषव किया है ।

१ अनेक मनुष्यों द्वारा पूजित पूषा ( सूर्य ) देवकी शक्तिकी महिमा सर्वत्र प्रशंसा प्राप्त करती है । कोई उसे आरना नहीं चाहता । पूषाके स्तोत्रकी विश्रान्ति नहीं है । मैं छत्र पानेकी इच्छासे पूषाकी पूजा करता हूँ । यह सुरत जहारा देते और उत्पन्न करते हैं । पूषा यज्ञवाले हैं । यह सारे मनुष्योंके मनके साथ मिला जाते हैं ।

प्र हि त्वा पूषन्नजिरं न यामनि स्तोमेभिः कृणव ऋणवो यथा मृध उष्ट्रो न पीपरो मृधः ।  
 तुवे यत्त्वा मयोभुवं देवं सख्याय मर्त्यः ।  
 अस्माकमांगूषान्धु स्निनस्कृधि वाजेषु धु स्निनस्कृधि ॥ २ ॥  
 यस्य ते पूषन्तस्यै विपन्यवः कृत्वा चित् सन्तोषसा वुभुजिर इति कृत्वा वुभुजिरे ।  
 तामनु त्वा नवीयसीं नियुतं राव ईमहे ।  
 अहेलमान अरुशंस सरीमव वाजेवाजे सरीमव ॥ ३ ॥  
 अस्या कषुण उप सातये भुवोहेलमानो ररिवां अजाश्व श्रवस्यतामजाश्व ।  
 ओषुत्वा वृतीमहि स्तोमेभिर्दस्म साधुभिः ।  
 नहि त्वा पूषन्ततिमन्य आघृणे न ते सख्यमपह वै ॥ ४ ॥



१३६ सूक्त । विश्वेदेवगण देवता । त्रिष्टुप्, वृहती, अस्थष्टि आदि छन्द ।  
 अस्तु श्रौषट् पुरो अग्निं धिया दध आनुतच्छर्धो दिव्यं वृणामह इन्द्रवायू वृणीमहे ।  
 यज्ञक्राणां विवस्वति नाभा सन्दाधि नव्यसी ।  
 अथ प्रसून उपयन्तु धीतयो देवां अच्छान धीतयः ॥ १ ॥

२ जैसे शीघ्रगामी घोड़े की प्रशंसा होती है, वैसे ही, हे पूषन्, मंत्रों द्वारा मैं तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ । युद्धमें जानेके लिये तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ । ऊँटकी तरह तुम हमें युद्धमें पार करते हो । तुम सब उत्पन्न करनेवाले देवता हो और मैं मनुष्य हूँ । मैत्री पानेके लिये मैं तुम्हें बुलाता हूँ । मेरे बुलावेको शक्तिमान् करो और संप्राममें मुझे विजयी बनाओ ।

३ पूषन्, तुम्हारी मित्रता प्राप्त करके विशेष यज्ञ द्वारा तुम्हें प्रसन्न करते हुए स्तोत्र-परायण यजमान तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर नाना प्रकारके भोग भोगते हैं । नया सहारा पाकर तुम्हारे पास असंख्य धन चाहते हैं । धनुर्लोक द्वारा स्ववनीय पूषा, हमारा अनादर न करके हमारे सामने आओ और युद्ध-कालमें हमारे अग्रगामी बनो ।

४ अज वाहनवाले पूषन्, हमारे लाभके सम्बन्धमें अनादर न कर और दानशील होकर हमारे पास आओ । अजाश्व पूषन्, हम अन्न चाहते हैं । हमारे पास आओ । शत्रु-हन्ता पूषा, मंत्र-पाठ करते हुए हम तुम्हारे चारों ओर रहें । वृष्टिदाता पूषा, हम ढभी व तो तुम्हारा अपमान करते और न तुम्हारी मित्रताका कभी अपलाप करते हैं ।

१ मैंने, भक्तिके साथ, सामने अग्नि की स्थापना की है । अग्नि की स्वर्गीय शक्तिकी मैं प्रशंसा करता हूँ । इन्द्र और वायु की प्रशंसा करता हूँ । चूँकि पृथिवी की वीर्यमान् नामि या यज्ञस्थानको लक्ष्य कर नयी अर्थकारी स्तुति बनायी गयी है; इसलिये अग्नि उसे छेने । परचाव जैसे हमारे क्रिया-कर्म अन्यान्य देवोंके पास जाते हैं, वैसे ही इन्द्र और वायुके पास भी जायें ।

यद्धस्यन्मित्रावरुणाधृतादध्याददाथे अनृतं स्वेन मन्युना दक्षस्य स्वेन मन्युना ।  
 युवोरित्याधि सप्तस्वपश्याम हिरण्ययम् ।  
 धीभिश्च मनसास्त्वंभिरक्षमिः सोमस्य स्वेभिरक्षमिः ॥ २ ॥  
 युवां स्तोमेभिर्दधयन्तो अश्विना ध्रानयन्त इव श्लोकमायवो युवां हव्याम्ययवः ।  
 युवोर्विश्वा अधिध्रियः पृथश्च विश्ववेदसा ।  
 प्रुपायन्ते वां पवयो हिरण्यये रथे दक्षा हिरण्यये ॥ ३ ॥  
 अश्वेति दक्षाव्यु नाकमृण्वथो युजते वां रथयुजो दिविष्टिष्वध्वस्मानो दिविष्टिषु ।  
 अधिवांस्याम बन्धुरे रथे दक्षा हिरण्यये ।  
 पथेव यन्तवानुशासता रजोऽञ्जसा शासता रजः ॥ ४ ॥  
 शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम् ।  
 मा वां रातिरुपदसत् कदाचनास्मद्रातिः कदाचन ॥ ५ ॥  
 वृषन्तिन्द्र वृषपाणास इन्द्रव इमे सुता अद्रिपुतास उद्भिदस्तुभ्यं सुतास उद्भिदः ।  
 ते त्वामन्दन्तु दावने महे त्रिवाय राधसे ।  
 गीर्भिर्गिर्वाहः स्तत्रमान आगहि सुमृडीको न आगहि ॥ ६ ॥

२ कर्म-कुशल मिय और वरुण, अपनी शक्ति द्वारा सूर्यके पाससे जो दिनाशी जल पाते हो, वह हमें यथेष्ट परिमाणमें देते हो; इसलिये हम क्रिया, कर्म, ज्ञान और सोमरसमें आसक्त इन्द्रियोंकी सहायतासे, यज्ञशालामें, तुम लोगोंका ज्योतिर्मय रूप देखें ।

३ अश्विनोक्तमारो, स्तुति द्वारा तुम्हें अपना देवता बनानेकी इच्छा ले यजमान लोग श्लोक छनाते तथा हव्य लेकर तुम्हारे सामने जाते हैं । सर्वधन-सम्पन्न अश्विद्वय, वे लोग, तुम्हारी कृपासे, सब तरहके धनधान्य और अन्न प्राप्त करते हैं । तुम्हारे सोनेके रथकी नेमियां मधु गिराती हैं । उसी रथपर हव्य ग्रहण करो ।

४ वृषद्वय, तुम्हारे मनकी बात सब जानते हैं । तुम स्वर्गमें जाना चाहते हो । तुम्हारे सारथि लोग स्वर्ग-पथमें रथ बोजित करते हैं । निरालम्ब होते हुए भी अश्वगण रथको नष्ट नहीं करते । अश्विद्वय, बन्धुर या बन्धनाधारभूत वस्तुसे युक्त हिरण्यमय रथपर हम तुम्हें बैठाते हैं । तुम लोग सरल मार्गसे स्वर्गको जाते हो । तुम लोग शत्रुओंको परास्त करते और बिहोष रूपसे दुष्टकी व्यवस्था करते हो ।

५ हमारे क्रिया-कर्म ही तुम्हारा धन हैं । हमारे क्रिया-कर्मके लिये दिन-रात अभीष्ट प्रदान करो । न तो तुम्हारा दान बन्ध हो और न हमारा ।

६ अभीष्ट-वर्षक इन्द्र, अभीष्ट-वर्षके पानके लिये यह सोम अभिपुत हुआ है । यह प्रस्तर-लायक द्वारा अभिपुत हुआ है । सोम पर्वतपर उत्पन्न हुआ है । वह तुम्हारे लिये अभिपुत हुआ है । विविध विचित्र लाभोंके लिये यथास्थान प्रदत्त सोम तुम्हारी रुसिका साधन करे । स्तुति-योग्य, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं । आओ, हमारे ऊपर प्रसन्न होकर आओ ।

ओषूणो अग्ने शृणुहि त्वमीडितो देवेभ्यो ब्रवसि यक्षियेभ्यो राजभ्यो यक्षियेभ्यः ।  
 यद्धत्यामङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन ।  
 वित्तां दुहं अर्यमा कर्तरी सचाँ एपां वेद मे सचा ॥ ७ ॥  
 ओषु वो अस्मदभितानि पौस्यासना भुवं द्युश्चानि मोतजा रिपुरस्मत् पुरोत आरिपुः ।  
 यद्वश्चित्रं युगे युगे नव्यं घोपादमर्त्यम् ।  
 अस्मास्तुतन्मरुतो यच्च दुष्टरं विधृता यच्च दुष्टरम् ॥ ८ ॥  
 दध्यच्छ ह मे जनुषं पूर्वी अङ्गिराः प्रियमेघः कण्वो अत्रिर्मनुर्विदुस्ते मे पूर्वं मनुर्विदुः ।  
 तेषां देवेष्वायतिरस्माकं तेषु नामयः ।  
 तेषां पदेन मह्यानमे गिरेन्द्राग्नी आनमे गिरा ॥ ९ ॥  
 होता यक्षद्वनिनो वन्त वार्यं बृहस्पतिर्यजति वेन उक्षमिः पुरुवारेमिकक्षमिः ।  
 जगुस्मादूर आदिशं श्लोकमद्रे रधत्मना ।  
 अघारयदरिन्दानि सुकतुः पुरुसश्चानि सुकतुः ॥ १० ॥  
 ये देवासो दिव्येकादश स्य पृथिव्यामध्येकादश स्य ।  
 अप्सुक्षितो महिनैकादश स्य ते देवासो यक्षमिमं जुषध्वम् ॥ ११ ॥



७ अग्नि, हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। हमारी स्तुति सुनो। दीप्यमान और यज्ञ-योग्य देवोंके पास यजमानकी बात कहना; क्योंकि देवोंने अङ्गिरा जोगोंको प्रसिद्ध धेनु दी थी। अर्यमा देवोंके साथ, सर्वोत्पादक अग्निके लिये, उस धेनुका दोहन करते हैं और वह जानते हैं कि, वह धेनु हमारे साथ समवेत है।

८ हे मरुतो, तुम्हारा नित्य और प्रसिद्ध बल हमें पराभूत नहीं करे। हमारा घनकम न हो। हमारा नगर क्षीण न हो। तुम्हारा जो कुछ नूतन, विचित्र, मनुष्य-दुर्लभ और शब्द करनेवाला है, वह युग-युगमें हमारा हो। जो घन शत्रु लोग नष्ट नहीं कर सकते, वह हमारा हो। हम जो दुर्लभ घनको धारण करते हो, वह हमारा हो। जिस घनको शत्रु नहीं गण्ट कर पाते, वह हमारा ही हो।

९ प्राचीन दधीचि, अङ्गिरा, प्रियमेघ कण्व, अत्रि और मनु मेरे जन्मकी बात जानते हैं। ये पूर्व कालके ऋषि और मनु मेरे पूर्व-पुरुषोंको जानते हैं; क्योंकि, महर्षियोंमें यह दीर्घायु हैं और मेरे जीवनके साथ उनका सम्बन्ध है। वे महान्न हैं; इसलिये उनकी स्तुति तथा नमस्कार करता हूँ।

१० होता लोग यज्ञ करें, दध्यकी इच्छा करनेवाले देवता रमणीय सोम ग्रहण करें। स्वयं इच्छा करके बृहस्पति प्रभूत और रमणीय सोम द्वारा याग करते हैं। हमने छद्म देशमें प्रस्तर-खण्डकी छवि सुनी। सुकतु यजमान स्वयं अलं धारण करते हैं। वह पशु निवास-योग्य घर धारण करते हैं।

११ जो देवता स्वर्गमें ११ हैं, पृथिवीके ऊपर ११ हैं—जब अन्तरीक्षमें रहते हैं, सब भी ११ रहते हैं, वे अपनी नहिमासे, पशुकी सेवा करते हैं।

२१ अनुवाक । १४० सूक्त । अग्नि देवता । य. १२४ सूक्तक उक्थ्यके पुत्र दीर्घतमा ऋषि हैं । त्रिष्टुप् छन्द ।

वेदिपदे प्रियधामाय सुद्युते धासिमिव प्रभरायोनिमग्नये ।

वस्त्रेणेव धासया मग्मता शुचि ज्योतीरथं शुक्रवर्णं तमोहनम् ॥ १ ॥

अभि द्विजन्मा त्रिवृद्धन्ममृज्यते संवत्सरे वावृधे जग्धमो पुनः ।

अन्यस्यासा जिह्या जैन्यो वृषान्यन्येन घनिनो मृष्टवारणः ॥ २ ॥

कृष्णप्रुतौ वेचिजे अस्य सक्षिता उभा तरेते अभिमातरा शिशुम् ।

प्राचाजिह्वं धवसयन्तं तृपुच्युतमासाच्यं कुपयं वर्जनं पितुः ॥ ३ ॥

मुमुक्ष्वो मनवे मानवस्यते रघुदुवः कृष्णसीतास ऊजुवः ।

असमना अजिरासो रघुग्यदो वातजूता उपयुज्यन्त आशवः ॥ ४ ॥

आदस्यते धवसयन्तो वृथेरते कृष्णमग्धं महिवर्यः क्ररिंक्रतः ।

यस्सीं महीमवनिं प्राभि ममृशदभिश्चसन् स्तनयन्नेति नामदत् ॥ ५ ॥

भूपन्न योधिवध्रूपु नक्षते वृषेव पत्नोरभ्येति रोखत् ।

ओजायमानस्तन्वश्च शुम्भते भीमो न शृङ्गा दविधाव तुर्गृभिः ॥ ६ ॥

१ अन्वयुं, वेदोपर घेंटे हुए, अपने प्रिय धाम उत्तर वेदोपर, प्रीति-सम्पन्न और प्रकाशशील अग्निके लिये तुम अन्नवान् स्थान या वेदी सेवार करो । उस पवित्र ज्योतिसे संयुक्त, दीप्त वर्ण और अन्वकार-विनाशी स्थानके ऊपर, वस्त्रकी तरह, मनोहर कुण्डको बिछाओ ।

२ द्विजन्मा या दो काष्ठोंके मन्थन द्वारा उत्पन्न अग्नि आप्य, पुरोडाश और सोम नामके तीन अग्नियोंके सम्मुख लाकर जाते हैं । अग्निके द्वारा भक्षित धन-धान्यादि, संवत्सरके बीच, फिर बढ़ जाते हैं । असीधवर्षी अग्नि, एक ही रूप धारण कर, मुख और जिह्वाकी सहायतासे, बढ़ते हैं । अग्नि दूसरे प्रकारका रूप धारण करके, सबको दूर करके, वन-वृक्षोंको जलाते हैं ।

३ अग्निके दोनों काष्ठ चलते हैं । कृष्णवर्ण होकर दोनों ही एक ही कार्य करते हैं और शिशु अग्निको प्राप्त होते हैं । शिशुकी यिलारूपिणी जिह्वा पूर्वोभिमुखिनी है । यह अन्वकारको दूर करते हैं । शीघ्र उत्पन्न होते हैं । जोरे-जोरे काष्ठ-चूर्णोंमें मिलते हैं । बहुत प्रयत्नसे इनकी रक्षा करनी होती है । यह रक्षकको समृद्धि देते हैं ।

४ अग्निकी शिखाएँ लघुगति, कृष्णमार्गी या शीघ्रकारिणी, अल्पविरचिता, गमनशीला, कम्पन-शीला, वायुवाहिका, व्यासि-संयुक्ता, मोक्षप्रदा और मनस्वी यजमानकी उपयोगिनी हैं ।

५ जिस समय अग्नि गर्जन करके श्वास फेंककर बार-बार विरुधीर्ण, पृथिवीको छूकर, शब्द करते हैं, उस समय अग्निके सारे स्फुल्लिङ्ग, एक साथ, चारो ओर जाते हैं । वे अन्वकारका विनाश कर चारो ओर जाते और कृष्णवर्ण मार्गमें उज्ज्वल रूप प्रकाशित करते हैं ।

६ अग्नि, पीले औषधोंको भूषित करके, उनके बीच, उतरते हैं । जैसे वृषभ गायोंकी ओर दौड़ता है, वैसे ही, शब्द करते हुए, अग्नि दौड़ते हैं । क्रमशः अधिक तेजस्वी होकर अपने शरीरको प्रकाशित करते हैं । दुर्द्धव रूप धारण करके भयंकर पशुकी तरह सींग घुमाते हैं ।

स संस्तिरो विष्टिः सङ्गृभायति जानन्नेव जानतीनित्य आशये ।  
 पुनर्वर्द्धन्ते अपि यन्ति देव्यमन्यद्वयः पित्राः कृण्वते सचा ॥ ७ ॥  
 तमग्रुघः केशिनीः संहिरैभिर ऊर्ध्वास्तस्थुर्मघ्रुपीः प्रायधे पुनः ।  
 तासां जरां प्रमुञ्चन्तेति नानददसुम्परं जनयञ्जीवमस्तुतम् ॥ ८ ॥  
 अधोवासं परिमातूरिहन्नहतुविग्रेभिः सत्वभिर्याति विज्रयः ।  
 वयो दधत् पद्भते रेरिहत् सदानु श्येनी सचते वर्तनीरह ॥ ९ ॥  
 अस्माकमग्ने मघवत्सु दीदिव्यध श्वसीवान् वृषभो दमूनाः ।  
 अवास्या शिशुमतीरदीर्घमेव युत्सु परिजर्मु राणः ॥ १० ॥  
 इदमग्ने सुधितं दुर्धितादधि प्रियादुचिन्मन्मनः प्रेयो अस्तु ते ।  
 यत्ते शुक्रं तन्यो रोचते शुत्रितेनास्मभ्यं वनसे रत्नमात्वम् ॥ ११ ॥  
 रथाय नावमुत नो गृहाय नित्यारित्रां पद्वतीं रास्यग्ने ।  
 अस्माकं वीरां उत नो मघो नो जनांश्च या पारयाच्छर्म या च ॥ १२ ॥

७ अग्नि कभी छिपकर, कभी विराट् होकर औषधोंको व्याप्त करते हैं, मानों यजमानका अभिप्राय जानकर ही अपनी अभिप्राय जाननेवाली शिलाको आश्रित करते हैं। शिलाएँ, फिर बढ़कर, याग-योग्य अग्निको व्याप्त करती हैं एवं सब मिलकर पृथिवी और स्वर्गका अपूर्व रूप विस्तृत करती हैं।

८ घोरिष्पानीय और आगे स्थित शिलाएँ अग्निका आलङ्घन करती हैं; मृतप्राय होनेपर भी अग्निका आगमन जानकर ऊर्ध्वज्ज्वल होकर, ऊपर उठती हैं। अग्नि, शिलाओंका छुड़ापा छुड़ाकर उन्हें उत्कृष्ट सामर्थ्य और असह्य जीवन प्रदान करते हुए, गर्जन करते आते हैं।

९ पृथिवी आत्माके ऊपरके ढक्कन या तृग-गुल्म आदिको चाटते-चाटते अग्नि प्रभूत शब्द-कर्त्ता प्राणियोंके साथ बेगसे गमन करते हैं। पाद-विशिष्ट पशुओंको आहार देते हैं। अग्नि सदा चाटते हैं और क्रमशः जिस मार्गसे जाते हैं, उसे काटा करते जाते हैं।

१० अग्नि, तुम अभीष्टवर्षी और दानशील होकर स्वास फेंकते हुए हमारे घनाढ्य गृहमें दीप्त हो। शिशु-वृद्ध छोड़कर, युद्ध-समयमें बर्मेकी तरह, बार-बार शत्रुओंको दूर करके जल उठो।

११ अग्नि, यह जो काठके ऊपर सावधानीसे द्रव्य रखा गया है, वह तुम्हारे मनोजुकूल प्रिय वस्तुसे भी प्रिय हो। तुम्हारे शरीरकी शिलासे जो निर्मल और दीप्त तेज निकलता है, उसके साथ तुम हमें रत्न प्रदान करो।

१२ अग्नि, हमारे घर या यजमान और रथके लिये सड़ड़ ढाँड़ या दृष्टिपूर् और पाद या मंत्रसे संयुक्त नौका या मङ्ग प्रदान करो। वह हमारे वीरों, धनवाहकों और अन्य लोगोंकी रक्षा करेगा और हमें छलसे रक्षेगा।

अभीनो अग्न उक्थमिज्जुगुर्वा धावाक्षामा सिन्धवश्च स्वगूताः ।  
गव्यं यव्यं यन्तो दीघदिपं परमरूपो धरन्त ॥ १३ ॥



१४१ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

वदित्वा तद्वपुषे धायि दर्शतं देवस्य भर्गः सहस्रो यतो जनि ।  
यदोमुपहरते साधते मतिर्ऋतस्य धेना अनयन्त सस्रतः ॥ १ ॥  
पृक्षो वपुः पितुमान्नित्य आशये द्वितीयमाससशिवासु मातृपु ।  
तृतीयमस्य वृषभस्य दोहते दशप्रमतिं जनयन्त योपगः ॥ २ ॥  
निर्यदो बुध्रान्महिषस्य वर्षस ईशानासः शबला क्रन्तसूरयः ।  
यदोमनु प्रदीवो मध्व आधवे गुहासन्तं मातरिष्व भथायति ॥ ३ ॥  
प्र यत् पितुः परमान्नीयते पर्यपृशुधो वीरुधो दंसुरोहति ।  
उभा यदस्य जनुपं यद्विन्वत आदिश्विष्टो अभवद्धृणा शुचिः ॥ ४ ॥

१३ अग्नि, हमारे ऋक्मंत्रोंके लिये उत्साह बढ़ाओ । यावापृथिवी और स्वयं गामिनी नदियाँ हमें गौ और गव्य प्रदान करके उत्साह वर्द्धित करें । अक्षगव्यं उवाप् सदा पाने योग्य सुन्दर अन्न आदि दें ।

१ प्रकाशमान अग्निका दर्शनीय तेज, सबनुच, इसी प्रकार लोण, शरीरके लिये, धारण करते हैं । वह तेज शरीर तक या अग्नि-मन्थनसे उत्पन्न हुआ है । अग्निके तेजका आश्रय करके मेरा ज्ञान अपनी अभीष्ट-सिद्धि कर सकता है; इसलिये अग्निके लिये स्तुति और हव्य अर्पण किया जाता है ।

२ प्रथम अन्न-साधक शरीरों और नित्य अग्नि रहते हैं, द्वितीय कत्याणवाहिनी सप्त-मातृकाओंमें रहते हैं, तृतीय इस अभीष्टवर्षीके दोहनके लिये रहते हैं । परस्पर संमिलित दसदिशाएँ इसी दिशाओंमें पूजनीय अग्निको उत्पन्न करती हैं ।\*

३ चूँकि महायज्ञके मूलसे सिद्धि करनेवाले ऋत्विक् बल-प्रयोग या अग्नि-मन्थन द्वारा अग्निको उत्पन्न करते हैं, अनादि काकसे अच्छी तरह फैलानेके लिये गुहास्थित अग्निको वायु चालन करते हैं,—

४ अग्निकी उत्कृष्टताकी प्राप्तिके लिये अग्निका निर्माण किया जाता है, आहारके लिये वाञ्छित लताएँ अग्निकी शिलाओं (दाँतों) पर चढ़ जाती हैं और अश्वर्य तथा यजमान दोनों ही अग्निको उत्पत्तिके लिये चेष्टा करते हैं; इसलिये पवित्र अग्निदेव, यजमानोंके लिये अनुग्रह करते हुए, युवा हुए ।

\* प्रथम अग्निका स्थान पृथिवी और द्वितीयका अन्तरिक्ष है, जहाँ मातृस्थानीय वृष्टि होती है । यही विशुद्ध अग्नि और अभीष्टवर्षी हैं । इन्हें ब्रह्मके लिये सूर्यस्त्रिरूप स्थानमें जो अग्नि रहते हैं, वह सुवीर्याग्नि हैं—इस अग्निका यही साक्षर्य है ।



आदिमातृराविशद्यास्ता शुचिरहिंस्यमान उर्विया त्रिवावृधे ।  
 अनु यत् पूर्वा अरुहत् सनाजुवो नि नव्यसीष्मवरासु धावते ॥ ५ ॥  
 आदिद्योतारं वृणते दिविष्टिषु भगमिव षष्ठ्यानास ऋज्वते ।  
 दंवान् यत् कृत्वा मज्जना पुरुष्युतो मर्त्तं शंसं विश्दधा वेति धायसे ॥ ६ ॥  
 विषदस्थास्रजतो वातचोदितो ह्यारो न वक्त्रा जरणा अनाकृतः ।  
 तस्य पतमन्दक्षुपः कृष्णजंहसः शुचिजन्मनो रज आव्यध्वनः ॥ ७ ॥  
 रथो न यातः शिकभिः कृतो घामङ्गे भिररूपेभिरीयते ।  
 आदस्यते कृष्णासो दक्षि सूरयः शूरस्येव त्वंपथादीपते वयः ॥ ८ ॥  
 त्वया ह्यग्ने धरुणो धृतव्रतो मित्रः शाश्वदे व्यर्यमा सुदानवः ।  
 यत्सीमनु क्रतुना विश्वथा विशुरदन्ननेमिः परिभूरजायथाः ॥ ९ ॥  
 त्वमग्ने शशमानाय सुन्वते रत्नं यविष्ठ देवतातिमिन्वसि ।  
 तं त्वा नु नव्यं सहस्रो युवन्वयं भगं नकारे महिरत्न धीमहि ॥ १० ॥

४ मातृरुपिणी दिवाओंके बीच अग्नि, हिता-रहित होकर, बढ़े हैं; इस समय प्रदीप्त होकर उन्हींके मध्य चढ़ते हैं । स्थापन-समयमें, पहले, जो सब औषध प्रक्षिप्त हुए थे, उनके ऊपर अग्नि चढ़ गये थे । इस समय अभिनव और निरुद्ध औषधोंके प्रति दौड़ते हैं ।

६ हविका सम्पर्क करनेवाले यजमान, धुलोक-निवासियोंकी प्रसन्नताके लिये, होम-सम्पादक अग्निका वरण करते और राजाको साह उनका आराधन करते हैं । अग्नि बहुतांके स्तुति-योग्य और विश्व-रूप हैं । वह यज्ञ-सम्पन्न और बलशाली हैं । वह देवों और स्तुति-योग्य मर्त्य यजमानों—दोनोंके लिये अन्नकी कामना करते हैं ।

७ जैसे बकवादो विदूषक आदि बड़ी सरलतासे हँसा देते हैं, वैसे ही वायु द्वारा परिचालित यजनीय अग्नि चारों ओर व्याप्त होते हैं । अग्नि दहन-कर्त्ता हैं, उनका जन्म पवित्र है, उनका मार्ग कृष्णवर्ण है और उनके मार्गमें कुछ भी स्थिरता नहीं है । इसीलिये उनके मार्गमें अन्तरीक्ष स्थित है ।

८ रस्सीमें बंधे रथकी तरह अपने चञ्चल अंगकी सहायतासे अग्नि स्वर्गको जाते हैं । उनका मार्ग एकबारगी ही कुण्ठवर्ण है, वह काठ जलाते हैं । चोरकी तरह अग्निके उद्दीप्त तेजके सामनेसे चिड़ियाँ भाग जाती हैं ।

९ अग्निदेव तुम्हारी सहायतासे वरुण अपना घृत धारण करते, मित्र अन्धकार नाश करते और अर्थमा दानशील होते हैं । जैसे रथका पहिया ढाँड़ोंको व्याप्त करके रहता है, उसी प्रकार अग्निने यज्ञ-कार्य द्वारा विश्वात्मक, सर्वव्यापी और सबके परामर्शकारी होकर जन्म ग्रहण किया है ।

१० युवा अग्नि, जो तुम्हारी स्तुति करते और तुम्हारे लिये अभिषेक करते हैं, तुम उनका रमणीय हव्य लेकर देवोंके पास विस्तार करते हो । हे सत्त्व, सहायन और बल-पुत्र, तुम स्तवनीय और हविर्भोक्ता हो । स्तुति-कालमें हम राजाकी तरह तुम्हें स्थापित करते हैं ।

अस्मे रयिं न स्वर्थं दमूनसं भनं दक्षं न पृच्छासि घर्णहिम् ।  
 रश्मींरिषयो यमति जन्मनी चमे देवानां शंससृत था च सुकतुः ॥११॥  
 उत नः सुयोत्माजीगश्यो होता मन्द्रः शृणवच्चन्द्रयः ।  
 स नो नेपनेपतमैरमृगेन्द्रिर्दामं सुवितं वस्यो अच्छ ॥१२॥  
 अस्ताव्यसिः शिमीन्द्रिरकैः साम्राज्याय प्रतरं दधानः ।  
 अमी च ये मघवानो ययं च मिहं न स्यो अतिनिष्ठतन्युः ॥१३॥

॥४२ सूक्त । आसी देवता ॥ ऋषिः ऋषिः और जगती छन्द ।

समिद्धो अग्न यावद् देवो अय यतस्तु च ।  
 तन्तुं तनुष्व पूष्यं सुतसोमाय दाशुपे ॥१॥  
 घृतवन्तमुपमासि मधुमन्तं तनूनपात् ।  
 यदा विप्रस्य मावतः शशमानस्य दाशुपः ॥२॥

११ अग्नि, तुम जेते हमें अत्यन्त प्रयोजनीय और उपायय धन देने हो, वेते ही उतसाही, जन-प्रिय और विद्या-प्यवनमें चतुर पुत्र दो । जेते अग्नि अग्नी किशोरीको विस्तृत करते हैं, वेते ही अपने जन्माधार ( आकाश और पृथिवी ) का विस्तार करते हैं । हमारे यज्ञमें यज्ञ-कृत्ता अग्नि देवोंकी स्तुति का विस्तार करते हैं ।

१२ अग्निदेव प्रकाशदीप्त, द्रुतगामी उश्वमे संयुक्त, होता, आनन्दमय, सोनेके रश्माले, अप्रतिष्ठतशक्ति और प्रसन्न-स्वभाव हैं । क्या यह हमारा बुलाना छुनेगे ? वह क्या हमें सिद्धिदाता कर्मद्वारा अनायास-लभ्य और अभिवाञ्छित स्वर्गकी ओर ले जावेगा ?

१३ हव्य-प्रदान आदि कर्म और पूजा-संघक मन्त्र द्वारा हमने अग्निकी स्तुति की है । अग्नि अच्छी तरह क्षीप्तसे युक्त हुए हैं । सारे उपलक्षण लोग और हम, जेने सूर्व मेघना घण्ट उत्पन्न करते हैं, वेते ही अग्निकी लक्ष्य कर स्तुति करते हैं ।

१ हे समिद्ध नामके अग्नि, जो यजमान सुधु ऊँचा क्रिये हुए है, उसके लिये आज तुम देवोंको बुलाओ । जिस हव्यदाता यजमानने होमका अभिषेक किया है, उसकी भलाईके लिये पूर्वकालीन यज्ञ विस्तार करो ।

२ तनूनपात् नामके अग्नि, मेरे समान जो हव्यदाता और मेघावी यजमान तुम्हारी स्तुति करता है, उसके घृत और मधुसे संयुक्त यज्ञमें आकर यज्ञ-समाप्ति पर्यन्त रहो ।

॥ आसी ऋषिका अर्थ अग्निका रूप है; इसलिये एक तरहसे इस सूक्तके देवता भी अग्नि ही हैं ।

शुचिः पावदो अद्भुतो मध्वयज्ञं मिमिक्षति ।  
 नाराशंसस्त्रिणादिवा देवो देवेषु यक्षियः ॥३॥  
 ईडितो अग्न आवहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् ।  
 ह्यं हित्वा मतिर्ममाच्छा सुजिह्व दच्यते ॥४॥  
 स्तृणानासो यतस्तु चो बर्हिर्यज्ञे स्वध्वरे ।  
 वृक्षे देवव्यचस्तममिन्द्राय शर्म सप्रथः ॥५॥  
 विश्रयन्तामृतावृधः प्रयै देवेभ्यो महोः ।  
 पावकासः पुरस्पृहो द्वारो देवी रसश्चतः ॥ ६ ॥  
 आमन्दमाने उपाके नकोपासा सुपेशसा ।  
 यद्वा ऋतरथ मातरा सीदतां बर्हिरासुमन् ॥ ७ ॥  
 मन्द्रजिह्वा जुगुर्धणी द्योतारादैव्या कवी ।  
 यज्ञं नो यक्षतामिमं सिध्ममद्य दिविरूपशम् ॥ ८ ॥  
 शुचिर्देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती ।  
 इला सरस्वती महो बर्हिः सीदन्तु यक्षियाः ॥ ९ ॥

३ देवोंमें स्वच्छ, पवित्र, अद्भुत, घृतिमान और यज्ञ-सम्पादक नाराशंस नामक अग्नि शुद्धोक्ते आकर हमारे यज्ञको मधुसे मिश्रित करें।

४ अग्नि, इन्द्रादा नाम इलित है। तुम विचित्र और प्रिय इन्द्रको यहाँ से आओ। छजिह्व, तुम्हारे लिये मैं स्तोत्र-पाठ करता हूँ।

५ चक्र धारण करनेवाले श्रुतिवल्-लोग इस यज्ञमें अग्नि-रूप कुशको फैलाते हुए इन्द्रके लिये विस्तारण और छल-साधक गृह बनाते हैं। इस घरमें देवता लोग सदा गमनागमन करेंगे।

६ अग्निरूप, यज्ञका दरवाजा खोल दो। देवोंके आनेके लिये यज्ञ-द्वार खोल दो। ये दरवाजे यज्ञ-चर्दक, यज्ञ-सोधक बहुत लोगोंके लिये श्लाघ्या और परस्पर असंलग्न हैं।

७ सबके स्तुति-पात्र, परस्पर संनिहित, सुन्दर, महान्, यज्ञ-निर्माता और अग्निरूप रात और उषा स्वयं आकर विस्तृत कुशोंके ऊपर बैठें।

८ देवोंकी इन्द्रमादक शिक्षासे युक्त, सदा स्तुतिशील यज्ञमानोंके मित्र, अग्निरूप दिव्य दोनों होता हमारे इस सिद्धि-प्रद और स्वर्गारोपणी यज्ञका अनुष्ठान करें।

९ शुद्ध, देवोंकी मध्यस्था, होम-सम्पादिका भारती (स्वर्गार्थ वाक्), इला (पृथिवीस्य वाक्) और सरस्वती (अन्तरिक्षस्य वाक्)—ये अग्निकी सीनों मूर्तियाँ यज्ञके उपयुक्त होकर कुशोंपर बैठें।

तन्नस्तुरीपमद्भुतं पुरुवारं पुरुत्मना । त्वष्टा पोषाय विष्यतु राये नाभा नो अस्मयुः ॥ १० ॥  
 भवस्तु जन्तुपत्मना देवान् यक्षि वनस्पते । अग्निर्देव्या सुपूदति दंवी देवेषु मेधिरः ॥ ११ ॥  
 पूषणवते मरुत्वते विश्वदेवाय धायधे । स्वाहा गायत्रवेप्से हव्यमिन्द्राय कर्तन ॥ १२ ॥  
 स्वादाकृता न्यागागा प त्वयानि वीतये । इन्द्रागहि श्रुधां हवं त्वां हवन्ते अध्वरे ॥ १३ ॥

१४३ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

प्रतव्यसीं नव्यसीं ध तिमग्रये वाचो मतिं सहसः सूनवे भरे ।  
 अपान्नपायो वसुभिः सहप्रियो होता पृथिव्यां न्यसीदहृत्वियः ॥ १ ॥  
 सजातमानः परमे व्योमन्याविरश्निरभन्मातरिश्वने ।  
 अस्य कृत्वा समिधानस्य मज्मना प्र यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत् ॥ २ ॥  
 अस्य त्वेया अजरा अस्य भानवः सुसन्दृशः सुप्रतीकस्य सुद्युतः ।  
 मातृवक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवो ग्ने रेजन्ते अससन्तो अजराः ॥ ३ ॥

१० त्वष्टा हमारे मित्र हैं । वह स्वयं, अच्छी तरह, हमारा पुष्टि और समृद्धि के लिये, मेघ के नाभिस्थित, व्याप्त अद्भुत और असंख्य प्राणियों की भलाई करनेवाला जल बरसावे ।

११ हे अग्निरूप पनस्पति, इच्छानुसार श्रुतिर्कोको भोजक, स्वयं देवों का यज्ञ करो । धुसिमान् और मेघावान् अग्नि देवों के बीच हव्य भेजें ।

१२ उषा और मरुतो से युक्त विश्वदेवगण, वायु और गायत्री-शरीर इन्द्रको लक्ष्यकर, हव्य देने के लिये, अग्निरूप स्वाहा छन्द का उच्चारण करो ।

१३ इन्द्र, हमारा स्वाहाकार-युक्त हव्य खाने के लिये आओ । श्रुतिक् लोग यज्ञ में तुम्हें बुलाते हैं ।

१ अग्नि बल के पुत्र, जल के नसा, यजमान के प्रियतम और होम के सम्पादक हैं । वह, यथासमय, धन के साथ वेदी पर बैठते हैं । उनके लिये मैं यह नया और शुभफल वर्द्धक यज्ञ आरम्भ करता और स्तुति-पाठ करता हूँ ।

२ परम आकाश-देश में उत्पन्न होकर अग्नि सबसे पहले मातरिखा या वायु के पास प्रकट हुए । अनन्तर इन्धन द्वारा अग्नि बढ़े और प्रबल कर्म द्वारा उनकी दीप्ति से यावापृथिवी प्रदीप्त हुई ।

३ अग्निकी दीप्ति से सबका नाश नहीं होता । सृष्ट्य अग्निके सारे स्फुल्लिङ्ग चारों ओर प्रकाशमान और विलक्षण बलशाली हैं । रात्रिका अन्धकार नष्ट करके सदा जाग्रत और अजर-अग्नि-क्षिप्ताएँ कभी नहीं काँपती ।

यमेरिरे भृगवो विश्ववेदसं नामा पृथिव्या भुवनस्य मञ्जना ।  
 अग्निं तं गीर्मिर्दिक्षुह स्व आदमे य एकोवस्त्रो वरुणो न राजति ॥ ३ ॥  
 न यो वराय मरुतामिवस्वनः संनेव सृष्टा दिव्या यथाशनिः ।  
 अग्निर्जस्मैस्तगितैरसि मर्धति योधो न शत्रून्तस्य धनान्यृजते ॥ ५ ॥  
 कुविन्मो अग्निरुचयस्य धीरसद्वसुष्कुविद्वसुभिः काममाचरत् ।  
 वीदः कुवित्तुज्यात् सातये धियः शुचिप्रतीकं तमया धिया गृणे ॥ ६ ॥  
 घृतप्रतीकं च ऋतस्य धूर्पदमग्नि मित्रं न समिधान ऋज्जते ।  
 इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्यच्छुक्रवर्णा मुदुनो यंसते धियम् ॥ ७ ॥  
 अप्रयुच्छन्नप्रयुच्छद्भिरग्ने शिवेभिर्नः पायुभिः पाहि शग्मेः ।  
 अदग्धेभिरद्वपितेभिरिष्टेनिमिर्पाङ्गः परिपाहि नोजाः ॥ ८ ॥



१४४ सूक्त । अग्नि देवता । जगती छन्द ।

एति प्रहोता व्रतमस्य माययोध्वां दधानः शुचिपेशसं धियम् ।

अभिस्त्रुचः क्रमते दक्षिणावृत्तो या अस्य धाम प्रथमं हनिंते ॥ १ ॥

४ भृगुवंशोत्पन्न यजमानोंने, अपने सामने, जोदीके बलके लिये, उत्तर वक्षोपर जिन सवधनशाली आरनके स्थापित किया है, उन्हें अपने घरमें ले जाकर स्तुति करो । अग्नि प्रधान है और वरुणकी तरह सारे धनोंके ईश्वर है ।

५ जैसे वायुके शब्द, पराक्रमी राजाकी सेना और युक्तिकमें उत्पन्न वज्रका कोई निवारण नहीं कर सकता, वही प्रकार जिन अग्निका कोई निवारण नहीं कर सकता, वही अग्नि, वीरोंकी तरह, तोले दाँतोंसे शत्रुओंका भक्षण और बिनाश तथा वनोंका दहन करते हैं ।

६ अग्निदेव बार-बार हमारे उक्त स्तोत्रको सुननेकी इच्छा करें । धनशाली अग्नि, धन द्वारा बार-बार हमारी इच्छा पूरी करें । यज्ञ-प्रवर्तक अग्नि, यज्ञ-लाभके लिये, हमें बार-बार प्रेरित करें—मैं ऐसी स्तुति द्वारा सहरन अग्निकी स्तुति करता हूँ ।

७ तुम्हारे यज्ञ-निर्वाहक और प्रदीप्त अग्निको, मित्रकी तरह, जलाकर विश्रुपित किया जाता है । अच्छी तरह चमकती झालावाले अग्नि, यज्ञ स्थलमें, प्रदीप्त होकर हमारी विशुद्ध यज्ञ-विषयक बुद्धिको प्रबुद्ध करते हैं ।

८ अग्निदेव, हमारे ऊपर अनुग्रह करके सदा अवहित, माङ्गलिक और सुखकर आशय देकर, हमारी रक्षा करो । सवजलवाञ्छनीय अग्नि, उत्पन्न होकर घुम हिंसा-रहित अजेय और एकनिष्ठ भावसे हमारी रक्षा, भली भाँति, करो ।

१ बहुदुर्गो होता, अपनी उच्च और शोभन बुद्धिके बल, अग्निकी सेवा करनेके लिये, जा रहे हैं और प्रदक्षिणा करके शुक कारण कर रहे हैं । ये शुक अग्निमें प्रथम आहुति देते हैं ।

अभीमृतस्य दोहना अनूपत योनौ देवस्य सद्ने परीवृताः ।  
 अपामुपस्थे विभृनो यदावसदधस्वधा अधयद्याभिरीयते ॥ २ ॥  
 युयूपनः सवयसा वदिद्वपुः समानमर्थं वितरिषता मिथः ।  
 आदौ भगो न हव्यः समस्मदादोहर्न रमोन्त्समर्थस्त सारथिः ॥ ३ ॥  
 यमो ह्य सवयसा सपर्थतः रुमाने योना मिथुना समोक्षसा ।  
 दिवाननकं पलितो युवाजनि पुरुवरन्नजरोमा नुपायुगा ॥ ४ ॥  
 तमो हिन्यन्ति धेतयो दशविशो देवं मर्तास ऊतये हवामहे ।  
 धनोरधि प्रवत आस ऋण्यत्यभिघजद्विर्वयुना नवाघित ॥ ५ ॥  
 त्वं ह्यग्ने दिव्यस्य राजसि त्वं पार्थिवस्य पशुपा इव रमना ।  
 एनीत एते बृहती अभिश्रिया हिरण्ययी वकरी बहिराशाते ॥ ६ ॥  
 अग्ने जुषस्व प्रतिहृतद्वचो मन्द्र स्वधाव ऋतजात सुक्रतो ।  
 यो विप्रवतः प्रत्यङ्ङसि दर्शतो रणवः सन्दृष्टौ पितुर्मा इव क्षथः ॥ ७ ॥



२ सूर्यकिरणोंमें चारों ओर फैली जल-धारा, उनको उत्पत्तिके स्थान सूर्य-लोकमें, फिर नबी होकर, उत्पन्न होती है। जिस समय जिसको गोइमें, आदरके साथ, अग्नि रहते हैं, उसी समय लोग अमृतमय जल पीते एवं अग्नि, विष्णु अग्निके रूपमें, मिटते हैं।

३ समान अवस्थावाले होता और अहर्द्यु, एक ही प्रयोजनकी सिद्धिके लिये, परस्परको सहायता देकर, अग्निके शरीरमें अपना-अपना कार्य सम्पादित करते हैं। अनन्तर जैसे सूर्य अपनी किरणों फैलाते हैं अथवा सारथि लगातार ग्रहण करता है, वैसे ही आहवनीय अग्नि हमारी दो हुई पृथ-धारा ग्रहण करते हैं।

४ समान अवस्थावाले, एक यज्ञमें वर्तमान और एक कार्यमें निपुण दोनों मनुष्य जिन अग्निकी, दिन-रात, पूजा करते हैं, वह अग्नि चाहे बड़े हो, चाहे युवा, उन दोनों मनुष्योंका हव्य भक्षण करते हुए, अजर हुए हैं।

५ इसी अंगुलियाँ, आपसमें अलग होकर, उन प्रकाशशाली अग्निको प्रसन्न करती हैं। हम मनुष्य हैं; अपनी रक्षाके लिये अग्निको बुलाते हैं। जैसे घनुपसे बाण निकलता है, वैसे ही अग्नि भी स्फुलिंग्र भेजते हैं। चारों ओर अवस्थित यजमानोंको नयी स्तुतिको अग्निदेव धारण करते हैं।

६ अग्नि, पशु-रक्षकोंकी तरह, तुम, अपनी शक्तिके, स्वर्गीय और पृथिवीस्य लोगोंके ईश्वर हो; इसलिये मछली पेरवर्धवती, हिरण्यमयी मंगल-शब्द-कारिणी शुभ्रवर्णा और प्रसन्ना चावापृथिवी तुम्हारे यज्ञमें आती हैं।

७ अग्नि, तुम हव्यका उपभोग करो; अपना स्तोत्र सुननेकी इच्छा करो। हे स्तुत्य, अन्नवान् और यज्ञके लिये उत्पन्न तथा यज्ञशाली अग्नि, तुम सारे जगत्के अनुकूल, सबके दर्शनीय, आनन्दोत्पादक और यथेष्ट-अन्न-शाली व्यक्तिकी तरह सबके आश्रय-स्थान हो।

१४५ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

तं पृच्छतास जगामासवेदस चिकित्वा ईयते सान्वीयते ।

तस्मिन्तसन्ति प्रक्षिपस्तस्मिन्निष्टयः स वाजस्य शवसः शुष्मिणस्पतिः ॥ १ ॥

तमित्पृच्छन्ति न सिमो विपृच्छति स्वेनेव धीरो मनसा यदग्रभीत् ।

न मृष्यते प्रथमं नापरं वचोस्य कृत्वा सचते अप्रदूषितः ॥ २ ॥

तमिद्वृच्छन्ति जुह्वस्तमर्वतीर्विश्वान्येकः शृणवद्वचांसि मे ।

पुरप्रैपस्ततुरिर्यज्ञस्यधनोच्छिद्रोतिः शिशुरादत्त संभः ॥ ३ ॥

उपस्थायं चरति यत् समारत सद्यो जातस्तत्सार युज्येभिः ।

अभिश्चान्तं मृशते नान्ये मुदे यदीं गच्छन्त्युशतीरपिष्ठितम् ॥ ४ ॥

स ईं मृगो अप्योवनगुरुपत्वच्युपमस्यां निधायि ।

व्यववीद्वयुना मर्त्येभ्योऽग्निर्विद्वान् ऋतचिद्धि सत्यः ॥ ५ ॥



१ अग्निसे पूछो । वही ज्ञाता है, वही गये हैं, उन्हींको चैतन्य है, वही यान हैं, वही शीघ्रगन्ता हैं, उन्हींके पास वास-योग्यता है, अमीष्ट वस्तु भी उन्हींके पास है । वही अन्न, बल और बलवान्के पालक हैं ।

२ अग्निसे ही सारा संसार जानना चाहता है; यह जिज्ञासा अन्याय-पूर्ण नहीं है । अपने मनमें धीर व्यक्ति जो स्थिर करता है, उसके पूर्व और परकी बात नहीं सह सकता । इसीलिये दम्भ-विहीन मनुष्य अग्निका आश्रय प्राप्त करता है ।

३ सब जुहु अग्निसे लह्य कर जाते हैं । स्तुतियाँ भी अग्निसे लिये ही हैं । एक अग्नि मेरी समस्त स्तुतिषाँ सुनते हैं । यह बहुतोंके प्रवक्तृ, सारयिता और यज्ञके साधन हैं । उनकी रक्षा-शक्ति छिद्रशून्य है । वह शिशुकी तरह शान्त और यज्ञके अनुष्ठाता हैं ।

४ जमी यजमान अग्निसे उत्पन्न करनेकी चेष्टा करता है, तभी अग्नि प्रकट होते हैं । उत्पन्न होकर ही श्वर योजनीय वस्तुके साथ मिल जाते हैं । अग्निका आनन्द-चर्दक कर्म आन्त वजमानके सन्तोषके लिये अमीष्ट फल देता है ।

५ अन्वेवण-परायण और प्राप्तव्य वनके गामी अग्नि, त्वचाकी तरह, इन्धनके बीच स्थापित हुए हैं । विद्वान्, यज्ञ-ज्ञाता और यथार्थवादी अग्निने मनुष्योंको, विशेष करके, यज्ञानुष्ठानके समय, ज्ञान प्रदान किया है ।

२४६ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

त्रिमूर्जानं सप्तरश्मिं गृणीपेनूनमग्निं पित्रोरुपस्थे ।  
 निपत्तमस्य चरतो ध्रुवस्थ विश्वा दिवो रोचना पप्रिवांसम् ॥ १ ॥  
 उक्षामर्हं अभिववक्ष एने अजरस्तस्यावित ऊतिर्ऋष्वः ।  
 कुर्याः पदो निदधाति सानौ रिहन्त्यूधो अरुपासो अस्य ॥ २ ॥  
 समानं वत्समभिसञ्चरन्ती विश्वग्धेनू विचरतः सुमेके ।  
 अनपवृज्यां अर्ध्वनो मिमाने विश्वान्केतां अग्निं महो दधाने ॥ ३ ॥  
 धीरासः पदं कवयो नयन्ति नानाहृदा रक्षमाणा अजुर्यम् ।  
 सिपासन्तः पर्यपश्यन्त सिन्धुभाधरेभ्यो अभवत् सूर्यो नन् ॥ ४ ॥  
 दिदृक्षेण्यः परिकाष्ठासु जेन्य ईद्रेभ्यो महो अर्भाय जीवसे ।  
 पुरुत्रा यदभवत् सूरहैभ्यो गर्भेभ्यो मघवा विश्वदर्शतः ॥ ५ ॥



१ पिता-माताका गोदमें अवस्थित, सवन त्रय-रूप मस्तक-त्रयसे युक्त, सप्त छन्दोरूप सप्त रश्मियोंसे युक्त और विकल्पा-शून्य अग्निही स्तुति कते । सर्वत्र गामी, अविचलित, प्रकाशमान और अमोघवर्षक अग्निका तेज चारो ओर व्याप्त हो रहा है ।

२ फल-दाता अग्नि, अपनी महिमासे, धावा-पृथिवीको व्याप्त किये हुए हैं । अजर और पूज्य अग्निदेव हमारी रक्षा करने अवस्थित हैं । वह व्यापक पृथिवीके सानु प्रदेश या वेदीपर अपने पैर फैलाते हैं । उनकी उज्ज्वल ज्योति अन्तरीक्षको घाटती है ।

३ तेज-कार्यमें सतुर दो ( यजमान और उसकी पत्नीके स्वरूप ) गायें एक बछड़े ( अग्नि ) के सामने जाती हैं । वह निन्दनीय विषयसे क्षम्य मार्गका निर्माण और सब तरहको बुद्धि या प्रज्ञा, अधिक मात्रा में, धारण करती हैं ।

४ विद्वान् और मेधावी लोग अज्ञेय अग्निको अपने स्थानपर स्थापित करते हैं, बुद्धि-बलसे, नाना उपायोंसे, उनकी रक्षा करते हैं । यज्ञ-फलका भोग करनेकी इच्छासे फलदाता अग्निकी शुभूषा करते हैं । उनके पास, सूर्यरूपमें, अग्नि प्रकट होते हैं ।

५ अग्नि चाहते हैं कि, उन्हें दसों दिशाएँ देख सकें । वह सदा जयशील और स्तुति-योग्य हैं । वह शुद्ध और महान्—सबके जीवन-स्वरूप हैं । धनवान् और सबके दर्शनीय अग्नि, अनेक स्थानोंमें, शिशु-समान अलमलामें किन्तु शुद्ध हैं ।



१४७ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

कथा ते अग्ने शुचयन्त आयोर्ददाशुर्वाजेभिराशुषाणाः ।

रभे यत्तोके तनये दधाना श्रुतस्य सामन् रणयन्त देवाः ॥ १ ॥

वोधामे अस्थ वचरो यविष्ठ र्मेहिष्ठस्य प्रभृतस्य स्वधावः ।

पीयति त्वो अनुत्त्वो गृभाति वन्दारुते तन्वं छन्दे अग्ने ॥ २ ॥

ये पायवो मामनेयन्ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।

रक्ष तान्सुहृतो विश्ववेदादिप्सन्त इद्रिपवो नाहदेभुः ॥ ३ ॥

यो नो अग्ने अररिर्वा अघ्रायुररातोवा मर्चयति द्वयेन ।

मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु सो अस्मा अनुमृक्षोष्ट तन्वं दुरुक्तैः ॥ ४ ॥

उतवायः सहस्य प्रविद्वात्मतोर्मतं मर्चयति द्वयेन ।

अतः पाहि स्तवमान स्तुवन्तमग्ने माकिर्नो दुरिताय धायोः ॥ ५ ॥



१ अग्नि, तुम्हारी उज्ज्वल और शोषक शिखार्य केते अन्नके साथ आयु प्रदान करती हैं, जिसमें पुत्र, पौत्र आदिके लिये अन्न और आयु प्राप्त कर यजमान लोग वाशिक साम-गायन कर सकते हैं ?

२ हे युवा और अन्नवान् अग्नि, मेरी अत्यन्त पूज्य और अच्छी तरह सम्पादित स्तुति ग्रहण करो। कोई तुम्हारी हिंसा करता और कोई तुम्हारी पूजा करता है। मैं तो तुम्हारा उपासक हूँ। मैं तुम्हारी मूर्तिकी पूजा करता हूँ।

३ अग्नि, तुम्हारी जिन प्रसिद्ध और पालक हरिमणोंने ममताके पुत्र और अन्धे दीर्घतमाको अन्धत्वसे बचाया था, उन सबके शिखार्योंकी सर्वप्रशङ्का तुम रक्षा करो। विनाशोच्छु शत्रुगण हिंसा न करने पावें x

४ अग्निदेव, जो हमारे लिये पाप चाहते हैं, स्वयं दान नहीं करते, मानसिक और वाचनिक, दो प्रकारके मंत्रों द्वारा हमारी निन्दा करते हैं, उन्हें एक मानस मंत्र गुह्यार हो और वे दुर्वाक्य द्वारा अपना ही शरीर नष्ट करें।

५ बलके पुत्र अग्नि, जो मनुष्य जान-बूझकर दोनों तरहके मंत्रोंसे मनुष्यकी निन्दा करता है, मैं विनय करता हूँ, हे स्तुयमान अग्नि, उसके हाथसे मेरी रक्षा करो। इमें पापमें मत पड़ो।

x सायणके मतसे दीर्घतमाकी माता ममताके साथ वृहस्पतिने उस समय रक्षण किया, जिस समय दीर्घतमा गर्भमें थे। दीर्घतमाने वृहस्पतिकी, वर्ण-संकरताके मयसे, मना किया। वृहस्पतिने दीर्घतमाको अन्धा होनेका शपथ दिया और अग्निने स्तुति करनेपर दीर्घतमाका अन्धत्व दूर किया।

१४८ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

मयीषदीं दिष्टो मातरिश्वा होताः विश्वाप्स् दिश्वदेवदम् ।  
 नि यं दधुर्मनुष्यासु विश्वरुर्ण चित्रं दधुषे दिभावम् ॥ १ ॥  
 ददानमिन्त ददमन्त मन्माग्निर्दरुथं मम तस्य चाकम् ।  
 जुपन्त विश्वान्यस्य दमोपरतुति भरमाणस्य कारोः ॥ २ ॥  
 नित्येचिन्नुयं सदनं जगृभ्रे प्रशरितभिर्दधिरे यक्षियासः ।  
 प्रसूनयन्तगृ भदन्त इष्टाश्वासां न रथ्यो राट्हाणाः ॥ ३ ॥  
 पुरुणि दस्मो निरिणाति जम्भैराट्रोदते दन आविभावा ।  
 आदस्य वातो अनुवाति शोचिरस्तुर्न शर्यामसनामनुयून् ॥ ४ ॥  
 न यं रिपवो न रिदण्यवो गर्भे सन्तं रेपणा रेपयन्ति ।  
 अन्धा अपश्यानदभन्नभिख्या निध्यास ईं प्रेतारो अरक्षन् ॥ ५ ॥



१४९ सूक्त । अग्नि देवता । विशद् छन्द ।

महः सराय एपते पतिर्दन्निन इनस्य वसुनः पद आ । उपभ्रजन्तमद्रयो विधन्ति ॥ १ ॥

१ वायुने, काठके भीतर घुसकर, विविधरूपधालो, सारे देवोंके कार्यमें निपुण और देवोंको बुलानेवाले अग्निको बड़ाया । पहले देवोंने अग्निको, विलक्षण प्रकाशवाले सूर्यको तरह, गनुष्यों और श्रुतिवर्षोंकी यज्ञ-सिद्धिके लिये, स्थापित किया था ।

२ अग्निको सन्तोषदायक दृष्ट्य देनेसे ही शत्रु लोग दुःखे नष्ट नहीं कर सकते । अग्नि मरे द्वारा प्रदत्त स्तोत्र आदिके अर्चनार्थी हैं । जिस समय स्तोत्रा अग्निकी स्तुति करते हैं, उस समय सारे देवता उनके दिये हुए इन्धनको ग्रहण करते हैं ।

३ यौगिक लोग जिन अग्निको नित्य दधि-दूध से लाते और स्तुतिके साथ स्थापित करते हैं, उन्हीं अग्निक श्रुतिवर्षोंने, भीष्मगामी और रथ-निबद्ध अश्वकी तरह, यज्ञके लिये बनाया ।

४ बिनाशक अग्नि सब प्रकारके वृक्षाको अपनी शिलाओं या दांतोंसे नष्ट करके विभिन्नमें चित्र-विचित्र योमा प्राप्त करते हैं । इसके अनन्तर जैसे घनुर्दारीके पासले, वेगवेग साथ, तोर जाता है, वैसे ही प्रतिदिन वायु शिलाके अनुकूल होकर बहते हैं ।

५ अग्निके गर्भमें अवस्थित जिन अग्निको शत्रु या अन्य हिंसक दुःख जहाँ दे सकते, उन्हा भी जिनका साहाय्य हो नष्ट कर सकता, उन्हींकी, अविचल भक्तिवाले यजमान, विद्रोह रूपसेवृत्ति दे करके, रक्षा करते हैं ।

१ महाघनके स्वामी अग्नि अभीष्ट प्रदान करते हुए, हमारे देव-पूजनके सामने जा रहे हैं । प्रभुजोंके भी प्रभु अग्नि वेदका आश्रय करते हैं । प्रस्तर-हस्त यजमान लोग आगत अग्निकी सेवा करते हैं ।

स यो वृषा नरां न रोदस्योः श्रवोभिरस्ति जीवपीतसर्गः । प्रयः सस्त्राणः शिश्रीत योनौ ॥ २ ॥  
आ यः पुर नाग्निणीमदीदैदत्यः कर्त्तिर्भन्योनावी । सूर्यो न रुदकाञ्छतात्मा ॥ ३ ॥  
अग्निं द्विजन्मा त्रीरोचनानि विश्वा रजांसि शुशुचानो अस्थात् । होता यजिष्ठो अयांसधस्ये ॥ ४ ॥  
अयं स होता यो द्विजन्मा विश्वादधे वार्याणि श्रवस्या । मर्तो यो अस्मै सुतुको ददाश ॥ ५ ॥

१५० सूक्त । अग्नि देवता । उष्णिक् छन्द ।

पुरुत्वा दाश्वान्वोच्चैरिरग्ने तव स्विदा । तोदस्येव शरण आ महस्य ॥ १ ॥  
व्यनिनस्य धनिनः प्रहोषे चिद्वरुषः । कदाचन प्रजिगतो अदेवयोः ॥ २ ॥  
स चन्द्रो विप्र मर्त्यो महो ब्राधन्तमो दिवि । प्रप्रेत्ते अग्ने वनुषः स्याम ॥ ३ ॥

— १५१ सूक्त —

२ मनुष्योंकी तरह, जो अग्नि, आवापृथिवीके भी उत्पादक हैं, वह यशःशाली होकर वर्त्तमान हैं एवं उन्होंने जीव लोग सृष्टिका आस्वादन प्राप्त करते हैं । उन्होंने गर्भाश्रयमें बैठकर सारे जीवोंकी सृष्टि की है ।

३ अग्निदेव मेघावी हैं; वह अन्तरीक्ष-विहारी वायुकी तरह विभिन्न स्थानोंमें जाते हैं । उन्होंने दस छन्दर वेदियोंको प्रदोष किया है । नानारूप अग्नि, सूर्यकी तरह, सशोभित होते हैं ।

४ द्विजन्मा अग्नि दीप्यमान लोकत्रयका प्रकाश करते और सारे रज्जनात्मक संसारका भी प्रकाश करते हैं । वह देवकी आह्वान-कर्त्ता हैं । जहाँ जल संगृहीत होता है, वहाँ अग्नि वर्त्तमान हैं ।

५ जो अग्नि द्विजन्मा हैं, वही होता हैं; वही हव्य-प्राप्तिकी अभिलाषासे सारा वरणीय धन धारण करते हैं । जो मनुष्य अग्निको मुख्य देवता है, वह उत्तम पुत्र प्राप्त करता है ।

१ हे अग्निदेव, मैं हव्य दान करता हूँ; इसलिये तुम्हारे पास बहुविध प्रार्थनाएं करता हूँ । अग्निदेव, मैं तुम्हारा ही सेवक हूँ । अग्निदेव, महान् स्वामीके घरमें जैसे सेवक हैं, वैसे ही तुम्हारे पास मैं हूँ ।

२ अग्निदेव, जो धनी मनुष्य तुम्हें स्वामी नहीं मानता वा उत्तमरूप हवनके लिये दक्षिणा नहीं देता एवं जो व्यक्ति देवोंकी स्तुति नहीं करता, उन देवशून्य दोनों व्यक्तियोंको धन नहीं देना ।

३ हे मेघावी अग्नि, जो मनुष्य तुम्हारा यज्ञ करता है, वह स्वर्गमें चन्द्रमाकी तरह सबका आनन्ददाता होता है; प्रधानोंमें भी प्रधान होता है । इस लिये हम विशेषतः तुम्हारे ही सेवक होंगे ।

१५१ सूक्त । मित्रावरुण देवता । जगती छन्द ।

मित्रं न यं शिष्या गोपु गायवः स्वाध्यायो विदथे अप्सु जीजनम् ।

अरेजेतां रोदसी पाजसा गिरा प्रनिप्रियं यजतं जनुषामवः ॥ १ ॥

यज्ञस्यद्वां पुनमीहस्य सोमिनः प्रमित्रासो न दध्निरे स्वाभुवः ।

अध्वरुतं विदत्तं गानुमर्चन उत श्रुतं वृषणा एस्यावनः ॥ २ ॥

आ दां भूपन् क्षितयो जन्मरोदस्योः प्रवाच्यं वृषणा दक्षसे महे ।

यदीमृताय भरथो यदर्धते प्रहोतया शिष्वावीथो अध्वरम् ॥ ३ ॥

प्र सा क्षितिरसुरयामहिप्रिय ज्ञातावानावृतमाधोपथो बृहत् ।

युवं दिवो बृहतो दक्षमाभुवं गां न धुर्युपयुञ्जाथे अपः ॥ ४ ॥

मदा अत्र महिनावारमृष्वथो रेणवस्तुज आसंज्ञान्धेनवः ।

स्वरन्ति ना उपगताति सूर्यमानिध्रुव उपसस्तकवीरिव ॥ ५ ॥

अ वामृताय कैशिनोरनूपन मित्र यत्र वरुण गानुमर्च्यः ।

अव त्मना नृजनं पिन्धनं धियो युवं विप्रस्य मन्मनामिरज्यथः ॥ ६ ॥

१ गो घनामिलायो और स्वाध्याय-सम्पन्न यज्ञासनों गोपन की प्राप्ति और मनुष्यों की रक्षा के लिये, मित्रकी तरह, प्रिय और यज्ञनीय जिन अग्निको अन्तर्गोप-भव जलके मध्यमें कर्म द्वारा उत्पन्न किया है, उनके बल और शक्तसे, चाचा-पृथिवी को जपित होती है ।

२ चूँकि मित्रावृण अतिवर्धित तुम्हारे लिये अभीष्टायी और अपने कर्ममें समर्थ सोमस चारंग-क्रिया है, इसलिये वृत्तिके घर आओ । तुम अभीष्टवर्षी हो । तुम गृहपति का आह्वान सुनो ।

३ अभीष्ट-वर्षक मित्रावरुण, मनुष्य लोग, मन्त्रादिको प्राप्तिके लिये, चाचा-पृथिवीसे तुम्हारे प्रशंसनीय कर्मका कीर्तन करते हैं; क्योंकि तुम यज्ञमानके यज्ञफलरूप मनोरथको देते हो तथा स्तुति और हव्ययुक्त यज्ञ ग्रहण करते हो ।

४ हे पर्वात-बलशाली मित्रावरुण, जो यज्ञभूमि तुम्हारे लिये प्रियतम है, वह उत्तम रूपसे सजायी गयी है । हे सत्यवादी मित्रावरुण, तुम हमारे महान् यज्ञकी प्रशंसा करो । दुग्ध आदिके द्वारा शरीरमें बल-दानके लिये, समर्थ घेनुकी तरह, तुम दोनों विशाल पृथ्वीके अग्रभागमें देवोंके आनन्दोत्पादनमें समर्थ हो और विविध स्थानोंमें आरम्भ किये कर्मका उपभोग करते हो ।

५ मित्रावरुण, तुम अपनी महिमासे जिन गायोंको वरणीय प्रदेशमें ले जाते हो, उन्हें कोई नेष्ट नहीं कर सकता । वह दूध देती और गोशालामें लौट आती हैं । चौरधारी मनुष्योंकी तरह वह गायें प्रातःकाल और सायंकालको उपरिस्थित सूर्यको ओर देखकर चीत्कार करती हैं ।

६ मित्रावरुण, तुम जिस यज्ञमें यज्ञभूमिको सम्मान-युक्त करते हो, उसमें केशकी तरह अग्निकी शिखी, यज्ञके लिये, तुम्हारी पूजा करती है । तुम निम्न मुखसे वृष्टि प्रदान करो और हमारे कर्मको सन्पन्न करो । तुम्हीं मेधावी यज्ञमानकी मनोहर स्तुतिके स्वामी हो ।

न वां द्यावोहमिर्नोत् सिन्धवो न देवत्वम्पणयो नानशुर्मघम् ॥ ९ ॥



त्रिरश्रिं हन्ति चतुरश्रिरुग्रो देवनिदोह प्रथमा ऽमजूर्यन् ॥ २ ॥

६ मित्रादण, तुम धन-विशिष्ट अन्न धारण करो, हमें धनयुक्त अन्न प्रदान करो। वह बहुत है और तुम्हारे हृदि-मल्ले रक्षित है। दिन वा रात्रिको तुम्हारा देवत्व नहीं मिला है। नवियोंने भी तुम्हारा देवत्व नहीं प्राप्त किया, और न पणियोंने ही। पणियोंने तुम्हारा दान भी नहीं पाया।

२ मित्र और शत्रु—दोनों ही कर्मका अनुष्ठान करते हैं। दोनों स्वयंवादी सप्रित्व-निपुण, कवियोंके स्त-  
वनीय और शत्रु-हिंसक हैं। वह प्रचण्ड रुखसे, चतुर्गुण अस्त्रोंसे संयुक्त होकर, त्रिगुण अस्त्रोंसे युक्तोंका शिनास  
करते हैं। इनके प्रभावसे देव-निष्ठक पहले ही जीर्ण हो जाते हैं।

अपादेति प्रथमापद्धतीनां कस्तद्धा मित्रावरुणाचिकेत ।  
 गर्भोभारं भरत्याचिदस्य ऋतंपिपत्यं नृतं नितारीत् ॥ ३ ॥  
 प्रयन्तमित् परिजारङ्कुनीनां पश्यामसि नोपनिपद्यमानम् ।  
 अनवपृग्णा वितता वसानं प्रियं मित्रस्य वरुणस्य धाम ॥ ४ ॥  
 अनश्वो जातो अनभोशुरर्वा कनिक्रदत् पतयदूर्ध्वसानुः ।  
 अचित्तं ब्रह्मजुजुप् सुवानः प्रमित्रे धाम वरुणे गृणन्तः ॥५॥  
 आ धेनवो मामतेयमवन्तीर्ब्रह्मप्रियं पीष्यन्त्सहिमन्मूधन् ।  
 पितृवो भिक्षेत वयुनानि विद्वानासाविवासन्नदितिमुकष्येत् ॥६॥  
 आ वां मित्रावरुणा हव्यजृष्टिं नमसा देवाववसा ववृत्यां ।  
 अरमाकं ब्रह्म पृतनासु सहा अस्माकं वृष्टिर्दिव्या सुपारा ॥७॥

१५३ सूक्त । मित्रावरुण वेवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

यजामहे वां महः सजोपा हव्येभिर्मित्रावरुणा नमोभिः ।

घृतैर्घृतस्मू अघयद्रामस्मे अध्वर्यवो न धीतिभिर्मरन्ति ॥१॥

३ मित्रावरुण, पद-संयुक्त मनुष्योंके आगे पदहून्या उपा आती हैं—यह जो तुम्हारा ही कर्म है, यह कौन जानता है ? तुम्हारे या दिवारात्रिके पुत्र सूर्य सत्यकी प्रति और असत्यका विनाश करके सारे संसारका भार वहन करते हैं ।

४ हम देखते हैं कि, कन्या या उपाके जार सूर्य क्रमागत चलते ही हैं—कभी भी थकते नहीं । विस्तृत तेजसे आकाशद्विष्ट सूर्य मित्रावरुणके प्रियपात्र हैं ।

५ आदित्यके न तो अश्व हैं, न लगाम; परन्तु वह शीघ्र-गमन-शील और अतीव-शब्दकर्ता हैं । वह इसमया ही ऊपर चढ़ते हैं । संसार इन सब अचिन्तनीय और विशाल कर्मोंको मित्र और वरुणके मानकर उनकी स्तुति और सेवा करता है ।

६ प्रीति-प्रदायक वायें विशाल कर्म-प्रिय समताके पुत्रको ( मुझे ) अपने स्तनसे उत्पन्न दूधसे प्रसन्न करें । वह यज्ञानुष्ठानों जानकर यज्ञमें बचे अन्नको, मुख द्वारा खानेके लिये, माँगे और मित्रावरुणकी सेवा करके यज्ञको अक्षयिधत रूपसे सम्पूर्ण करें ।

७ देव मित्रावरुण, मैं, रक्षाके लिये, नमस्कार और स्तोत्र करते हुए, तुम्हारे हव्य-सेवनके लिये उद्योग करूँगा । हमारा महान् कर्म, युद्धके समय, शत्रुओंको परास्त कर सके । स्वर्गीय वृष्टि हमारा उद्धार करे ।

१ हे वृत्तस्त्रावी और महान् मित्रावरुण, चूँकि हमारे अध्वर्यु लोग अपने कार्यसे तुम्हारा पोषण करते हैं; इसलिये हम समान-प्रीति-युक्त होकर हव्य, घृत और नमस्कार द्वारा तुम्हारी पूजा करते हैं ।

प्रस्तुतिर्वा धाम न प्रयुक्तिर्यामि मित्रावरुणः सुवृत्तिः ।  
अनक्ति यद्वा विदधेपु होता सुम्नं वां सूरिर्वृषणाविवक्षन् ॥२॥  
पीपाय धेनुरदितिष्ठताय जनाय मित्रावरुणा हविर्दे ।  
हिनोति यद्वा विदधे सपर्यन्तस् रानहव्यो मानुषो न होता ॥३॥  
उतवां विक्षमनास्वंधो गाव आपश्च पीपयन्त देवीः ।  
उतोतो अस्य पूव्यः पतिर्दन्वीतं पातं पयस उल्लियायाः ॥४॥

१५४ सूक्त । विष्णु, ऐवता । त्रिष्टुप् छन्दः ।

विष्णोर्भुक् वीर्याणि प्रचोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि ।  
यो अस्क भायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥१॥  
प्र तद्विष्णुः स्तयते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।  
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वाविक्षियंति भुवनानि विश्वा ॥२॥

१ मैं मित्रावरुण, तुम्हारे उद्देश्यसे केवल यज्ञका प्रस्ताव या यज्ञ ही नहीं है; किन्तु उसके द्वारा मैं तुम्हारा तेज प्राप्त करता हूँ । जिस समय सुधीहोता, तुम्हारे उद्देश्यसे यज्ञ करनेके लिये आते हैं, उस समय, हे अभीष्टवर्षक, वह सब प्राप्त करते हैं ।

२ मैं मित्रावरुण, रातहव्य नामके राजाके अनुष्य यज्ञमानके होताकी तरह, यज्ञमें सेवा द्वारा तुम्हें प्रसन्न करनेपर राजाकी धेनु जैसे दुग्धवती हुई थी, वैसे ही, तुम्हारे यज्ञमें जो यज्ञमान हव्य देता है, उसकी गायें भी बहुत दूधवाली होकर आनन्द बढ़ावे ।

३ मैं मित्र और वरुण, दिव्य धेनुएँ, अन्न और जल तुम्हारे भक्त यज्ञमानोंके लिये तुम्हें प्रसन्न करें । हमारे यज्ञमानके पूर्व-पालक अग्नि दानशील हों और तुम क्षीरवर्षिणी धेनुका दूध पीओ ।

४ मैं तुम्हारे

महाभारत-संहिता

१ मैं विष्णुके वीर-कार्यका शीघ्र ही कीर्तन करूँगा । उन्होंने वामनावतारमें तीनों लोकोंको मापा था । उन्होंने उपरके सत्यलोकको हस्तभित्त किया था । उन्होंने तीन बार पाद-क्षेप किया था । संसार उनकी बहुत स्तुति करता है ।

२ वू कि विष्णुके ही नपाद-क्षेपमें सारा संसार रहता है; इसलिये भयंकर, हिंस्र, गिरिगाथी और वन्य जानवरकी तरह, संसार विष्णुके विक्रमकी प्रशंसा करता है ।

प्रविष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित अ उरुगायाय वृष्णे।

य इदं दोर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिमिरित्पदैभिः॥३॥

यस्य त्रीपूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणाः स्वधया मदन्ति।

य स त्रिधातु पृथिवीमुतद्यत्मेको दाधार भुवनानि विश्वा ॥४॥

तदस्य प्रियमभिपाथो अश्यां नरो यत्र देवयवो मदन्ति।

उरुक्रमस्य स हि बंधुरित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥५॥

ता वां वास्तून्पुष्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृंगा अयासः।

अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमवभाति भूरि ॥६॥



१५५ सूक्त। इन्द्र और विष्णु देवता। जगती छन्द।

प्रवाः पान्तमंधसो धियायते महे शूराय विष्णवे चार्चता।

या सानुनि पधेतानामदाभ्यामहस्तस्थतुरर्धतेव साधुना ॥१॥

३ उन्मत्त प्रदेशमें रहनेव ले, अमीष्टवर्षक और सब लोकोंमें प्रशंसित विष्णुको महाबल और स्त्रोत्र आश्रित करें। उन्होंने अकेले ही एकत्र अवस्थित और अति विस्तीर्ण नियत लोक-त्रयको तीन बारके एक-क्रमण द्वारा मापा था।

४ ( जिन, ) विष्णुका हास-होन, अमृतपूर्ण और त्रिलोक्यक पद-क्षेप अन्न द्वारा मनुष्योंको हर्ष देता है, ( जिन्होंने, ) विष्णुने अकेले ही धातु-त्रय, पृथिवी, द्युलोक और समस्त भुवनोंको चारण कर रखा है। ५

५ देवार्काक्षी मनुष्य जिस प्रिय मागोंका प्राप्त करके हृष्ट होते हैं, मैं भी उसीको प्राप्त करूँ। उस पराक्रमी विष्णुके परम पदमें मधुर ( अमृत आदिका ) क्षरण है। विष्णु वस्तुतः बन्धु हैं।

६ जिन सब स्थानोंमें उन्मत्त शृङ्गवाली और शीघ्रगामी गायें हैं, उन्होंने सब स्थानोंमें तुम दोनोंके जानेके लिये मैं विष्णुकी प्रार्थना करता हूँ। इन सब स्थानोंमें बहुत लोगोके स्तवनाय और अमीष्टवर्षक-विष्णुका परम-पद यथेष्ट स्फूर्ति प्राप्त करता है।

१ अष्टव्युर्गण, तुम स्तुतिप्रिय और महावीर इन्द्र और विष्णुके लिये पीने योग्य सोमरस तैयार करो। वे दोनों दुर्द्ध और महिमावाले हैं। वे मेघके ऊपर इस तरह भ्रमण करते हैं, मानों क्षिप्त अश्वके ऊपर भ्रमण करते हैं।

× धातुत्रयसे कालत्रय अथवा गुण-त्रयका भी ग्रहण किया जा सकता है।



त्वेपमित्या समरणं शिमीवतोऽग्निद्राविष्णू सुतपावामुरुष्यति ।  
 या मर्त्याय प्रतिधोयमानमित् कृशानोरस्तुरसनामुरुष्यधः ॥२॥  
 ता इं वर्धति मह्यस्य पौंस्यं निमातरा नयति रेतसे भुजे ।  
 दधाति पुत्रोवरं परं पितुर्नाम तृतीयमधिरोचने दिवः ॥३॥  
 तत्तदिदस्य पौंस्यं शृणीमसीनस्य दातुरवृकस्य मीढपा ।  
 यः पार्थिवानि त्रिमितिद्विगामभिरुक्रमिष्टोरुगायाय जीवसे ॥४॥  
 इन्द्र इदस्य हसणे स्वर्द्धशोमिष्याय मर्त्यो भुरण्यति ।  
 तृतीयसस्य नकिरादधर्पति वयश्चन पतयन्तः पततिणः ॥५॥  
 अतुभिः साकं नवति च नामभिश्चकं न वृत्तं व्यती रवीविपत् ।  
 बृहच्छरीरो विमिमान ऋकभिर्युवाकुमारः प्रत्येत्याहवं ॥६॥



२ इन्द्र और विष्णु, तुमलोग दण्ड-पद हो; इसलिये यज्ञमें बचे हुए सोम पीनेवाले यजमान तुम्हारे दोषिणों कागमनकी प्रशंसा करते हैं। तुम लोग मनुष्योंके लिये, शत्रु-विमर्दक अग्निसे प्रदातव्य अन्न सदा प्रेरित करते हो।

३ सारी प्रसिद्ध आहुतियाँ इन्द्रके महान् पौरुषको बढ़ाती हैं। इन्द्र, सबकी मातृभूता आवापृथिवीके रेत और तेज और उपभोगके लिये, वही शक्ति प्रदान करते हैं। पुत्रका नाम निकृष्ट या निम्न है और पिताका नाम उत्कृष्ट वा उच्च है। शुलोकके दोहिमान प्रदेशमें तृतीय नाम वा पौत्रका नाम है अथवा वह शुलोकमें रहनेवाले इन्द्र और विष्णुके अजीव हैं।

४ हम सबके स्वामी, पालक, शत्रु-रहित और तक्षण विष्णुके पौरुषकी स्तुति करते हैं। विष्णुने, प्रशंसनीय लोककी रक्षाके लिये, तीन बार पाद-विज्ञेय द्वारा सारे पार्थिव लोकोंकी, विस्तृत रूपसे, प्रदक्षिणा की है।

५ मनुष्यगण, कीर्त्तन करते हुए स्वर्गदर्शो विष्णुके दो पाद-ज्ञेय प्राप्त करते हैं। उनके तीसरे पाद-ज्ञेयको मनुष्य नहीं पा सकते; आकाशमें उड़नेवाले पक्षी या मनुष्य भी नहीं प्राप्त कर सकते।

६ विष्णुने, गति-विकोष द्वारा, विविध स्वभाववाली कालके १४ अंशोंको, चक्रकी तरह घुसाकार, परिचालित कर रखा है। विष्णु विशाल स्तुतिसे युक्त और स्तुति द्वारा जानने योग्य हैं। वह नित्य, तक्षण और अकुमार हैं। वह शुद्धमें या आह्वानपर जाते हैं।

१५६ सूक्त । विष्णु देवता । जगती छन्द ।

भवामित्रो न श्रेष्ठो घृतासुतिर्भिभूतद्युम्न पद्भ्या उदप्रथाः ।  
अधाते विष्णो विदुषा चिदर्घ्यः स्ताभो यज्ञश्च राध्यो हविष्मता ॥ १ ॥  
यः पूर्व्याय वेधसे नवीयसे सुमज्जानये विष्णवे ददाशति ।  
यो जातमस्य महतो महिषवत् सेदु श्रवोभिर्यज्यं चिदम्यसत् ॥ २ ॥  
तमु स्तोतारः पूर्वं यथाविद श्रुतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन ।  
आस्य जानन्तो नामषिद्विषकन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥ ३ ॥  
तमस्य राजा वरुणस्तमश्चिना क्रतुं सचन्त मारुतस्य वेधसः ।  
दाधार दक्षमुत्तममहर्दिदं व्रज च विष्णुः सखिर्वा अपोर्णुते ॥ ४ ॥  
आ यो निवाय सचथाय दैव्य इन्द्राय विष्णुः सुकृते सुकृतरः ।  
वेधा अजिन्वत्त्रिपथस्थ आर्यमृतस्य भागे यजमानमाभजत् ॥ ५ ॥

२२ अनुवाक । १५७ सूक्त । अश्विद्वय देवता । जगती और त्रिष्टुप् छन्द ।

अबोध्याग्निर्जम् उदेति सूर्यो व्युपाच्चन्द्रः मघावो अर्चिषा ।

आयुक्षातामश्विना यातवे रथ प्रासावीद्वेवः सविता जगत्पृथक् ॥ १ ॥

१ विष्णुदेव, मित्रकी तरह हम हमारे छलदाता, घृतासुति-भाजन, प्रकृत अन्नवान्, रक्षाशील और पृथुव्यापी बनो । बिह्वान् यजमान द्वारा तुम्हारा स्तोत्र बार-बार कहने योग्य है; और, तुम्हारा यज्ञ हविषाले यजमानका आराधनीय है ।

२ जो व्यक्ति प्रचीन, मेघावी, नित्य नवीन और स्वयं उत्पन्न या जगन्मादनशील खीवाले विष्णुको हव्य प्रधान करता है; जो महानुभाव विष्णुकी पूजनीय आदि कथा कहते हैं; वही समीप स्थान पाते हैं ।

३ स्तोताभो, प्राचीन दशके गर्भभूत विष्णुको ऐसा जानते हो, वेसे ही स्तोत्र आदिके द्वारा उनको प्रसन्न करो । विष्णुका नाम जानकर कीर्तन करो । विष्णु, तुम महानुभाव हो, तुम्हारी बुद्धिकी हम उपासना करते हैं ।

४ राजा वरुण और अश्विनीकुमार श्रुतिव्युक्त यजमानके दशरूप विष्णुकी सेवा करते हैं । अश्विनीकुमार और विष्णु, मित्र होकर, उत्तम और दिनज्ञा बल धारण करते और मेघका आच्छादन इटाते हैं ।

५ जो स्वर्गीय और अतिहव्य शोभनकर्मा विष्णु शोभनकर्मा इन्द्रके साथ मिलकर आते हैं, उन्हीं मेघावी तानों कोकोमें पराक्रमवाकी विष्णुने आनेवाले यजमानको प्रसन्न किया है और यजमानको यज्ञ-भाग दिया है ।

१ भूमिके ऊपर अग्नि जागे, सूर्य उगे । विराट सभा तेज द्वारा सबको आह्लादित करके अन्धकारको दूर करती है ।  
२ अश्विनीकुमारों, आनेके लिये अपना रथ सैयार करो । सारे संसारको अपने-अपने कर्मोंमें सविता देवता नियुक्त करे ।

यद्युज्ज्ञाधे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतं ।  
 अस्माकं ब्रह्म वृत्तनासु चिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥ २ ॥  
 अवाङ् भिक्षो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः ।  
 त्रिवन्धुरो मघवा विश्वसौ भगः शं न आश्वक्षद्विद्वपदे चतुष्पदे ॥ ३ ॥  
 आ न ऊर्जं ब्रह्ममश्विना युवं मधुमत्या तः कशया मिमिक्षतं ।  
 प्रागुस्तारिष्टं नीरपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥ ४ ॥  
 युवं ह गभं जगतीषु धृत्यो युवं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।  
 युवमश्वि च वृषणावपश्च वनस्पती रश्विनावैरयेथाम् ॥ ५ ॥  
 युवं ह स्थो भिपजभेपजेभिरथो हस्थो रथ्या राथ्येभिः ।  
 अथो ह क्षत्रमधिधत्थ उग्रा यो वां हविष्मान्मनसा ददाश ॥ ६ ॥

२ अश्विद्वय, जिस समय तुमलोग वृष्टिदाता रथको तैयार करते हो, उस समय मधुर जल द्वारा हमारा बल बढ़ाओ । हमारे आदमियोंको अन्न द्वारा प्रसन्न करो । हम वीर संग्राममें धन प्राप्त करें ।

३ अश्विनीकुमारोंका तीन पहियोंवाला, मधुयुक्त, तेज घोड़ोंसे लंघ्युक्त, प्रशंसित, तीन बन्धनोंवाला घन-पूर्ण और सर्व-सौभाग्य-सम्पन्न रथ हमारे सामने आवे और हमारे द्विपद ( पुत्र आदि ) तथा - चतुष्पद ( गौ आदि ) को छल दे ।

४ अश्विनीकुमारो, तुम दोनों हमें बल प्रदान करो । अपनी मधुमती कषा द्वारा हमें प्रसन्न करो । हमारे आयु बढ़ाओ, पाप दूर करो, द्वेषियोंका विनाश करो और सारे कर्मोंमें हमारे साथी बनो ।

५ अश्विद्वय, तुम दोनों गमनशील गौओं और सारे संसारके प्राणियोंमें अन्तःस्थित गभोंकी रक्षा करो । अभीष्टवर्षकवृष, अग्नि, जल और वनस्पतियोंको प्रवर्धित करो ।

६ अश्विद्वय, तुम दोनों औषध-ज्ञान द्वारा वैद्य और रथवाहक कश्वों द्वारा रथवान् हुए हो । तुम्हारा बल बहुत अधिक है; इसलिये हे सप अश्विद्वय, तुम्हें जो, आसक्त चित्तसे, हव्य प्रदान करता है, उसकी रक्षा करो ।

द्वितीय अध्याय समाप्त

## तृतीय अध्याय ।



१०८ सूक्त । अश्विद्वय देवता । त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्द ।  
 दहूरुद्रा पुरुमन्तु वृधन्ता दशस्यतं नो वृषणावमिष्टौ ।  
 दक्षा ए यद्वेषण औन्नत्यो वां प्रयत्नसक्तये अकषामिहूती ॥१॥  
 फो वां दाशत्सुमतये त्रिदरुधै वम् यद्वेये नमसा पदे गोः ।  
 जिगृन्मस्मो रेवतोः पुरन्धी कामप्रेणेव तानसं चरन्ता ॥२॥  
 युक्तो द्युह्वां तौगूयाय पेरुर्धिमध्ये अर्णसो धायि पञ्चः ।  
 उप धामयः शरण गमेयं कूरो नडम पनयद्भिरोत्रैः ॥३॥  
 उपस्तुतिर्नैन्धुमुक्तयेन्मामामिमे पतत्रिगो विदुधाम् ।  
 मामामिप्रो वरानयक्षितो धक् प्रयद्वां चद्वस्त्वनि खादति क्षाम् ॥४॥  
 न मा गरन्तयो मातृत्नमा दासायदीं सुस्तमुब्धमव धुः ।  
 क्षिरो यदस्य त्रैतनो चित्तश्चक्षुष्यं दास उरो अंसावपिध्व ॥५॥

१ हे अश्विदेवता, निवासशाला, पादद्वन्ता, दहूजानी, स्तुति द्वारा वर्द्धमान और पजित अश्विनीकुमारो, हमें अमोघ फल दो; क्योंकि उच्चपुत्र दौघतमा तुम्हारी प्रार्थना करता है और तुम प्रदत्तनीय रीतिसे आशय प्रदान करते हो ।

२ निवासप्रद अश्विनीकुमारो, तुम्हारे इस अनुग्रहके सामने कौन तुम्हें इन्ध प्रदान कर सकता है ? अपने यज्ञीय स्थानपर हमारी स्तुति एतन्त्र, उब्धे साथ, तुम योग बहुत धन देना चाहते हो । शरीरपुष्टिकरी, शत्रावमानर और बहुत दूधघाली गायें प्रदान करो । यजमानोंकी अभिलाषा पूर्ण करनेके लिये तुम लोग कुतस्त्व होकर विचारण करते हो ।

३ अश्विनीकुमारो, तुम्हारे दक्षार-कुशल और अश्वयुक्त रथके, तुमपुत्र भुज्युके लिये, बल-प्रयोग द्वारा उत्तीर्ण होनेपर यह समुद्रमें न्यस्त हुआ था । अतएव जैसे युद्ध जेता वीर द्रुतगामो अथ द्वारा अपने चर्मों आला है, वैसे हो हम तुम्हारे आशयके लिये दणगत हुए हैं ।

४ अश्विनीकुमारो, तुम्हारी स्तुति दौघतमाकी रक्षा करे । प्रतिदिन घूमनेवाले अहोरात्र हमें शीर्ण न करे । दण बार प्रक्षालित अग्नि मुझे जला न सके; क्योंकि तुम्हारे आशित यह व्यक्ति, पाश बद्ध होकर, पृथिवीपर लेट रहा है ।

५ मातृरूप ग्नी-जल मुझे दूधो न दे । रभदसी या अनार्योंने इस संकुलिलाङ्ग वृद्धको नीचे मुँह कर केँद दिया है । त्रैतनने इनका सिर काटा था । दारुने स्वयं हृदय-देश और अंश-द्वयपर आघात दिया था ।

दीर्घतमा मामतेयो जङ्ग्वान्दशमे युगे ।

अपामर्थं यतोनां ब्रह्मा भवति सारथिः ॥६॥

१५६ छक । द्यावापृथिवी देवता । जगती छन्द ।

प्र जात्रो यज्ञैः पृथिवी ऋतावृत्रा महीस्तुपे विदथेषु प्रचेतसा ।

देवैर्मिर्ये देवंपुत्रे सुदंससेत्या धिया वार्याणि प्रभूयतः ॥१॥

उतमन्ये पितुरद्रुहो मनो मातुमहिस्वतवस्तद्धवीमभीः ।

सुरेतसा पितरा भूम चक्रनुरुह प्रजाया अमृतं वरीमभिः ॥२॥

ते सूनवः स्वपसः सुंसलो मही जङ्गुर्मातरा पूर्वचित्तये ।

स्थातश्च सत्यं जगतश्च धर्मेण पुत्रस्य पाथः पदमद्र्यादिनः ॥३॥

ते मायिनो मर्मरे सुप्रचेतसो जामोसयांती मिथुना रुमोकसा ।

नव्य नव्यं तन्तुमातन्वते दिवि समुद्रे अन्तः कवय स्रुतयः ॥४॥

१ समस्तके पुत्र दीर्घतमा, दसवें कालके बीतने पर, जोणें हुए थे । जा सब लाग कर्म-फल पानेकी इच्छा करते हैं, वे अपने नेता और सारथि हैं ।

१ यज्ञ-वर्द्धक, महान् और यज्ञकार्यमें चैतन्यकारी द्यावापृथिवीकी, मैं, विशाल रूपसे, स्तुति करता हूँ । यज्ञमान होनेसे पुत्र-स्वरूप हैं । उनके कर्म सुन्दर हैं । अनुग्रह करते हुए वे यज्ञमानोंको वरणीय धन प्रदान करते हैं ।

२ मैंने, आप्तान मंत्र द्वारा, निर्दोह और पितृस्थानीय युलोकके उदार और सदाय मनको जाना है । मातृ-स्थानीय पृथिवीके मनको भी जाना है । पिता-माता (द्यावापृथिवी) अपनी शक्तिये, पुत्रोंकी, भली भाँति, रक्षा करते हुए पदुष और विस्तीर्ण अमृत देते हैं । १

३ सुम्हारी सन्तान, छकमाँ और सुदशन प्रजापूँ, तुम्हारे पालके अनुग्रहको स्मरण करके, तुम्हें महान् और माता कहकर स्मरते हैं । पुत्र-स्वरूप स्थावर और जगम पदार्थ द्यावा-पृथिवीके अतिरिक्त और विसर्गका नहीं जानते । तुम उनकी रक्षादा अनाथ स्थान प्रदान करते हो ।

४ द्यावापृथिवी सहोदरा अग्निनी और एक स्थान रहनेवाले जोड़े हैं । वे प्रज्ञा-युक्त और चैतन्यकारी हैं । किरणें उनकी विभाग करती हैं । अपने कार्यमें निरत और उपक्राशित रश्मियाँ लोकमान अन्तरीक्षके बीच नये-नये स्रुत फैलाती हैं ।

१ जराजार्ण और जन्मान्ध दशतमाक विनाशमें असमर्थ हाथर अन्धों या गर्भदासोंने उन्हें आगमें फेंक दिया था दीर्घतमाने स्तुति की और अश्वद्वारने उन्हें बचाया । फिर गमदासोंने उन्हें जलमें फेंका और कुमारोंने रक्षा की । अन्तको त्रैलोक्य नामके दासने उनका मस्तक और सिर छेद दिया । सो भी कुमारोंने उनकी रक्षा की ।

तद्वाधो अद्य सचिदुचरेण्यं द्यं देवस्य प्रसवे मनाम्हे ।

मरुमभ्यं धावापृथिवी सुचेतना रयि धत्तं वसुमन्तं शतग्विनम् ॥ ५ ॥



१६० सूक्त । धावापृथिवी देवता । जगती छन्द ।

ते हि धावापृथिवी विश्वशम्भुश्च ऋतावरी रजसो धारयत्कवी ।

सुजन्मनी धिरणे अन्तरोयते देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः ॥ १ ॥

उरुव्यवसा महिनी असञ्चता पितामाता च भुवनानि रक्षतः ।

सुधृष्टमेघ पुष्पे न रोदसी पिता यत्सीमभिरूपैरवासयत् ॥ २ ॥

स घटिः पुत्रः पित्रोः पवित्रशान्पुनाति धीरो भुवनानि मायया ।

धेनुं न पृश्निं वृषभं सुरेतरं विश्वाहा शुकं पयो अस्य दुक्षन् ॥ ३ ॥

अयं देवानामपसामपस्तमो यो जजान रोदसी विश्वशम्भुश्च ।

वि यो ममे रजसो सुकनूयया तरेभिः स्कंभनेभिः समानूचे ॥ ४ ॥

ते मो गृगाने महिनी महिश्चक्षुः क्षत्रं धावापृथिवी धासथी वृष्ट ।

येनाभि कण्ठोस्ततनाम विश्वाहा पतादरमोजो अस्मे समिन्वतम् ॥ ५ ॥

५ आज हम सविता देवताकी अनुमतिसे अनुसार वस वरणोय धनको चाहते हैं । हमारे ऊपर धावापृथिवी अनुग्रह करके, गृह आदि और शत-शत गौओंसे युक्त धन दें ।

१ धावापृथिवी संसारके लिये सुव्याधिनी, यज्ञवती, जल उत्पन्न करनेके लिये चेष्टा-सम्पन्ना, सुजाता और अपने कार्यमें निपुणा हैं । चोहमान और शुचि सूर्य धावापृथिवीके दीव, अपने कार्यसे, सदा गमन करते हैं ।

२ विशाल, विस्तोर्ण और परस्पर-वियुक्त माता-पिता ( धावापृथिवी ) प्राणियोंकी रक्षा करते हैं । शरीरियोंके मंगलके लिये ही धावापृथिवी मर्गों मचेष्ट हैं; क्योंकि पिता सारे पद्योंको रूप प्रदान करते हैं ।

३ पिता-माता ( धावापृथिवी ) के पुत्र सून हैं । वह धीर और फलदाता हैं । अपनी बुद्धिसे वह सारे भूतोंको प्रकाशित करते हैं । वह शुक्लजं घेनु ( पृथिवी ) और तेजस्व-कार्यमें समर्थ वृष ( बृलोक ) को भी प्रकाशित करते हैं । वह बृलोकसे निर्मल दूध दृष्टते हैं ।

४ वह देवोंमें देवतम और कर्मियोंमें कर्मज्येष्ठ हैं । उन्होंने सर्व-खलहाता धावापृथिवीको प्रकट किया है और प्राणियोंके सुखके लिये धावापृथिवीको विभक्त करते हैं । उन्होंने सदृश शुक्ल या खूँटेमें हुन्हें स्थिर कर रखा है ।

५ धावापृथिवी, हम सुन्दारी स्तुति करते हैं । हम महान् हो, हमें प्रभूत अन्न और जल प्रदान करो, जिससे हम सदा पुत्र आदि प्रजाका विस्तार करें । हमारे शरीरमें प्रशंसनीय बलकी वृद्धि कर दो ।

१६: सूक्त । ऋभु देवता । जगता छन्द ।

किमु श्रेष्ठः किं यविष्ठः न आजगन्निस्सीयते दूत्यं कथदू चम ।

न निन्द्य चमसं यो महकुलोऽने अतद्र्ण इदमूतिमुदिन ॥ १ ॥

एकं चमसं चतुरः कृणोतन तद्वो देवा अब्रुवन्तद्व आगमम् ।

सौधन्वना दद्यवा करिष्यथ साकं देवैर्याज्ञयासो भविष्यथ ॥ २ ॥

अग्निं दूतं प्रात यद्वतीतनाशः कर्तारं रथ उतेह कर्त्तव्यः ।

धेतुः कर्त्तारं युवशा कर्त्तारद्वारानि भ्रातरणुः कृत्वैमसि ॥ ३ ॥

चक्षुर्वासः ऋभवस्तदपुच्छत कथमूयः स्य दूतो न आजगन् ।

यदा वाख्यच्चमसां चतुः कृतानादित्वप्टाग्रास्वन्तर्नानजे ॥ ४ ॥

हनामैतां इति त्वष्टा यद्वतीचमसं ये देवपानमनिन्द्युः ।

अन्या नामानि कृण्वते सुते सचां अन्यैरेतान् कन्या नामभिः स्परत् ॥ ५ ॥

१ जो हमारे पास आये हैं, वह क्या हमसे जेठ हैं या छोटे ? ये क्या देवोंके दूत-कार्यके लिये आये हैं ? इन्हें क्या कहना होगा ? इन्हें कैसे पहचानेंगे ? मन्त्राग्नि, हम चमसकी निन्दा नहीं करेंगे; क्योंकि वह महाकुलमें उत्पन्न है । उल काष्ठमय चमसकी स्मृतिकी हम व्याख्या करेंगे ।

२ (अग्निने कहा) — छधन्वाके पुत्र, एक चमसकी चार बनाओ — देवोंने यह बात कहकर मुझे भेजा है । मैं तुम्हें कहने आया हूँ । तुम लोग यह कार्य कर सकते हो और ऐसा करनेपर तुम लोग देवोंके साथ यज्ञाभ्यासी बनोगे ।

३ अग्निदेव, देवोंने अपने दूत अग्निने प्रति जो-जो कार्य बताया हैं, उनमेंसे अन्न बनाना होगा, रथका निर्माण करना होगा, गौका सृजन करना होगा अथवा माता-पिताको फिर तरुण करना होगा ? भ्रातृगण, तुम्हारे पुत्र, रथ-कार्योंको करके अन्नको, कर्म फलके लिये, तुम्हारे पास आवेंगे ।

४ ऋभुगण, वह कार्य करके तुमने पूछा कि, जो दूत हमारे पास आया था, वह कहाँ गया ? जिस समय त्वष्टा या छधन्वा ने चमसकी चार-दुकड़े देखे, उसी समय वह स्त्रियोंमें छिप गया ।

५ जिस समय त्वष्टाने कहा कि, जिन्होंने देवोंके पानपात्र चमसका अमन किया है, उनका वध करना होगा, इस समयसे ऋभुगणने, सोम तैयार होनेपर, दूमरा नाम ग्रहण किया और कन्या या उनकी माताने उसी नामसे पुत्रोंको प्रमन्न किया ।

छधन्वके तीन पुत्रोंने देवत्वग्रस किया था । एक बार वे साम पी रहे थे कि, देवोंने वहाँ अग्निदेवका भोज दिया । अग्नि उन तीनोंके समान रूपोंको देखकर स्वयं भी वैसा ही रूप धारण करके सोम पीने लगे । अपने समान ही दुसरे रूपोंको देखकर इस संक्रमे ऋभु लोग पृथक् रहे हैं ।

इन्द्रो हरी युयुजे अश्विना रथं बृहस्पतिर्विश्वरूपमुपाजत ।  
 ऋभुर्विम्बा वाजो देशां अगच्छत स्वयसो यज्ञियं भागमैनत ॥ ६ ॥  
 निश्चमेणो गमरेणीत धीतिमिराजरन्ता युगशाना कृगेतन ।  
 सौधन्वना अश्वदश्वमज्जन युग्वा रथ मुप देवां अयातन ॥ ७ ॥  
 इवमुदर्कं पिबतेत्यग्रवीतनेदं वाघा पिबता मुञ्चने जनम् ।  
 सौधन्वना यदितन्नेव हर्यग्र तृतीये घापवने मादगाध्वै ॥ ८ ॥  
 आपो भूयिष्ठ इत्येको अत्रवीदग्निर्भूयिष्ठ इत्यन्यो अत्रवीत् ।  
 घघर्दन्तो बहुभ्यः प्रैको अत्रवीद्वतावदन्धमजं अपिशत ॥ ९ ॥  
 श्रोणामेक उदर्कं गामवाजति मांसमेकः गिरति सूतवाभृतम् ।  
 आनिम्रचः शकृदेको अपाभरत्किंस्वित्पुत्रेभ्यः पितरा उपावतुः ॥ १० ॥  
 उहस्वस्मा अकृणोतना तृणं निवत्स्वपः स्वस्वया नरः ।  
 अगोहास्य यदसस्तना गृहेतद्येदमृभवा नानुगच्छथ ॥ ११ ॥

६ इन्द्रने अपने भयोंको सजाया, अश्विनोकुमारोंने रथ तैयार किया, बृहस्पतिने विश्वरूपा गौको स्वीकार किया। इसलिये हे ऋभु, विभु और वाज, तुम देवोंके पास गयन करो। हे पुण्यकर्ता लोग, तुम यज्ञ-भाग गहन करो।

७ हे सुधन्वाके पुत्रो, तुमने आश्वर्यजनक कौरालने मृग घेनुके शरीरसे चमड़ा लेकर उमते घेनु उत्पन्न की, जो पिता-माता बूढ़ थे, उन्हें फिर युवा किया; एक अग्रसे अन्य अग उत्पन्न किया; इस लिये रथ तैयार करके देवोंके सामने जाओ।

८ देवो, तुमने कहा था, 'हे सुधन्वाके पुत्रो, तुम लोग यही सोमरस पान करो अथवा मुञ्च-वृगसे शोचिष्ठ सोमरस पान करो। यदि इन दोनोंमें तुम्हारी इच्छा न हो, तो तीसरे (साथ) सवनमें सोमरस पीकर अत्यन्त सुख हो जाओ।'

९ ऋभुओंमेंसे एकने कहा, "जल ही सबने श्रेष्ठ है", एकने अग्निको श्रेष्ठ बताया और तीसरेने पृथ्वीको। सबी बात कहकर ही उन्होंने चारो चमलोंको तैयार किया।

१० एक लोहितवर्ण जल या रक्त, बाहर, भूमिपर रखने हैं, दूसरे छुरेसे कटे मांसको रखते हैं, तीसरे मांससे मल आदि अलग करते हैं। किस प्रकार पिता-माता (यजमान-दम्पती) पुत्रों (ऋभुओं) का उपकार कर सकते हैं ?

११ प्रभूत दोसियाली ऋभुओ, तुम नेता हो। प्राजियोंके अलके लिये तुम ऊँचे स्थानपर घोड़, गव आदि तुज उत्पन्न करते और सस्पर्श करनेकी इच्छासे नोचेके प्रदेशमें जल उत्पन्न करते हो। सूर्यमण्डलों अवसक तुम निहित थे; इस-समय बेसा नहीं करना। अपना कार्य सिद्ध करो।



संमोक्ष्य यदुवना पर्यसर्पत क स्थितात्या पितराव आसतुः ।  
 अशपतयः करस्तं च आददेयः प्रात्रवोत्प्रोतस्मा अत्रवोतन ॥१२॥  
 सुपुष्पांस ऋभवस्तदपृच्छतागोह्य क इदं नो अब्रुवधत् ।  
 श्वानं वस्तो बोधयितारमत्रवोत्संत्सर इदमद्याव्यख्यत ॥१३॥  
 दिवा यान्ति मरुतो भूम्याशिरयं वातो अन्तरिक्षेण याति ।  
 अद्विर्याति वरुणः समुद्रं युष्मां इच्छन्तः शवसो नपातः ॥१४॥



१६२ सूक्त । अथ्य देवता । जगती और त्रिष्टुप् छन्द ।

मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतः परिख्यन् ।  
 यद्वाजिनो देवजातस्य सप्तः प्रवक्ष्यामो विदये वीर्याणि ॥१॥  
 यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृत्त स्यरातिं गुभोतां मुवन्तो नयन्ति ।  
 सुप्राणजो मेम्यश्चिररूप इन्द्रः पूष्णः प्रियपप्येति पाथः ॥२॥  
 एषच्छागः पुगे अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्यः ।  
 अभिप्रियं यत्पुणेलाशमर्चता दृष्टेदेनं सौश्रवसाय जिन्वति ॥३॥

१२ ऋभुभो, जिस सनय तुम जलधामें भूतोंको मिलाकर चारो ओर जाते हो, उस समय संसारके पिता-माता कहाँ रहते हैं ? जो लोग तुम्हारा हाथ पकड़ कर रोकते हैं, उन्हें नीचा दिखाओ । जो यवन द्वारा तुम्हें रोकता है, उसको अर्त्सवा करो ।

१३ ऋभुभो, तुम सूर्य-मण्डलमें सोकर सूर्यसे पूछते हो कि, “हे सूर्य, किसने हमारे कर्मको अगावा ।” वह कहते हैं, “वायुने तुम्हें जगाया ।” वर्ष बौत चक्रा, इस समय फिर तुम लोग संसारको प्रकाशित करो ।

१४ बलके नत्ता ऋभुभो, तुम्हारे दर्शनकी इच्छाने मरुत छुलोकसे आ रहे हैं; अग्नि, पृथ्वीसे, आते हैं; वायु, आकाशसे, आते हैं; और, वरुण, समुद्र-जलके साथ, आते हैं ।

१ चूँकि हम यज्ञमें देवजात और द्रव्यगति अश्वके चौर कर्मका कीर्त्तन करते हैं; इसलिये मित्र, वरुण, अर्यमा, आयु, इन्द्र, ऋभुक्षा और वायु हमारी निन्दा न करें ।

२ सुन्दर स्वर्णभरणसे विभूषित अश्वके सामने ऋत्विक् लोग, कत्सर्गके लिये, झांग पकड़कर ले जाते हैं । विविध वर्णके झांग, शब्द करते हुए, सामने जाते हैं । वह इन्द्र और पूषाका प्रिय अन्न हो ।

३ सब देवोंके लिये उपयुक्त झांग पूषाके ही अंशमें पड़ता है । उसे योद्धागामी अश्वके साथ सामने लाया जाता है । अतएव त्वष्टा देवताके सुन्दर भोजनके लिये, अश्वके साथ, इस झांगसे सखाय पुरोडाश सेवार किया जाय ।

यद्विष्यन्मृतुशो देवयानं त्रिर्मानुषाः पर्यङ्गं नयन्ति ।  
 अत्रा दूष्णः प्रथमो भाग एति यज्ञं देवेभ्यः प्रतिवेदयन्नजः ॥४॥  
 होताध्वयु रावया अग्निमिन्धो आवग्राम उत्तशस्ता सुविप्रः ।  
 तेन यज्ञेन स्वयं कृतेन स्विष्टेन वक्षणा आपुण्ड्रं ॥५॥  
 यूपवस्का उत्तये यूपमादाश्चपालं ये अस्य यूपाय तक्षति ।  
 ये चादत्ते पन्नं सं भरन्त्युजो तेषामग्निमूर्तनं क्वन्तु ॥६॥  
 उप प्रागात्सुग्न्मेधायि मन्म देवा नःमाशा उपवीतपृष्ठः ।  
 अन्येनं विप्रा ऋपयो मदन्त देवानां पुष्टे चक्रमा दृचन्धुम् ॥७॥  
 यद्वाजिनो दामतन्दानवचतो या शोर्पयथा रशना रज्जुरस्य ।  
 यद्वाघास्य प्रभृतमास्ये तृणं सत्राताते अपि देवेष्वस्तु ॥८॥  
 यदश्वस्य क्रविषा गक्षिकाश रद्धा स्वरो स्वधितो रिसमरित ।  
 यद्वस्तयोः शमितुयेन्नखपु सर्वाताते अपि देवेष्वस्तु ॥९॥  
 यद्ववध्यमुदस्य पचति च आमस्य क्रविषो रन्ध्रो अस्ति ।  
 सुकृतातच्छामितारः कुर्यात्त मेघं शृतपाकं पचन्तु ॥१०॥

४ जब श्रुतिक् लोग देवोंके लिये प्राप्त करने योग्य करवडा, समय-समयपर, तीन बार अग्निके पास ले जाते हैं, सब पूषाके प्रथम भागका द्वाग देवोंके यज्ञही वासका प्रचार करके आगे जाता है ।

५ होता ( देवोंको सुकानेवाले ), अध्वर्यु ( यज्ञ-नेता ), आवया ( द्रव्यदाता ), अग्निसिद्ध ( अग्नि-प्रज्वलनकर्ता ), वाग्रग्राम ( प्रहारद्वारा सोमरस निकालनेवाले ), शक्ता ( नियमानुसार कर्मका अनुष्ठान करनेवाले ) और अज्जा ( सब यज्ञ-कार्योंके प्रधान सम्पादक ) प्रसिद्ध, अलङ्कृत और सुन्दर यज्ञ द्वारा नदियोंको पूर्ण करें ।

६ जो दूषके योग्य घृक्ष काटते हैं, जो यूप घृक्ष होते हैं, जो अश्वको बांधनेके दूषके लिये काष्ठ-मण्डप आदि तैयार करते हैं, जो अश्वके लिये पाक-पात्रका संग्रह करते हैं, हमारा संवत्स भी उन्हींका हो ।

७ हमारा मनोरथ स्वयं सिद्ध हो । मनोहर-पृष्ठ-विशिष्ट अश्व, देवोंकी आशा-पूर्तिके लिये, आवे । देवोंकी पुष्टिके लिये हम उसे अच्छी तरह बांधेंगे । मेघ-ही श्रुतिक् लोग आनन्दित हों ।

८ जिस रस्सीसे घोड़ेकी गर्दन बांधी जाती है, जिससे उसके पंर बांधे जाते हैं, जिस रस्सीसे उसका सिर बांधा जाता है, वह सब रस्सियाँ और अश्वके मुखमें डाली जानेवाली वासें देवोंके पास आवें ।

९ अश्वका जो बच्चा हो मांस मक्खी खाती है, काटने या साफ करनेके समय हथियारमें जो लग जाता है और छेदके हाथों तथा नखोंमें जो लग जाता है, वह सब देवोंके पास जाय ।

१० उदरका जो लजीर्ण अंश बाहर हो जाता है और अपक मांसका जो लेशमात्र रहता है, उसे छेदक निर्दोष करे और पवित्र मांस, देवोंके लिये, उपयोगी करके पकावे ।

यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभिगूळं निहतस्थानं धावति ।  
 मातङ्गम्यामाश्रिपमा तृणेषु देवेभ्यस्तदुशद्भ्यो रातमस्तु ॥११॥  
 ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं य ईमाहुः सुरभिनिर्दरेति ।  
 ये चावतो मांसभिक्षामुपसत एतो तेषामभिगूर्तिर्न श्ववतु ॥१२॥  
 यन्नीक्षणं मांसपन्न्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेवनानि ।  
 उष्णप्यापिधाना चरुणामंकाः सूनाः परिभूयन्त्यश्वम् ॥१३॥  
 निक्रमणं निपदनं दिवर्तनं यच्च पङ्कजीशमवतः ॥  
 यच्च पपौ यच्च घासिं जघास सर्वाताते अपि देवेष्वस्तु ॥१४॥  
 मास द्वाग्निर्वनवीह मगन्धिर्मोखा भ्राजन्त्यभिजिक्त जग्निः ।  
 इष्टं वीतमभिगूर्तं वषट्कृतं तं देवासः इतिगृभ्णन्त्यश्वम् ॥१५॥  
 ददश्वाय दास उपरतृणत्यधीवासं या हिरण्यान्यस्मै ।  
 संदानमवतं पङ्कजीशं प्रिया देवेष्वत्र यामयन्ति ॥ १६ ॥  
 यत्ते सादे महसा शूकतस्य पाश्या वा कश्या वा तुतोद् ।  
 स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वाताते द्रह्यगा सूदयामि ॥१७॥

११ अश्व, अ.गमें पकाते समय दुग्धारे शरीरसे जो रस निकलता और जो रस शूलमें आवद्ध रहता है, वह महीमें गिरकर सिनकोमें मिल न जाय । देवता लोग लालायित हुए हैं, उन्हें सारा हवि प्रदान किया जाय ।

१२ जो लोग चारो ओरसे अश्वका पकना देखते हैं, जो कहते हैं कि, गन्ध मनोहर है, देवोंको दो; तथा, जो मांस-भिक्षाकी अपेक्षा करते हैं, उनका संकल्प हमारा ही हो ।

१३ रस-पाचनकी परीक्षाके लिये जो काष्ठमातु लगाया जाता है, जिन पात्रोंमें रस रक्षित होता है, जिन आच्छादनोसे गभी रहता है, जिस वेतस-शाखासे अश्वका अवयव पहले चिन्हित किया जाता है और जिस कुरिकासे, चिह्ननुसार, अवयव काटे जाते हैं, सो सब अश्वका मांस प्रस्तुत करते हैं ।

१४ जहाँ अश्व गया था, जहाँ बैठे था, जहाँ लेटे था, जिससे उसके पैर बाँधे गये थे, जो उसने पिया था तथा जो घास करने खाया थी, सो सब देवोंके पास जाय ।

१५ अश्वगण, धूमगन्ध अग्न तुमसे शब्द न करा सकें, अतीव अग्नि-संयोगसे प्रसन्न धगन्धि मांस कम्पित न हो । यज्ञके लिये अक्षप्रेत और हवनके लिये लाया हुआ, समुज्जमें प्रदत्त और वषट्कार द्वारा द्योभित अश्व देवता ग्रहण करें ।

१६ जिस आच्छादन योग्य वस्त्रसे अश्वको आच्छादित किया जाता है, उसको जो सोनेके गहने दिये जाते हैं, जिससे उसका सिर और पैर बाँधे जाते हैं, सो सब देवोंके लिये प्रिय है । श्रुतिवक् लोग देवोंको यह सब प्रदान करते हैं ।

१७ अश्व; जोरसे नासाध्वनि करते हुए गमन करनेपर चाबुके आघात अथवा बगलके आघातसे जो व्यथा उत्पन्न हुई थी, सो सब व्यथाको, मैं, उसी प्रकार मन्त्र द्वारा आहुतिमें देता हूँ, जैसे स्रुक् द्वारा हव्य दिया जाता है ।

वतुस्त्रिशद्वाजिनो देववन्धोर्वङ्गीरश्वस्य स्वधितिः समेति ।  
 अच्छिद्वा गात्रा वयुना कृणोत परुषस्वरजुधुष्या विशस्त ॥ १८ ॥  
 एकस्त्वष्टरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथा ऋतुः ।  
 या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डानां प्रजुहोम्यग्री ॥ १९ ॥  
 मा त्वा तपत्प्रिय आत्मापियन्तं मा स्वधितिस्तन्व आतिष्ठिपत्ते ।  
 मा ते गृध्रुर्विशस्तातिहाय छिद्रागात्राण्यसिना मिथुकः ॥ २० ॥  
 न वा उ एतन्मित्रसे नरिष्यसि देवां इदेपि पथिभिः सुगेभिः ।  
 हरी ते युक्ता पृपती अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासमस्य ॥ २१ ॥  
 सुगव्यं नो वाजोस्त्रगव्यं पुंसः पुत्रां उत विश्वापुषं रयिम् ।  
 वनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनतां हविष्मान् ॥ २२ ॥

१६३ सूक्त । अश्व देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उच्यन्तसमुद्रादुत वा पुरीपात् ।  
 श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपरतुत्यं महिजातं ते अर्चन् ॥ १ ॥

१८ देवोंके बन्धु-स्वरूप अश्वकी जो घालकी देदी चौबीस हड्डियाँ हैं, उन्हें काटनेके लिये खट्ग जासा है ।  
 हे अश्वच्छेदक, ऐसा करना, जिससे अंग विच्छन्न न हो जायें । शब्द करके और देख-देखकर एक-एक हिस्सा काटो ।

१९ ऋतु ही तेजःपुत्र अश्वका एक मात्र विकासक हैं । उन्हें दो, दिन-राल, धारण करते हैं । अश्व, तुम्हारे शरीरके जिम अवयवोंको, यथासमय, काटता हूँ, इनका पिण्ड बनाकर अग्निको प्रदान करता हूँ ।

२० अश्व, तुम जिस समय देवोंके पास जाते हो, उस समय तुम्हारी प्रिय देह तुम्हें छेद न दे । तुम्हारे शरीरमें खट्ग अधिक क्षत न करे । मांस-लोलुप और अनभिज्ञ छद्मक, अस्त्र द्वारा, विभिन्न अंगोंको छोटेंकर तुम्हारे पात्र वृथा न काटे ।

२१ अश्व, तुम न तो मरते हो और न संसार तुम्हारी हिंसा करता है । तुम उत्तम मार्गसे, देवोंके पास, जाते हो । इन्द्रके हरि नामके दोनों घोड़े और मरुतोंके पृषती नामके दोनों बाहन तुम्हारे रथमें जोते जायेंगे । अश्विनी-कुमारोंके बाहन रासमके बज्रसे, तुम्हारे रथमें, कोई शीघ्रगामी अश्व जोसा जायगा ।

२२ यह अश्व, हमें, गौ और अश्वसे युक्त तथा संसार-रक्षक धन प्रदान करे, हमें पुत्र प्रदान करे । तेजस्वी अश्व, हमें पापसे बचाओ । हविर्भूत अश्व, हमें शारीरिक बल प्रदान करो ।

१ अश्व, तुम्हारा महान् जन्म सबकी स्तुतिके योग्य है । अन्तरीक्ष या जलसे प्रथम उत्पन्न होकर, यजमानके अनुग्रहके लिये, महान् शब्द करते हो । श्येन पक्षीके पक्षकी तरह तुम्हें पक्ष हैं तथा हरिणके पैदकी तरह तुम्हें पैर हैं ।

यमेन दत्तं त्रित एनमायुनिन्द्र एणं प्रथमो अघ्यतिष्ठत् ।  
 गन्धर्वो अस्य रशनामगृष्णात्सूरादश्वं वरुवो निरतप्ट ॥ २ ॥  
 अस्मि यमो अस्यादसो अर्धन्नास त्रितो गुह्येन व्रतेन ।  
 अस्मि सोमेन समया विपृक्त आगुस्ते त्रीणि दिनिवन्धनानि ॥ ३ ॥  
 त्रीणि त आहुर्दिविवन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।  
 एतेव मे वरुणश्छन्तस्यर्धन्यत्रात आहुः परमं जनित्रम् ॥ ४ ॥  
 इमा ते वाजिन्तवमार्जनानीमा शफानां सनितुनिधाना ।  
 अथा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्य या अमिरक्षन्ति गोपाः ॥ ५ ॥  
 आत्मानं ते मनसा राज्ञानामवा दिवा पतयन्तं पतङ्गम् ।  
 शिरो अपश्यं पथिभिः सुमेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि ॥ ६ ॥  
 अना ते रूपमुत्तममपश्यं जिगीषमाणमिप आ पदे गोः ।  
 यदा ते मर्तो अनुभोगमानडादिद्वग्रुष्ठ ओपधीरङ्गीगः ॥ ७ ॥  
 अनु त्वा रथो अनुमर्यो अर्वन्नु गावोनुभगः वनोनाम् ।  
 अनु व्रातासस्तवसख्यमीयुःनु देवा ममिरे दीर्यं ते ॥ ८ ॥

२ यम वा अग्निने अश्व दिवा था, त्रित या वायुने उते रथमें जाड़ा । रथपर पहले इन्द्र चढ़े और गन्धर्वों या सोमोंने डलकी कणामको घाएण किया । वसुओंने सूर्यसे अश्वको बनाया ।

३ अश्व, तुम एन, आदित्य और गोपनीय व्रजचारी दित हो । तुम सोमके साथ मिलित हो । पुरोहित लोग कहते हैं कि, एलोकेमें तुम्हारे तीन बन्धन-स्थान हैं ।

४ अश्व, एलोकेमें तुम्हारे तीन बन्धन ( वसुगण, सूर्य और एस्थान ) हैं । जल या पृथिवीमें तुम्हारे शीघ्र बन्धन ( गन्ध, स्थान और बीज ) हैं । अन्तरीक्षमें तुम्हारे तीन बन्धन ( मेघ, विद्युत् और स्तनित ) हैं । तुम्हीं बन्धन हो । पुरोहितविदोंने जिन सब स्थानोंमें तुम्हारे परम जन्मका निर्देश किया है, वह तुम हमें बताते हो ।

५ अश्व, मैंने देखा है, ये सब स्थान तुम्हारे अंग-शोधक हैं । जिस समय तुम यज्ञोंका भोजन करते हो, उस समय तुम्हारा पद-चिह्न यहाँ पड़ता है । तुम्हारी जो कलप्रद द्रव्या ( लगान ) सत्यमृत रक्षको रक्षा करती है, उसे भी यहाँ देखा है ।

६ अश्व, दूरसे ही, मनके द्वारा, मैंने तुम्हारे शरीरको पहचाना है । तुम नीचेसे, अन्तरीक्ष-मागमें, सूर्यमें, जाते हो । मैंने देखा है, तुम्हारा तिर घूळि-युग्म, छलकर, मागसे शीघ्र गतिते, क्रमशः ऊपर उठता है ।

७ मैं देखता हूँ, तुम्हारा उत्कृष्ट रूप पृथिवीपर, चारों ओर, अन्नके लिये आता है । अश्व, जिस समय मनुष्य भोग लेकर तुम्हारे पास जाता है, उस समय तुम प्रास-योग्य तृण आदिका रक्षण करते हो ।

८ अश्व, तुम्हारे पीछे-पीछे अश्व जाता है, मनुष्य तुम्हारे पीछे जाता है, स्त्रियोंका सौभाग्य तुम्हारे पीछे जाता है । दूसरे अश्वोंने तुम्हारा अनुगमन करके भैत्रो प्रास की है । देव लोग तुम्हारे वीर-कर्मकी प्रशंसा करते हैं ।

हिरण्यशृङ्गो यो अस्य पादा मनोजवा अवर इन्द्र आसीत् ।  
 देवा इदस्य हविरद्यमाद्यन्यो अर्वन्तं प्रथमो अश्रयतिष्ठत् ॥ ९ ॥  
 ईमान्तासः सिलिकमद्यमानः सं शूणासो दिव्यासो अत्याः ।  
 हंसा इव श्रेणिशो यन्ते यदाक्षिर्दिव्यमज्जमश्रवाः ॥ १० ॥  
 तव शरीरं पतयिष्येवर्वन्तव चित्तं वात इव धजोमान् ।  
 तव शृङ्गाणि त्रिन्विता पुरुत्राण्येषु जमुंराणां चरन्ति ॥ ११ ॥  
 उपप्रागाच्छरुनं वाज्यर्वा देवद्रीनां मनसा दीध्यातः ।  
 अजः पुरो नोयते नाभिरस्यानु पश्चात् कवयो यन्तिरेभाः ॥ १२ ॥  
 उपप्रागात् परमं यत् सधस्थमर्वा अच्छापितरं मातरं च ।  
 मद्या देवाञ्जुष्टमो हि गम्या अथाशास्ते दाशुपे वार्याणि ॥ १४ ॥



१४४ सूक्त । १ से ४१ तकके विण्देवगण, ४२ के प्रथमादिके वाक् और द्वितीयादिके अप् ४३ के प्रथमादिके शक्करूप और त्रितीयादिके सोम, ४४ के अग्नि, सूर्य और वायु, ४५ के वाक्, ४६ से ४७ तक के सूर्य, ४८ के संवत्सररूप काल, ४९ के सरस्वती, ५० के साध्याय, ५१ के अग्नि और ५२ के सूर्य देवता हैं

अस्य वामस्य पलितस्य होनुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्वाः ।

तृतीयो भ्राता घृतपृच्छो अस्यात्रा पश्यं विशपति सप्तपुत्रम् ॥ १ ॥

६ अश्वका सिर सोनेका है और उसके पेर लोहेके तथा वेगयली हैं । वेगके सम्यन्वमें तो इन्द्र भी मिलते हैं । देवगण अश्वके इव्य-भक्षणके लिये आते हैं । पहले इन्द्र ही यहाँ बैठे हैं ।

१० जिस समय अश्व स्वर्गीय पथसे जाता है, उस समय वह निविद्ध-जघन-विशिष्ट होता है । पसली कमपणाई किङ्कमावाली और स्वर्गीय अश्वगण, दलके-दल, हंसोंकी तरह, पंक्ति-बद्ध होकर, उसके साथ जाते हैं ।

११ अश्व, तुम्हारा शरीर दीप्तिगामी है, तुम्हारा चित्त भी, वायुकी तरह, शीघ्रगम्य है । तुम्हारे पास पाना स्थानोंमें, नाना भावोंमें, अवस्थित तथा जंगलमें, विविध स्थानोंमें, भ्रमण करते हैं ।

१२ वह द्रुतगामी अश्व, आसक्त चित्तसे, देवोंका ध्यान करते हुए, वध-स्थानमें जाता है । उसके मित्र जागृत उनके आगे-आगे लें जाया जाता है । कवि स्तोत्रा पीछे-पीछे जाते हैं ।

१३ द्रुतगामी अश्व, पिता और माताको प्राप्त करनेके लिये, उत्कृष्ट और एक निवास-योग्य स्थानपर गम करता है । अश्व, आज खूब प्रसन्न होकर देवोंके पास जाओ, ताकि इव्यदासां वरणीय धन प्राप्त करे ।

१ सबसे सेवनीय और जगत्पालक होत्रा या सूर्यके मध्यम भ्राता या वायु सर्वत्र व्याप्त हैं । उनके तीसरे भ्राता अग्नि आहुति धारण करते हैं । माइयोंके बीच सात किरणोंसे युक्त विशपतिको देखा गया ।

सप्त शुक्लान्तर थमेकचक्रमेको अश्वो वहति सप्तनामा ।  
 त्रिनाभिक्रमजरमनर्वं यत्रेमा विश्वाभुक्माधितस्थुः ॥ २ ॥  
 इमं रथमधि ये सप्त तस्थुः सप्तचक्रं सप्त वहन्त्यश्वः ।  
 सप्त स्वसारो अभिसन्नवन्ते यत्र गवां निहिता सप्तनामा ॥ ३ ॥  
 को ददर्श प्रथमं जायमानमस्थन्वन्नं यदनस्था विभर्ति ।  
 भूम्या असुरसृगात्मा क स्वित् को विद्रांसमुपगात् प्रष्टुमेतत् ॥ ४ ॥  
 पाका पृच्छामि नसाविजानन्दवानामेना निहिता पदानि ।  
 वत्से बह्वेधि सप्ततन्तून्वितजिरे कवय सोतवा उ ॥ ५ ॥  
 अविक्तित्वाञ्जितुपश्चिदत्र कवीन् पृच्छामि विद्वाने न विद्वान् ।  
 विद्यस्तस्तम्भ पङ्क्तिमा रजांस्यजस्य रूपे किमपि स्वित्देकम् ॥ ६ ॥  
 इह ब्रवीतु य ईमङ्ग वेदास्य वामस्य निहितं पदं वेः ।  
 शीर्ष्णः क्षोरं दुहते गाधो अस्य वत्रिं वसाना उदकं पदापुः ॥ ७ ॥  
 मातापितरसृत् आ वभाज धोट्यग्रे मनसा संहि जग्मे ।  
 सा बीभत्सुर्गर्भरसा निविद्धा नमस्वन्त इदुपवाकमीयुः ॥ ८ ॥

२ सूर्यके पृष्ठचक्र रथमें सात घोड़े जोते गये हैं । एक ही अश्व, सात नामोंसे, रथ डोता है । चक्रकी तीन नामियाँ हैं । वे न जो कभी शिथिल होतीं, न जोर्ण होतीं । सारा संसार उनका आश्रय करता है ।

३ जो सात, सप्तचक्र रथका, अधिष्ठान करते हैं, वे ही सात अश्व हैं, वे ही इस रथको डोते हैं । सात, अगिनियाँ ( किरणें ) इस रथके सामने जाती हैं । इसमें सात गायें ( किरणें या स्वर ) हैं ।

४ प्रथम उत्पन्नको किसने देखा था—जिस समय अस्मिन्-रहिता ( प्रकृति ) ने अस्मिन्-युक्त ( संसार ) को धारण किया । पृथिवीसे प्राण और रक्त उत्पन्न हुए; परन्तु आत्मा कहाँसे उत्पन्न हुई ? विद्वान्के पास कौन इस विषयकी जिज्ञासा करने जायगा ?

५ मैं अनादी हूँ, कुछ समयमें न आनेने पृष्ठ रहा हूँ । ये सब संदिग्ध बातें, देखोंकि पास भी, रहस्यमयी हैं । एक वर्षके गोवत्स या सूर्यके वेष्टनके लिये मेवात्रियोंने जो सात सूत या सात सोम-यज्ञ पस्तुत किये, वह क्या हैं ?

६ मैं अज्ञानी हूँ । कुछ न जानकर ही ज्ञानियोंके पास जाननेकी इच्छासे पूछता हूँ । जिन्होंने इन छः लोकोंको रोक रखा है, जो जन्म-रहित रूपसे निवास करते हैं, वह क्या एक हैं ?

७ गमनशील और छन्द आदित्यका स्वरूप अतोव निगूढ़ है । वह सबके मस्तक-स्वरूप हैं । उनकी किरणें दृश्य होती तथा अति विषाक तेजसे युक्त होकर उसी प्रकार पुनः जलपान करती हैं । जो यह सब कथाएँ जानते हैं, वे कहें ।

८ माता ( पृथिवी ), पृथिके लिये, पिता या चुल्लोकमें स्थित आदित्यको अनुष्ठान द्वारा पूजती हैं । इसके पहले ही पिता, भीतर-ही-भीतर, उसके साथ संगत हुए थे । गर्भ-धारणकी इच्छासे माता गर्भरससे निविद्ध हुई थी । अनेक प्रकारके शस्य उत्पन्न करनेके लिये आपसमें बातचीत भी की थी ।

युक्ता मातासीद् रि दक्षिणाया अतिप्रदुर्भा वृजनीध्वन्ता ।  
 समामेहत्सो अनुगामपश्यद्विधिरूपं त्रिषु योजनेषु ॥ ६ ॥  
 तिस्रो मातरसीन् पितान्विश्रदेक ऊर्ध्वरूपस्यो नेमव ग्लापयन्ति ।  
 मन्त्रयन्ते दिवो अमुष्य पृथ्वे विश्वविदं वाचमविश्वमिन्द्राम् ॥ १० ॥  
 द्वादशारं नहि तज्जराय ववेति चक्रं परिध्यामृतस्य ।  
 आपुत्रा गाने मिथुनासो अत्र सप्तशतानि विंशतिश्च तस्थुः ॥ ११ ॥  
 पञ्चापाद पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्धे पुरीषिणम् ।  
 अथ मे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रं पटुर आहुर्पितम् ॥ १२ ॥  
 पञ्चारे चक्रं परिवर्तमानं तस्मिन्नातस्थुर्भुवनानि विश्वा ।  
 तस्य नाक्षरतप्यते भूरिभारः सनादेव न शीर्यते सनाभिः ॥ १३ ॥  
 सनेभिचक्रमजरं चिचानुत् उत्तानायां दशयुक्ता वहन्ति ।  
 सूर्यस्य चक्षुरजसैत्यावृतं तस्मिन्नार्पिता भुवनानि विश्वा ॥ १४ ॥

६ पिता ( ध्रुवाक ) अभिलाष-पूषणमें समर्थ दृष्टिवीका भार वहन कानेमें नियुक्त थे । गर्भभूत जलराशि मेघमालाके बीच थी । पत्स या घृष्टिजनने घण्टा क्रिया और सोन ( मेघ, वायु और किरण ) के योगसे विरव-रूपिणी गौ ( दृष्टिवी ) हुई अर्थात् दृष्टिवी सत्यात्प्राप्ति हुई ।

१० एक मात्र आदित्य तान माता ( दृष्टिवी, अन्तरिक्ष और आकाश ) और तीन पिता ( अग्नि, वायु और सूर्य ) को धारण करते हुए ऊपर अवस्थित हैं, उन्में दकावट नहीं आती । ध्रुवोक्त की पीठपर देवता लोग सूर्यके सम्बलधमें बाधकीत करते हैं । इस यातकीतको कोई नहीं जानता; परन्तु उसमें सबको बाधें रहती हैं ।

११ सत्यात्मक आदित्यका, बारह अरों खंडों ( राशियों ) से युक्त, चक्र स्वर्गके चारो ओर बार-बार भ्रमण करता और कभी भी पुराणा नहीं होता है । अग्नि, इस चक्रमें पुत्र-स्वरूप सात सौ बीस ( ३६० दिन और ३६० रात्रियाँ ) निवास करते हैं ।

१२ पाँच देवों ( ऋतुओं ) और बारह रूपों ( महीनों ) से संयुक्त आदित्य जिस समय ध्रुवोक्तके पूर्वार्धमें रहते हैं, उस समय उन्हें कोई-कोई पुरीषी या जलशायता कहते हैं । दूसरे कोई-कोई छ अरों ( ऋतुओं ) और सात चक्रों ( राशियों ) से संयुक्त रथपर घूर्णमान सूर्यको 'अर्पित' कहते हैं—जब कि, वह ध्रुवोक्तके दूसरे आधेमें रहते हैं ।

१३ नियत परिवर्तमान पाँच ऋतुओं या अरों ( खंडों ) से युक्त चक्रपर सारे भुवन विलीन हैं । इसका अक्ष प्रभूत भार-वहनमें नहीं थकता । इसकी नामि सदा समान रहती है—कभी शीर्ण नहीं होती ।

१४ समान नेमिसे संयुक्त और अजीर्ण काल-चक्र निरन्तर घूम रहा है । एक साथ दस ( पंच लोक-पाल और निषाद, आह्वय आदि पंच वण ) ऊपर मिलकर दृष्टिवीको धारण करते हैं । सूर्यका नेत्र-रूप मण्डल, घृष्टिजलसे, द्विप गवा— सारे प्राणी और जगत् भी उसमें विलीन हुए ।

\* यद्यपि ऋतु छ हैं; परन्तु हेमन्त और शिशिरको एक करके, उन दिनों, "पञ्च ऋतु" भी कहनेको परिपाटी थी । किसी-किसीके मतसे यहाँ 'पूर्वाह' और 'दूसरे आधे'का मतलब सूर्यके दक्षिणायन और उत्तरायणसे है ।



साकज्ञानां सतथमाहुरेकजं पङ्क्तिमा ऋषयो देवजा इति ।  
 तेषामिष्टानि विहितानि धामशः स्थात्रे रंजन्ते विकृतानि रूपशः ॥ १५ ॥  
 स्त्रियः सतीरतां उमे पुंस आहुः पश्यवश्चरवान्न त्रिक्वेतदन्धः ।  
 कवियः पुत्रः स ईमाचिकेत यस्ताधिजानात् स पितुः पिनासत् ॥ १६ ॥  
 अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं विश्रतो गौरुदस्यत् ।  
 साकद्रोचीकं स्विदद्धं परागात् कस्वित् सूने नहि यूथे अन्तः ॥ १७ ॥  
 अवः परेण पितरं यो अस्यानुवेद पर एनावरेण ।  
 दवीयमानः क इह प्रवोचद्रव मनः कुतो अधिप्रजातम् ॥ १८ ॥  
 ये अर्वाञ्चस्तां च पराच आहुय पराञ्चस्तां उ अवां च आहुः ।  
 इन्द्रश्च या चक्रथः सोम तानि धुरा न युका रजसो वहन्ति ॥ १९ ॥  
 द्वा लुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।  
 तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिन्नाकशीति ॥ २० ॥

१५ आदित्यकी सहजात श्रुतुओंमें सातवों (अधिक मासवालो) श्रुतु अकेलो है। अन्य छ श्रुतुएँ जोड़ी हैं, गमनशील हैं और देवोंसे उत्पन्न हैं। ये श्रुतुएँ सबही इष्ट, स्थान-भेदसे पृथक्-पृथक् स्थापित और रूप-भेदसे विविध आकृतियोंसे संयुक्त हैं। वे अपने अविष्टाताके क्रिये पारवार घूमती हैं।

१६ किणों की होकर भी पुत्र हैं। जिन्हें भाँखें हैं, वे ही यह देख सकते हैं; जिनकी दृष्टि मोटी है, वे नहीं। जो पुत्र मेवावी हैं, वही यह समझ सकते हैं। जो यह सब बातें समझ सकते हैं; वे ही पिताके पिता हैं। ॥

१७ वत्स, यजमान या अग्निका पिङ्गला भाग सामनेके पैरसे और सम्मुख-भाग पीछेके पैरसे चारण करते हुए गौ, आदित्य-रश्मि या आहुति ऊपरकी ओर जाती है। वह कहाँ जाती है? किसके लिये आगे रास्तेसे कौद आगे? कहाँ प्रसव करती है? इसके बीच प्रसव नहीं करती।

१८ जो अवःस्थित (अग्नि) लोक-पालककी ऊर्ध्वस्थित (सूर्य) के साथ और ऊर्ध्वस्थितकी अवःस्थितके साथ उपासना करते हैं, वे ही मेवावीकी तरह आचरण करते हैं। इसने यह सब बातें कही हैं? कहाँसे यह अलौकिक मन उत्पन्न हुआ है?

१९ जिन्हें विद्वान् लोग अचोमुख कहते हैं, उन्हींको ऊर्ध्वमुख भी कहते हैं और जिन्हें ऊर्ध्वमुख कहते हैं, उन्हें अचोमुख भी कहते हैं। सोम, तुमने और इन्द्रने जो मण्डलद्वय बनाया है, वह युग-युक्त अरब आदिकी तरह बिरबका भार वहन करता है। ॥

२० दो पक्षी (जीवात्मा और परमात्मा), मित्रनाके साथ, एक वृक्ष या शरीरमें रहते हैं। उनमें एक (जीवात्मा) स्वाहु पिप्पलका भक्षण करना और दूष्ण (परमात्मा) कुछ भी भक्षण (भोग) नहीं करता, केवल दृष्टा है।

॥ सूर्य-किरण, उदक-रूप गमन चारण करनेसे, स्त्री और वृद्धि-जलका सेचन करनेसे पुरुष, कहाँतो हैं। वृद्धि-क्षमके कारण किणों संसारके पिता हैं और सूर्य किणोंके पिता हैं।

५ दोनों मण्डल सूर्य और चन्द्र हैं। इनकी किणें ऊर्ध्वमुख और अचोमुख होती हैं।

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदधाभिस्वरन्ति ।  
 इतो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः समाधीरः पाकमन्त्राविवेश ॥ २१ ॥  
 यस्मिन् पृष्ठे मध्यद् सुपर्णा निदिशन्ते सुवते चाधि दिश्ये ।  
 तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वित्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद ॥ २२ ॥  
 यद्गायत्रे अधिगायत्रमाहितं त्रैष्टुभाद्वा त्रैष्टुभं निरतक्षत ।  
 यद्वा जगज्जगत्याहितं पदं य इत्तद्विदुस्ते अमृतत्वमानयुः ॥ २३ ॥  
 गायत्रेण प्रतिमिमीते अर्कमर्कण सामत्रैष्टुभेन धाकम् ।  
 वायेन वाकं द्विपदाचनुष्पदाक्षरेण मिमते सप्तवाणीः ॥ २४ ॥  
 जगता सिन्धुं दिव्यस्तभायद्रथन्तरे सूर्यं पर्यपश्यत् ।  
 गायत्रस्य समिधस्तिस्र आहुस्ततो महा प्ररिरचे महित्वा ॥ २५ ॥  
 उपहृये सुदुष्ठां धेनुमेतां सुहृतां गोधुशत दोहेनाम् ।  
 श्रेष्ठं रुवं सविता साविपः नोभीदो धमस्तदुषु प्रचीचम् ॥ २६ ॥

२१ जिनमें ( सूर्यरूप मगदलमें ) सुन्दरगाँव रहिमाँ, कर्त्तव्य-ज्ञानसे, अमृतका अंश लेकर सदा जाती हैं और जो भीर भावसे, रुद्रे भुवनोंकी रक्षा करते हैं, मेरी अपरिपक्व बुद्धि होनेपर भी मुझे, उन्हें ने, स्थापित किया । ॐ

२२ जिस ( आदित्य )-वृक्षपर जलपाही किरणें, रातको, घेछीं और संसारके ऊपर, प्रातःकालमें, क्षीति प्रकट करती हैं, विद्वान् लोग उनका फल प्रापणीय बताते हैं । जो व्यक्ति पिता ( सूर्य या परमात्मा ) को नहीं जानता, वह इस फलको नहीं प्राप्त करता ।

२३ जो पृथिवीपर अग्निका स्थान जानते हैं, जो जानते हैं कि, देवोंने, अन्तरीक्षसे, वायुको उत्पन्न किया है तथा जो ऊर्ध्वतन प्रदेशमें आदित्यका स्थान जानते हैं, वे अमृतत्व पाते हैं ।

२४ उन्होंने गायत्री मन्त्र द्वारा पूजन-मंत्रकी सृष्टि की, अवेना-मन्त्र द्वारा सामको बनाया, त्रिष्टुप् द्वारा दूध-चूच-रूप वाक्का निर्माण किया, द्विपाद और चतुष्पाद यजनके द्वारा अनुवाक-रचना की तथा अक्षर-योजना द्वारा सातों छन्दोंकी रचना की ।

२५ जगती छन्द द्वारा उन्होंने पृथ्वीमें वृष्टिको स्तम्भित कर रखा है, रथन्तर साम या सूर्य-सम्बन्धीय मन्त्रमें सूर्यको देखा है । परिशुद्ध लेंग कहते हैं कि, गायत्रीके तीन चरण हैं; इसलिये गायत्री, माहात्म्य और आज्ञास्वतामें, अन्य सबको लाँघ जाती है ।

२६ मैं इस दुग्धवती गौको बुझाता हूँ । दूध दूधनेमें निपुण व्यक्ति उसे दूता है । हरारे सोमके श्रेष्ठ भागको सविता ग्रहण करें; क्योंकि उससे उनका तेज प्रवृद्ध होगा । इसलिये मैं उन्हें बुझाता हूँ ॥

ॐ महत्त्व यह कि, आदित्यने मुझे अपने रुधिरलमें स्थान दिया ।

॥ सायणने इस श्रुतिका एक अन्य प्रकारका अर्थ किया है, जिसमें, धेनुका अर्थ मेघ और गोधुक्का वायु या आदित्य कहा गया है ।

हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाभ्यागात्  
 दुहामश्विभ्यां पयो अघ्नयेयं सानर्घतां महते सौभगाय ॥ २७ ॥  
 गौरमासेदनु वत्सं मिपन्त मूर्धानं हिङ्कृण्वतोन्मातवा उ।  
 सुक्काण घममभिवाचशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥ २८ ॥  
 अयं सुशिङ्कते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधिश्रिता।  
 सा चित्तिभिर्निहि चकार मर्त्यं विद्युद्भवन्ती प्रतिवर्धिमौहत ॥ २९ ॥  
 अनच्छये तुरगातु जीघमेजद्भुवं मध्य आपस्त्यानाम्।  
 जीवो मृतस्थ चरति स्वधाभिरमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥ ३० ॥  
 अपश्यं गोपामनिपद्यमानसा च परा च पथिमश्चरन्तम्।  
 स रुध्रोच्चोः स विपूषोर्वसान आवरीवार्तं भुवनेष्वन्तः ॥ ३१ ॥  
 य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात्।  
 स मातुर्योनां परिधीतो अन्तर्वहुप्रज्ञानिष्ठतिमाविदेश ॥ ३२ ॥  
 द्यौर्म पिता जनिता नाभिरत्र चन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्।  
 उत्तानयोश्चस्वोर्ध्वोर्निरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भमाधात् ॥ ३३ ॥

२७ घनशाली घेनु, वत्सके लिये, मन ही मन, व्यग्र होकर "हम्वा" करती हुई, आती है। यह अश्विनीकुमारोंके लिये दूध दे और महासौभाग्य-लामके लिये प्रवृद्ध हो।

२८ घेनु, नेत्र बन्द किये बल्लूके लिये, "हम्वा" शब्द करती है। बल्लूके का मस्तक चाटनेके लिये "हम्वा" रव करती है। बल्लूके ओठोंपर गान या फंन देखकर घेनु "हम्वा" रव करती तथा यथेष्ट दूध पिलाकर उसे परिपुष्ट करती है।

२९ बल्लूका, घेनुके चारो ओर घूमकर, अलग-अलग शब्द करता है और गोचर-भूमिपर गाय "हम्वा" करती है। घेनु, पशु-ज्ञान द्वारा, मनुष्योंको लज्जित करती है और द्योतमान होकर अपना रूप प्रकट करती है।

३० चञ्चल, श्वास-प्रश्वास शील और अपनी कार्य-सिद्धिमें व्यग्र जीव सोकर घरमें, अविचल भावसे, अवस्थित हुआ। मर्त्यके साथ उत्पन्न मर्त्यका अमर जीव स्वधा भक्षण करता हुआ सदा विहरण करता है।

३१ मैं हन रक्षक और प्रसन्न आदित्यको अन्तरीक्षमें आते-जाते देखता हूँ। सर्वत्रगामिनी और सहगामिनी त्रिरण-मालासे आच्छादित होकर भुवनोंमें बार-बार आते-जाते हैं।

३२ जिसने गर्भ किया है, वह भी उसका तत्त्व नहीं जानता। जिसने उसको देखा है, वह उसके पास भी कुछ है। मातृ-योनिके बीच वेष्टित होकर वह गर्भ बहुत सन्तानवान् होता और पाप-लिप्त होता है।

३३ स्वर्ग मेरा पालक और जनक है, पृथिवीको नाभि मेरा मित्र है और यह त्रिस्तुत पृथिवी मेरी माता है। उच्च पात्र-द्वय ( आकाश और पृथिवी ) के बीच योनि ( अन्तरीक्ष ) है। वहाँ पिता ( धु ) दूरस्थिता ( पृथिवी ) का गर्भ उत्पादन करता है।

पृच्छामि त्वा परमन्तं पृथिव्याः पृच्छामि यत्र भुवनस्य नाभिः ।  
 पृच्छामि त्वा वृष्णो अश्वस्य रेतः पृच्छ मि वाचः परमं व्योम ॥ ३४ ॥  
 इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।  
 अयं सोमो वृष्णा अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ॥ ३५ ॥  
 सप्तार्धगर्भा भुवनस्य रेतो विष्णोस्तिष्ठन्ति प्रदिशा विधर्मणि ।  
 ते धीतिभिर्मनसा ते विपश्चितः पर्वा भुवः परिभवन्ति विश्वतः ॥ ३६ ॥  
 न विजानांम यदिदमस्मि निरयः सन्नद्धो मनसा चरामि ।  
 यदा मागन प्रथमजा व्रतस्यादिष्टाक्षो अश्रुवे भागमस्याः ॥ ३७ ॥  
 अषाढः प्रडोत स्वधया गृभानोमर्त्योमर्त्येना सयानिः ।  
 ता शश्वन्ता विपूजिता विद्यन्तान्यन्यं चिक्युणं निचिक्युरन्यम् ॥ ३८ ॥  
 ऋचो अक्षरे परमे व्यामन्यस्मिन्देवा आर्धादृश्वे निषेदुः ।  
 यस्तन्न वेद किमुवा काप्यात य इत्तिष्ठिदुस्त इमे समासते ॥ ३९ ॥

३४ मैं तुमसे पूछता हूँ, पृथिवीका अन्त कहाँ है ? मैं तुमसे पूछता हूँ, संसारकी नाभि ( उत्पत्ति-स्थान ) कहाँ है ? मैं तुमसे पूछता हूँ, मेघन-समर्थ अश्वका रेत क्या है ? मैं तुमसे पूछता हूँ, समस्त वाक्योंका परम स्थान कहाँ है ?

३५ यह वेद ही पृथिवीका अन्त है, यह यज्ञ ही संसारकी नाभि है, यह सोम ही मेघन-समर्थ अश्वका रेत है और यह ब्रह्मा या ऋत्विक् वाक्यका परम स्थान है ।

३६ सात किरणें आगे वर्षतक गर्भ धारण या वृष्टिको उत्पन्न करके तथा संसारमें रेतः-स्वरूप या वृष्टि-वान द्वारा जगतका सारभूत होकर विष्णु या आदित्यके कार्यमें निर्युक्त हैं । वह ज्ञाता और सर्पतंगामी हैं । वह प्रज्ञा द्वारा, भीतर-ही-भीतर, सारे जगत्को व्याप्त किये हुए हैं ।

३७ मैं यह हूँ कि, नहीं—मैं नहीं जानता; क्योंकि मैं मृदु-चित्त हूँ, अच्छी तरह आबद्ध होकर विश्वसचित्त रहता हूँ । जिस समय ज्ञानका प्रथम उन्मेष होता है, उसी समय मैं वाक्यका अधः समझ सकता हूँ ।

३८ नित्य, अनित्यके साथ, एक स्थानपर, रहना है; अन्नमय शरीर प्राप्त कर वह कभी अघोरेण और कभी कद्रुर्बदेणमें जाता है । वह सदा एक साथ रहते हैं, इस संसारमें स्वयं एक साथ जाते हैं; परलोकमें भी, सब स्थानोंपर, एक साथ जाते हैं । संसार इनमें एनको ( अनित्यको ) पहचान सकता है—दूसरे ( आत्मा ) को नहीं ।

३९ सारे देवता महाकाशके समान मन्त्राक्षरोंपर उपवेशन किये हुए हैं—इस बातको जो नहीं जानता, वह क्यासे क्या करेगा ? इस बातको जो जानता है, वह सुखसे रहता है ।

सुयवसाङ्गवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम ।  
 अद्वि तृणमञ्जये विश्वदानो पिव शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥४०॥  
 गौरीमिमांशु सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी ।  
 अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥४१॥  
 तस्याः समुद्रा अधिचिक्षरन्ति तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ।  
 ततः क्षरत्यक्षरन्तद्विश्वमुपजीवति ॥४२॥  
 शकप्रयं धूममाशुदृश्यं द्रिषूवता पर एना वरेण ।  
 उक्षाण पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमं न्यासन् ॥४३॥  
 अयः कैशिन ऋतुथा चित्रक्षणे सवत्सरे अपन एक एषाम् ।  
 विश्वमेको अचिचरते श्रुचोभिर्धाजिरेकस्य ददृशे न रूपम् ॥४४॥  
 चक्षारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ग्राह्यगा ये मनोपिणः ।  
 गुडा व्रीणि निहितानेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥४५॥

४० अहमनीया गौ ! शोभन वस्त्र, वृग आदिका भक्षण करो और यथेष्ट दुग्धवती बनो । ऐसा करनेपर हम भी प्रभूत बनवाले हो जायेंगे । सदा वृग चरो और सर्वत्र घूमते हुए निर्मल जलका पान करो ।

४१ मेघ-ननाद-रूपिणी और अन्तरीक्ष-विहारिणी वाक्, दृष्टि-जलकी सृष्टि करते हुए, शब्द करती है । वह कभी एकपदी, कभी द्विपदी, कभी चतुष्पदी, कभी अष्टपदी और कभी नवपदी होता है । कभी-कभी तो सहस्राक्षर-परिमिता होकर, अन्तरीक्षके ऊपर स्थित होकर, शब्द करती है । ॥

४२ उसके पाससे सारे मेघ बपा करते हैं, उसीसे चारों दिशाओंमें आश्रित भूतोंकी रक्षा होती है । उसीसे जल उत्पन्न होता और जलसे सारे जीव प्राण धारण करते हैं ।

४३ मैंने पास ही खड़े गोबरसे उत्पन्न धूमका देखा । चारों दिशाओंमें व्याप्त निरुद्ध धूमके बाद अग्निको देखा । घोर या श्रुतिवत् लोग शुक्ल-वर्ण वृष या फलशुक्ता सोमका पाक करते हैं । उनका यही प्रथम अनुष्ठान है ।

४४ केश-युक्त तीन व्याक्त ( अग्नि, अद्वि, वायु ) वर्षके बीच, ययातमय, भूमिका परिदृशन करते हैं । उनमें एक जन पृथ्वीका क्षारकम करते हैं, दूसरे अपने कार्य द्वारा पारदर्शन करते हैं और तीसरेका रूप नहीं देखा जाता, केवल गति देखी जाती है ।

४५ वाक् चार प्रकारकी है । मेधावी योगी उसे जानते हैं । उसमें तीन गुहायें निहित हैं, प्रकट नहीं हैं । चौथे प्रकार की वाक् मनुष्य बोलते हैं । x

॥ केवल मेघमें रहनेपर एकपदा, मेघ और अन्तरीक्षमें द्विपदी, चारों दिशाओंमें चतुष्पदी और चतुर्दक्ष तथा चतुष्कोणमें रहनेपर अष्टपदी एवं इनके साथ ऊर्ध्व दिशाको मिलनेपर नवपदी नाम पड़ता है ।

x अग्नि, कल्प, व्याहण, लौकिक या परा, परमन्ती, मध्यमा और वेदरो आदि चार वाक् हैं ।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सृपर्णी गरुत्मान् ।  
 एकं सवित्रा बहुधा वदन् यज्ञं यमं मतरिश्वानम हुः ॥४६॥  
 कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णी अपोवसाना दिवमुत्पतन्ति ।  
 त आब्रवृन्तन्मदगाहनस्यादिद्धृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥४७॥  
 द्वादश प्रथयश्चक्रेकं त्रीणि नमयानि क उतश्चिकेत ।  
 तस्मिन्भ्माकं त्रिशतं न शङ्कोर्पिताः यष्टिर्न चलाचलासः ॥४८॥  
 यस्ने स्वनः शशयो यो मरोभूर्यत विश्वा पुष्यसि वार्याणि ।  
 यो रत्नया वसुविद्यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः ॥४९॥  
 यज्ञेन यज्ञप्रयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।  
 ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वं साध्याः सन्ति देवाः ॥५०॥  
 समानमेतदुदकमुच्चैत्यत्र चाहमिः ।  
 भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वन्त्यग्रयः ॥५१॥

४६ मेघ-भी लोग इन अद्वितीयको इन्द्र, मित्र, वरुण और अग्नि कहा करते हैं। यह स्वर्गीय, पक्षवाली ( गरुड ) और सन्दर गमनवाले हैं। यह एक हैं, तो भी इन्हें अनेक कहा गया है। इन्हें अग्नि, यम और जातरिश्वा कहा जाता है।

४७ सन्दर गतिवाली और जल-धारिणी सूर्य-किरणें कृष्णवर्ण और नियत-गति मेघको जलपूर्ण करते हुए घुलोकमें गमन करते हैं। वह वृष्टिके स्थानसे नीचे आती हैं और पृथिवीको जलसे, अच्छी तरह, भिगोती हैं।

४८ बारह परिविश्वी ( राक्षसी ), एक चन्द्र ( वर्ष ) और तीन नाभियाँ हैं। वह बात कौन जानता है ? इस चन्द्र ( वर्ष ) में तीन सौ सा ठग्न या खूटे हैं।

४९ सरस्वती, तुम्हारे शरीरमें रहनेवाला जो गुण संसारके सृष्टका कारण है, जिससे सारे धरणीय चीजोंकी रक्षा करती हो, जो गुण बहुलताका आवार है, जो समस्त धन प्राप्त किये हुए है और जो कल्याणकारी है, इस समय हमारे धामके लिये उसे प्रकट करो।

५० देवों वा यज्ञमानोंने यज्ञ या अग्नि द्वारा यज्ञ किया है; क्योंकि वही प्रथम धर्म है। वह माहात्म्य आकाशमें एकत्र है, जहाँ पहलेसे ही साधनीय देवता हैं।

५१ जल एक ही तरहका है; कभी ऊपर और कभी नीचे जाता-आता है। प्रसन्नता-दाता मेघ भूमिको प्रसन्न करते हैं। अग्नि घुलोकको प्रसन्न करते हैं।

दिव्यं सुपर्णं वायसं बृहन्तमपां गर्भं दर्शन्तमोषधीनाम् ।

अभीपतो वृष्टिमिरुतर्पयन्त सरस्वन्तमक्षे जोहवीमि ॥५२॥



२३ अनुवाक । १६५ सूक्त । इन्द्र देवता । यहाँ १६१ सूक्तों के ऋषि अगस्त्य हैं । त्रिष्टुप् छन्द ।

इस सूक्त में इन्द्र, मरुत और अगस्त्य की बातचीत है । इसका स्रोत पाँचवें, सातवें और नवें मंत्र मरुत के वचन हैं; इसलिये उनके ऋषि मरुत हैं । तीनके ऋषि अगस्त्य हैं । अदशिष्टके ऋषि इन्द्र हैं ।

कथा शुभा सचयसः सनीलाः समान्या मरुतः संमिमिक्षुः ।

कथा मतो कुत पतास एतेर्चन्ति शुभं वृषणो वसूया ॥१॥

कस्य ब्रह्माण जुनुषुर्यवानः कां अधरे मरुत आवर्त ।

श्येनां ह्य भजतो अन्तरिक्षे केन महामनसा रीरमाम ॥२॥

कुतस्त्वामिन्द्र माहिनः सन्नेको याति सन्पते किन्त इत्या ।

संपृच्छसे समगणः शुमानैर्वाचस्त्वन्नो हरित्रो यन्त अस्मे ॥३॥

ब्रह्मा ण मे मनयः शंसुतासः शुष्म इयति प्रभृतो मे अद्रिः ।

आशासते प्रतिहयन्त्युक्थेमा हरो वहन्तानो अच्छ ॥४॥

५२ सूर्यदेव स्वर्गीय स्रग्दर गाँववाले, गमनशील, प्रकाण्ड, जलके गर्भोत्पन्न और ओषधियोंके प्रकाशक हैं । वह वृष्टि द्वारा जलपायको वृष्ट और नदीको पालित करते हैं । रक्षाके लिये उन्हें बुलाता हूँ । ३

१ (इन्द्र) समानवयस्क और एक स्थान-निवासी मरुत लोग सर्व-साधारणकी दुर्ज्ञेय शोभासे युक्त होकर पृथिवीपर सिञ्चन करते हैं । मनमें क्या सोचकर वे, किस देशसे, आये हैं ? आकर जल-पर्वत-गगन, धन-लाभको इच्छासे, क्या बलकी अर्थना करते हैं ?

२ समानवयस्क मरुद्गण किसका हव्य ग्रहण करते हैं ? वे अन्तरीक्षचारी श्वेन पक्षीकी तरह हैं । वज्रमें उन्हें कौन हटा सकता है ? कैसे महास्तोत्र द्वारा हम उन्हें आनन्दित करें ?

३ (मरुद्गण) हे साधुपालक और पुण्य इन्द्र, तुम अकेले कहाँ जा रहे हो ? तुम क्या ऐसे ही हो ? हमारे साथ मिलकर तुमने ठीक ही पूछा है । हरि-वाहन, हमारे लिये जो वक्तव्य है, वह भीठे बचोसे कहो ।

४ (इन्द्र) सारा हव्य मेरा है; सारी स्तुति-गाँ मेरे लिये खल्ल है; प्रस्तुत सोम मेरा है । मेरा मजबूत वज्र, केँके जानेपर, अव्यर्थ होना है । यजमान लोग मेरी ही प्रार्थना करते हैं, ऋद्ध-मंत्र मुझे ही चाहते हैं । वे हरि नामके दोनों ओर, हव्य-लाभके लिये, मुझे डोने हैं ।

३ इस सूक्तके सारे मंत्र अथर्वमें भी पाये जाते हैं; इसलिये बहुजोंका मत है कि, यह सूक्त अथर्ववेदके बननेके अनन्तर रचा गया है ।

अतो दयमन्तमेभिर्युजानाः स्वशत्रुभिस्तन्वः शम्भमानाः ।  
 महोभिरेतां उपगुडमहे निवन्द् स्वधामनु हि नो बभूथ ॥५॥  
 क स्यावो मरुतः स्वधाम्नीयन्मामेकं समप्रत्ताहि हत्ये ।  
 अहं ह्यग्रसंविपन्नुविष्मान्विश्रस्य शत्रोरनमं वधस्तैः ॥६॥  
 भूगि चकथ युज्येभिरस्मे समानेभिर्वृषभ पौंस्यभिः ।  
 भूगोणि हि कृणवामा शधिष्ठेन्द्र कचा मरुतो यद्वशाम ॥७॥  
 वधो वृत्रं मरुत इन्द्रियेण स्वेन भागेन तविषो बभूवान् ।  
 अहमेता मनवे विश्वश्चन्द्राः सुगा अपश्चकर वज्रबाहुः ॥८॥  
 अनुत्तमा ते मघयन्नकिर्न न त्वायाँ अस्ति देवता विदानः ।  
 न जायमानो नशने न जातो यानि करिष्ण कृणुहि प्रवृद्ध ॥९॥  
 एकस्य चिन्मे विम्बस्त्योजो या नु दधृवान् कृणवै मनीषा ।  
 अहं ह्यग्रे मरुतो विदानो यानि च्यवमिन्द्र इदीश एयाम् ॥१०॥  
 अमन्दन्मा मरुतः स्तोमो अत्र यन्मे नरः श्रुत्यं ब्रह्मचक्र ।  
 इन्द्राय वृष्णं सुमन्वाय मह्यं सख्ये सखायस्तन्वे तनूभिः ॥११॥

५ ( मरुद्गण ) इन्दीलिये हम महासज्जे रापने शरीरको अलङ्कृत करके, निकट-तों और बली अश्वोंसे युक्त होकर, बलस्थानमें जानेके लिये शीघ्र ही तयार हुए हैं । तुम रेत या बलके साथ हमारे साथ ही रहो ।

६ ( इन्द्र ) मरुतो, अहं या वृत्रासुरके वधके समय मेरे साथ रहनेका तुम्हारा वंग कहाँ था ? मैं उस बलिष्ठ माहात्म्यवाला हूँ, इसलिये मैंने सारे शत्रुओंको, वध द्वारा, परास्त किया है ।

७ ( मरुद्गण ) अभीष्ट-वर्षों इन्द्र, हम समान पौरुषशाले हैं । हमारे साथ मिलकर तुमने बहुत कुछ किया है । बलवत्तम इन्द्र, हमने भी बहुत काम किया है । हम मरुत हैं, इसलिये कार्य द्वारा हम वृष्टि आदिकी कामना करते हैं ।

८ ( इन्द्र ) मरुतो, क्रोधके समय विशाल-पराक्रमी बनकर, अपने बाहुबलसे, वृत्रको पराजित किया है । मैं वज्र-बाहु हूँ । मैं मनुष्यके लिये सबकी प्रसन्नता-दायक सुन्दर वृष्टि किया करता हूँ ।

९ ( मरुद्गण ) इन्द्र, तुम्हारा समी कुछ उत्तम है । तुम्हारे समान कोई देवता विद्वान् नहीं है । अतीव बलशाली इन्द्र, तुमने जो कर्त्तव्य कर्मोंको किया है, उन्हें न तो कोई पहले कर सका, न आगे कर सकता है ।

१० ( इन्द्र ) मैं अकेला हूँ । मेरा ही बल सर्वत्र व्याप्त हो; मैं जो चाहूँ, प्राप्त कर डालूँ; क्योंकि, मरुतो, मैं उस और विद्वान् हूँ एवं जिन धनोंका मुझे पता है, उनका मैं ही अधीश्वर हूँ ।

११ मरुतो, इस सम्बन्धमें तुमने मेरा जो प्रसिद्ध स्तोत्र किया है, वह मुझे आनन्दित करता है । मैं अभीष्टफल-दाता, ऐश्वर्यशाली, विभिन्न रूपोंवाला और तुम्हारा योग्य मित्र हूँ ।



एवेदेते प्रति मा रोचमाना अनेद्यः श्रव एषो दधानाः ।  
 संचक्ष्या मरुतश्चन्द्रवर्णा अञ्जान्त मे छदयाथा च नूनम् ॥१२॥  
 कोन्वत्र मरुतो मामहे वः प्रायातन मखो रच्छा सखायः ।  
 मन्मानि चित्रा अपिवातयन्त एषां भूत जवेदाम ऋतानाम् ॥१३॥  
 आ यद्दु वस्याद् वसे न कारुस्मश्चक्रे मान्यस्य मेधा ।  
 ओषुवर्त मरुतो विप्रमच्छेमा ब्रह्माण जरिता धो अर्चत् ॥१४॥  
 एषः वः स्तोमो मरुत इयं गोमार्न्दार्यस्य मान्यस्य कारोः ।  
 एषा यासोष्टः तन्वे वयां विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम् ॥१५॥

१२ मरुतो, तुम सोनेके रंगके हो । मेरे लिये प्रसन्न होकर दूराय कीर्ति और अन्न धारण करते हुए मुझे अच्छी तरहसे प्रकाश और तेज द्वारा आच्छादित किया है । मुझे आच्छादित करो ।

१३ ( अगस्त्य ) मरुतो, कौन मनुष्य तुम्हारी पूजा करता है ? हम सबके मित्र हो । तुम यजमानके सामने आओ । मरुतो, तुम मनोहर धनकी प्राप्तिके उपाय-भूत बनो और सत्य कर्मको जानो ।

१४ मरुतो, स्तोत्र द्वारा परिचरण-समर्थ, स्तुति-कुशल और मान्य श्रुतिवृद्धि बुद्धि, तुम्हारी सेवाके लिये, हमारे सामने, आती है । मरुतो, मैं मेवावो हूँ । मेरे सामने आओ । तुम्हारे प्रसिद्ध कर्मको लक्ष्य कर स्तोता तुम्हारा पूजन करता है ।

१५ मरुतो, यह स्तोत्र और यह स्तुति माननीय और प्रसन्नतादायक है अथवा मान्य मान्दर्य कर्मकी है । यह शरीर-बुद्धिके लिये तुम्हारे पास जाती है । हम अन्न, बल और दीर्घ आयु अथवा जय, शील और दान पावें ।

## तृतीय अध्याय समाप्त



## चतुर्थ अध्याय



१६६ सूक्त । मरुद्गण देवता । अगस्त्य ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

तन्नु वोचाम रमसाय जग्मने पूर्वं मृदित्वं वृषभस्य केतवे ।

एधेव यामन्मरुःस्तुत्रिष्वणो युधेन शक्रास्तत्रिषणि कर्तन ॥१॥

नित्यं न सूनुं मधुभिभ्रत उपकाङ्क्षन्ति क्रोडा विदथपु घृध्वयः ।

नक्षन्ति रुद्राः अवसा नमस्त्वेन न मर्धन्त रुतवसो हविष्कृतम् ॥२॥

यस्मा ऊमासो भमृता अरास्त रायस्पाप च हविषा वदशुषे ।

उक्षन्त्यस्मे मरुतो हिता इव पुरु रजां स पयसा मयं भुवः ॥३॥

वा ये रजांसि तत्रिषीभिरव्यत प्र च एत्रासः स्वयत्तालो अभ्रजन् ।

भयन्ते विश्वा भुवनानि हर्म्यां चित्रा वो यामः प्रयतास्त्वृष्टिषु ॥४॥

यस्त्वेषयामा नश्यन्त पर्वतान्द्रवो वा धृष्टं नर्वा अच्युच्यवः ।

विश्वो वो अजमभयते वनस्पता रथीयन्ताव मृजिहीत आपधिः ॥५॥

१ कल-वर्षक यज्ञके सप्तम्यादनके क्रि०, मरुदोंके साँझ जाकर उपस्थित होनेके क्रि०, उनके प्रसिद्ध पूर्वतन माहा-  
स्त्वको कहता हूँ । हे विशाल ध्वनिते युक्त और अथ कर्षोम रुमर्थ मरुद्गण, तुम्हारे यज्ञ-स्थलमें जानेके लिये प्रस्तुत  
होनेपर ऐसे समिया तेजसे आवृत्त हातो ह, घेते हो तुम लोग युद्धमें जानेके लिये प्रभूत बल धारण करो ।

२ औरस पुत्रको तरह प्रिय-मधुर हृद्य धारण करके ध्वजगकारी मरुद्गण, प्रसन्न चित्तसे, यज्ञमें क्रीड़ा  
करते हैं । विनीत यजमानको रक्षाके लिये रुद्रगण मिले हैं । उनके बल उनके अवीन हैं, वे कभी यजमानको क्लेश  
नहीं देते ।

३ जिस हविर्ज्ञाता यजमानको आवृत्तिसे प्रसन्न होकर सर्व-रक्षक, अमर और सुखोत्पादक मरुद्गण यथेष्ट भन  
देते हैं, उसी यजमानके हितकारी सहायों तरह तुम लोग समस्त सत्कारको अच्छी तरह साँचते हो ।

४ मरुदों, तुम्हारे आवरण, अपने बलसे, सारे संभरका भ्रमण करते हैं; वे अपने ही रथसे युक्त होकर जाते हैं ।  
तुम्हारा यात्रा अत्यन्त आश्चर्यमयी है । इधियार सठानपर जेत लाग संसारमें डरते हैं, घेते हो सारे भुवन और अद्भुत-  
कार्य, तुम्हारे यात्रा-काक्रमें, बरती हैं ।

५ मरुदोंका गमन अत्यन्त प्रदीप्त है । वे जिस समय गिरि-गङ्गाओंको ध्वनित करते हैं अथवा मनुष्योंके हितके  
लिये अन्तरीक्षके ऊपरी भागमें चढ़ते हैं, उस समय उनके पंखके सारे धनस्पास, ढरके मोरे, व्यकुल हो जाते और रथा-  
कड़ा स्त्रीकी तरह ओपधियाँ एक स्थानसे दूसरे स्थानपर चली जाती हैं ।

यूयं न उग्रा मरुतः सुचेननारिष्टग्रामाः सुमतिं पिपर्तन ।  
 यत्ना वो दिद्युद्रदति क्रिविदसी रिणाति एश्वः सुधितेष चर्हणा ॥६॥  
 प्रस्कम्भदेष्णा अनवध्न राघसोलातृणासो विदथेषु सुष्टुताः ।  
 अर्चन्त्यर्क मंदिरस्य पीतये विदुर्द्यौःस्पृ प्रथमानि पौंस्या ॥७॥  
 शतभुजिभिस्तममिहू तेरघ त पूर्भोरक्षता मरुतो यमावत ,  
 जन यमुग्रास्तवरो विरःपशनाः पाथना शंसात्तनयस्य पुष्टिषु ॥८॥  
 विश्वानि भद्रा मरुतो रयेषु वो मिथस्पृष्टये । तपिपरायाहिता ।  
 अंसेष्वावः प्रपथेषु खादगोक्षोचश्चका समया विधावृते ॥९॥  
 भूरीणि भद्रा नर्गणु व ह्युपक्षःसु रुक्मा रमसासो अजयः ।  
 अंसेष्वेताः पावु भुरा अधिवयो न पक्षन्त्यनुश्रियो धिरो ॥१०॥  
 महा तो महा वेम्गो भूत ो दूद्वगो ये दिव्या इव स्तुमिः ।  
 मन्द्राः सुउह्वः स्वरसार आसामः संमिशला इन्द्रं मरुतः परिपुमः ॥११॥  
 तद्वः सुजाता मरुतो मर्त्येन दीर्घं वो दानम दतेरिव व्रतम् ।  
 इन्द्रश्चन त्यजसा विहूणा ते तज्जनय यस्मै सुकृते अगाधवम् ॥१२॥

६ उग्र मरुतो, सुदुर्दके साथ, तुम लोग अहंसा होकर, हमें सुबुद्धि प्रदान करो । जिस समय तुम्हारे क्षेपणशील और द्रुत-विशिष्ट विद्युत् दान करते हैं, उस समय, सुलक्षित हेति ( अलज-विशेष ) की तरह, पशुओंको नष्ट करते हैं ।

७ जिनका दान अविश्रुत है, जिनका घन अंतरहित है, जिनका शत्रु-वध पर्याप्त है और जिनकी स्तुति सगीत है, वे मरुद्गण, सोमके पानके लिये, स्तुति गाते हैं; क्योंकि वे ही लोग इन्द्रकी प्रथम वीर-कृति जानते हैं ।

८ मरुतो, तुमने जिस व्यक्तिओ कुटिल-स्वभाव पापसे बचाया है, हे उग्र और बलवान् मरुद्गण, तुमने जिस मनुष्यको पुत्रादि-पुष्टि-साधन द्वारा, निन्दसे, बचाया है, उसे अलंकार योग्य वस्तुओं द्वारा प्रतिपालित करो ।

९ मरुतो, सारे कल्याणवाही पदार्थ तुम्हारे गंधपर स्थापित हैं । तुम्हारे स्कन्धदेशमें परस्पर स्पर्द्धावाले आयुध हैं । तुम्हारे लिये, विश्राम-स्थानपर, खाद्य तैयार है । तुम्हारे सारे चक्र अक्षके पास घूमते हैं ।

१० मनुष्योंकी हिमकाग्निी भुजाओंपर मरुद्गण अनन्त कल्याण-साधक द्रव्य धारण करते हैं, वक्षःस्थलमें काशित-युक्त और सुन्दर-रूप-युक्त सोनेका भूषण धारण करते हैं । स्कन्ध-देशमें श्वे वर्णकी लाला धारण करते हैं । वज्र-सदृश आयुधपर क्षुद्र धारण करते हैं । जैसे पक्षियाँ पक्ष धारण करती हैं, वैसे ही मरुद्गण श्वे धारण करते हैं ।

११ जो मरुद्गण महान्, मदिमान्वित, विभूतिमन् और आकाशस्थ नक्षत्रोंकी तरह दूरमें प्रकाशित हैं, जो प्रसन्न हैं, जिनकी जीभ सुन्दर है, जिनके मुखसे शब्द होता है, जो इन्द्रके सहायक हैं और जो स्तुति-युक्त हैं, वे हमारे वक्ष-स्थलमें आधे ।

१२ सुजात मरुद्गण, तुम्हारा माहात्म्य प्रसिद्ध है और तुम्हारा दान अद्वितीय व्रतकी तरह अविच्छिन्न है । तुम जिस पुण्यात्मा पजमानको दान देते हो, उसके प्रति इन्द्र कुटिलता नहीं करते ।

तद्गो जा मेऽर्घं मरुतः परे युगे पुरु यच्छसममृतास आदत ।  
 अर्वाधया मनवे श्रुष्टिमाव्या साकं नरो दक्षनैराचिकिन्निरे ॥१३॥  
 देन दर्घं मरुतः शुश्रूषाम धुष्मफेन परीणसा हुरासः ।  
 मायत्तननन् वृजने जनास एभिर्यज्ञं निस्तदमी ष्टमश्याम् ॥१४॥  
 एष घः स्तोमो ररुत इयं गीर्मान्दर्यस्य मान्यस्य कारोः ।  
 एषा यासोष्ट तन्वे वयां विद्यामेपं वृजन जीरदानुम् ॥१५॥



१६७ सूक्त । १ म मंत्रके देवता इन्द्र; अवशिष्टके मरुत् । त्रिष्टुप् छन्द ।  
 सहस्रन्त इन्द्रोतयो नः रुहस्त्राभिपो हरिवो गूर्तवमा ।  
 सहस्रं शयो दादयध्यै रुहस्त्रिण उप नो यन्तु वाजाः ॥१॥  
 आ नोबोभिर्मदता यन्तु च्छा ज्येष्ठभिर्वा बृहद्विषैः सुमायाः ।  
 अथ यदेषां नियुतः परमाः समुद्रस्य विद्धनयन्त पारे ॥२॥  
 मिग्यक्षयेषु सुधिता घृताक्षी हिरण्यनिर्णिगुपरान ऋष्टिः ।  
 गुडाचरन्ती मनुषो न दोषाः सभावती विदध्येव सं वाक् ॥३॥

१३ मरुद्गण, तुम्हारी मित्रता प्रसिद्ध और विरक्षायिनी है । अमर होकर तुम लोग हमारी स्तुतिकी मन्त्रों की रक्षा करते हो । अनुग्रह-पूर्वक, मनुष्योंकी स्तुतिकी रक्षा करते हुए, उनके साथ मिलकर तथा उनका नेतृत्व स्वीकार कर, कर्म द्वारा सब जान जाते हो ।

१४ देववान् मरुतो, तुम्हारे महान् आगमनपर हम दीर्घ कर्म-यज्ञको वर्द्धित करते हैं । उसके द्वारा युद्धमें, मनुष्य-विजयी होता है । इन रुह-यज्ञों द्वारा मैं तुम्हारा शुभागमन प्राप्त कर सकूँ ।

१५ मरुतो, कवि मान्य मान्दर्यका यह स्तोम तुम्हारे लिये है, यह स्तुति तुम्हारे लिये है; इच्छानुसार उसकी करीर-पुष्टिके लिये तुम्हारे पास आती है । हम भी यज्ञ, बल और दीर्घायु प्राप्त करें ।

१ इन्द्र, तुम हजारों तरहसे रक्षा करो । तुम्हारी रक्षाएँ हमारे पास आवें । हरि नामके अश्ववाले इन्द्र, तुम्हारे पास हजार तरहके अश्वरुचीय छन् हैं; वह हमारे पास आवें । इन्द्र, तुम्हारे पास हजार तरहका धन है । हमारी स्तुतिके लिये वह हमारे पास आवें । हजार चौपाये हमारे पास आवें ।

२ आश्रय देनेके लिये मरुद्गण हमारे पास आवें । सद्युद्ध मरुद्गण प्रशस्यतम और महादीर्घ-संयुक्त धनके साथ हमारे पास आवें; क्योंकि उनके नियुत नामके ऊर्ध्व अथ समुद्रके उस पार भी धन धारण करते हैं ।

३ च्यवनस्थित, जल-वर्षक और धूर्ण-वर्ण विद्युत् मेघमालाकी तरह अथवा निगूड़ स्थानमें अवस्थित मनुष्यकी भाषाकी तरह अथवा कही गयी यज्ञीय वाणीकी तरह इन मरुत्तोंके साथ मिलते हैं ।

परा शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येष मरुतो मिमिक्षुः ।  
 न रोदसी अपनुदन्त घोरा जुपन्त वृधं सख्याय देवाः ॥४॥  
 जोद्यपदीमसूर्या सचध्यै विषितस्तुका रोदसी नृनणाः ।  
 आ सूर्येव विधतो रथंगारवेपप्रतीका नभसो नेत्या ॥५॥  
 मास्थापयन्त युवति युवानः शुभे निमिश्रं विदयेषु पत्रान् ।  
 अर्को यद्वो मरुतो हविष्मान्गायद्गाथं सुतलोमो दुवश्यन् ॥६॥  
 प्रतं विवक्षि वक्ष्यो य एपां मरुतां महिमा सत्यो अस्ति ।  
 सखा यदी वृषमणा अहंयुः स्थिरा चिज्जनीवद्वते सुभागाः ॥७॥  
 दान्ति मित्रावरुणाववचाच्चयत ईमर्यमो अप्रशस्तान् ।  
 उत्तज्यवन्ते अच्युता ध्रुवाणि वावृध ईं मरुतो दातिवारः ॥८॥  
 नदीनुषो मरुतो अन्त्यरुमे आरात्ताच्चिच्छवसो अन्तमापुः ।  
 ते धृष्णुना शवसा शूशुवांसोर्णो न द्वेपो धृपता परिण्डुः ॥९॥  
 वयमध्येध्वरय प्रेष्ठा वयं इवो वोचेमहि समर्य ।  
 वर्यं पुरा महि च नो अनुद्यून्तन्न श्रुभुक्षा नरामनुष्यात् ॥१०॥

४ साधारण कोकी तरह जालिङ्गन-परायण बिजलीके साथ शुभ्रवर्ण, अतिगमनशील और अतृकृष्ट मरुद्गण मिलते हैं। भयङ्कर मरुद्गण छावः पृथिवीको नहीं हटाते। देवता लोग, मैत्रीके कारण, उनको समृद्धिका साधन करते हैं।

५ अरु (मरुतो) को अपनी पत्नी रोदसी या बिजली आलुङ्गयित केश और अनुक्त मनसे मरुतोके संगमके लिये उनकी सेवा करती है। जैसे सूर्य अश्विनीकुमारोंके रथपर चढ़े, वैसे ही प्रदीप्तावयवा रोदसी चञ्चल मरुतोके रथपर चढ़कर घोष-भाषी है।

६ पद्म आरम्भ होनेपर, कृष्टिज्ञानके लिये, तत्काल वयस्क सखी रोदसीको रथपर बैठाते हैं। बलवती रोदसी दियमानुरूप, उनके साथ मिलती है। उसी समय अर्ध-मन्त्र-युक्त, हव्यदाता और सोमाभिषेककारी वज्रमान मरुतोकी सेवा करते हुए स्तव-पाठ करता है।

७ मरुतोकी महिमा सबकी प्रशंसनीय और अनोख है। मैं उसका वर्णन करता हूँ। उनकी रोदसी वर्षणाःमिला-पिणी, अर्हकारिणी और अविनश्वरा है। यह सौभाग्यशालिनी और उत्पत्तिशैल प्रजाको धारण करती है।

८ मित्र, वरुण और अर्यमा इस यज्ञको निन्दिते-बचाते और उसके अयोग्य पद धंका विनाश करते हैं। मरुतो, तुम्हारे जल देनेका समय जब आता है, तब वह मेवोंके बीच संचित जलकी वर्षा करते हैं।

९ मरुतो, हमारे बीच किसीने भी, अत्यन्त दूरसे भी, तुम्हारे बलका अन्त नहीं पाया है। दूसरोंको परास्त करने-वाले बलके द्वारा बढ़कर, जलराशिकी तरह, अपनी शक्तिसे शत्रुओंको विजित करते हैं।

१० आज हम इन्द्रके प्रियतम होंगे, यज्ञमें उनको महिमा गायेंगे। हमने पहले इन्द्रका माहात्म्य गाया था और प्रतिदिन गाते हैं। इसलिये महान् इन्द्र मनुष्योंमें हमारे लिये अनुकूल हो।

एष वः स्तोमो मरुत इयं गीर्मान्दायस्य मान्यस्य कारोः ।

एषा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम् ॥ ११ ॥

१६८ सूक्त । मरुद्गण देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

यथायथा वः समना तुतुर्वणिधियन्धियं वो देवयाड दधिध्वे ।

आ वोर्वाचः सुविताय रोदशोर्महे ववृत्यामवसे सुवृकिभिः ॥ १ ॥

घमासो न ये स्वजाः स्वतवस इपं स्वरभिजायन्त धूतयः ।

सहस्रियासो अपां नोर्मय आसा गावो वन्यासो नोक्षणः ॥ २ ॥

सोमासो न ये सुतास्वतांशत्रो हस्तु पीतासो दुवसो नासते ।

येषामंसेषु रग्भिणोव रारमे हस्तेषु स्वादिश्च कृतिश्च सन्दधे ॥ ३ ॥

अत्र स्वयका दित्र आवृथा ययुःमर्त्याः कशया चोदत रमना ।

अरेणवस्तुविज्ञाता अचुचवुर्हानि चिन्मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ ४ ॥

को योन्तमरुत ऋष्टिविद्युतो रेजति त्मना हन्वेव जिह्वया ।

धन्वच्युत इषां न यामनि पुरुषैषा अहन्यो नेतशः ॥ ५ ॥

११ मरुतो, कवि मान्दर्फी यह स्तुति तुम्हारे लिये है । इच्छानुसार उसकी शरीर-शुद्धि के लिये तुम्हारे पास आती है । हम भी अन्न, यल और दीर्घायु प.वें ।

१ मरुतो, सारे यज्ञोंमें ही तुम्हारा समान आग्रह है । अपने सारे कर्मोंको, देवोंके पास ले जानेके लिये, अर्पण करते हो, इसलिये यावाष्ट्रयिदोकी भली भाँति, रक्षा करनेके लिये, उत्कृष्ट स्तोत्र द्वारा, तुम्हें, अपनी ओर आनेके लिये, बुलाता हूँ ।

२ स्वयं उत्पन्न, स्वाधीनयल और कम्पनशील मरुद्गण मानों मूर्तिमान् होकर, अन्न और स्वर्गके लिये, प्रकट होते हैं । असंख्य और प्रदासनीय धेनु जैसे दूध देती है, वैसे ही, जड़-तरङ्गके समान, वे उपस्थित होकर जल-दान करते हैं ।

३ सुसंस्कृत शाखावाली सोमलता, अभिषुत और पीत होकर, जैसे हृदयके बीच परिचारिकाकी तरह कार्य करती है, वैसे ही उमान किये जानेपर मरुद्गण भी करते हैं । उनके अंस-देशमें, स्त्रीकी तरह, आयुध-विशेष आर्जिमान करता है । मरुतोंके हाथमें हस्तत्राण और कर्त्तन है ।

४ परस्पर मिले हुए मरुद्गण, अनायास, स्वर्गसे आते हैं । अमर मरुतो, अपने ही वाक्योंसे हमारा उत्साह बढ़ाओ । निष्पाप, अनेक यज्ञोंमें प्रादुर्भूत और प्रदोष मरुद्गण दृढ़ पर्वतोंको भी कम्पित कर देते हैं ।

५ आयुध-विशेष या भुज-लक्ष्मीसे सुशोभित मरुद्गण, जैसे जीम दोनों जवड़ोंको चालित करतो है, वैसे ही तुम्हारे बीच रहकर कौन तुम्हें परिचालित करता है । तुम लोग स्वयं परिचालित होते हो । जैसे जलवर्षों मेघ परिचालित होता है, जैसे दिनमें मेघ चालित होता है, वैसे ही बहुकनेचक्षु यजमान, अन्न-प्राप्तिके लिये, तुम्हें परिचालित करता है ।

क स्विदस्य रजसो महस्परं कावरं मरुतो यस्मिन्नायय ।  
यच्छयावयथ विथुरेव संहितं व्यद्विणापनथ तेषमर्णवम् ॥ ६ ॥  
सातिर्न वोमवती स्वर्धती त्वेपा विपाका मरुतः पिपिष्वती ।  
भद्रा वोरातिः पृणतो न दक्षिणा पृथुक्षयी असूर्यव जङ्गती ॥ ७ ॥  
प्रतिष्ठोमन्ति सिन्धवः पविभ्यो यदधियां वानमुदीरयन्ति ।  
अवस्मयन्त विद्युतः पृथिव्यां यदीधृतं मरुतः प्रपुण्वन्ति ॥ ८ ॥  
असूत पृश्निर्महतेरणाय त्वेषमयासां मरुतामनोकम् ।  
ते सप्तरासो जनयन्ताम्ब्रम दित् स्वधामिपिरां पर्यपश्यन् ॥ ९ ॥  
एष वः स्तोमो मरुत इयं गीमान्दार्दर्यस्य मान्यस्य कारोः ।  
यथा यासीष्ट तन्वे वयां विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥

१६३ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् और विराट् छन्द ।

महर्षिस्वमिन्द्र यत् एतामहर्षिर्दक्षिण रजसो वरुता ।

स नो वेधो मरुतां चिकित्वास्तुम्ना वनुष्व तव हि प्रेष्ठा ॥ १ ॥

६ मरुतो, जिस जलके लिये तुम आते हो, उस विशाल वृष्टि-जलका आदि और अस्त कहाँ है ? शिथिल  
पृणकी तरह जिस समय तुम जलशायिका गिराते हो, उस समय वज्र द्वारा दीप्तिमान मेघको विदारण करते हो ।

७ मरुतो, जैसा तुम्हारा घन है, वैसा ही दान भी है । दानके सम्बन्धमें तुम्हारे सहायक इन्द्र हैं । उसमें सुख और  
दीप्ति है । उसका फल पारपक है । उससे क्षाण-कार्यका भी मंगल होता है । वह दासकी दक्षिणाकी तरह शीघ्र फल-  
दाता है । वह असूर्यकी जयशाल शक्तकी तरह है ।

८ जिस समय वज्र मेघ-माभूत शब्द उच्चारित करते हैं, उस समय उनसे क्षरणशील जल परिचालित होता  
है । जिस समय मरुद्गण पृथिवीपर जल सेचन करते हैं, उस समय विद्युद् जिह्ममुख पृथिवीपर प्रकट होती है ।

९ पृश्निने महासंग्रामके लिये प्रदीप्त गमन-युक्त मरुद्गणको प्रसव किया है । समान रूपवाले मरुतोंने जल  
हृत्पन्न किया है । इसके पश्चात् संसारने अभिलषित अन्न आदि प्राप्त किया है ।

१० मरुतो, कवि मान्य मान्दार्दर्यका वह स्तोत्र तुम्हारे लिये है ; यह स्तुति तुम्हारे लिये है । अपने शरीरकी  
पुष्टिके लिये तुम्हारे पास आता है । हम भी अन्न, दल और दीर्घायु प्राप्त करें ।

१ इन्द्र, तुम निश्चय ही महान् हो, क्योंकि तुम रक्षक और महान् मरुतोंका परिचालन नहीं करते । हे मरुतोंके  
पिताता, तुम हमारे प्रति कृपा करके हमें सुख प्रदान करो । वह सुख प्रियतम है ।

अयुजन्त इन्द्र विश्वकृष्टीर्विद्वानासो निषिधो मर्त्यता ।  
 मरुतां पृत्सुर्तर्होसमाना स्वर्मोहस्य प्रधानस्य सातौ ॥ २ ॥  
 अस्यक्मात इन्द्र श्रुष्टिरस्मेसनेम्यस्व मरुतो जुनन्ति ।  
 अग्निश्चिद्धिष्मातसे शुशुक्रानापो न द्वीपं दधति प्रयांसि ॥ ३ ॥  
 त्वन्तू इन्द्र तं रयिं दा ओजिष्ठया दक्षिणयेव रातिम् ।  
 स्तुतश्च यारते चकनन्त वायोः स्तनं न मध्वः पीपयन्त नाजैः ॥ ४ ॥  
 त्वे राय इन्द्र तोशतमाः प्रणेतारः कस्यचिद्वायोः ।  
 तेषुणो मरुतो मृडयन्तु येस्मा पुरा गातूयन्तोव देवाः ॥ ५ ॥  
 प्रतिप्रयाहीन्द्र मीह पोनुमहः पाथिवे रुदने यतस्व ।  
 अध यवेषां पृथ्वुष्मास पतास्तीर्येनार्यः पौंस्यानि तस्थः ॥ ६ ॥  
 प्रतिघोराणामेतानामयासां मरुतां शृण्व आयतामुग्धिः ।  
 ये मर्त्यं पृतनायन्तमूर्ध्वैर्ऋणावानं न पतयन्त सगैः ॥ ७ ॥

२ इन्द्र, सब मनुष्योंवाले, मनुष्योंके लिये जल खिचन करनेवाले और विद्वान् मरुद्गण तुम्हारे साथ मिलें मरुतोंकी सेना, छलके उपायमूल युद्धमें, जय-प्राप्तिके लिये, सदा प्रसन्न हुई है ।

३ इन्द्र, तुम्हारा प्रसिद्ध वज्रायुध-विशेष ( ऋष्टि ) हमारे लिये, मेघके पास जाता है । मरुद्गण चिर-सञ्चित जल गिरा रहे हैं । विस्तृत यज्ञके लिये अग्नि प्रदीप्त हुए हैं । ऐसे जल द्वीपको धारण करता है, वैसे ही अग्नि दृष्ट धारण करते हैं ।

४ इन्द्र, तुम अपने दान-योग्य धनका दान करो । तुम क्षाता हो । हम लोग प्रचुर दक्षिणा द्वारा तुम्हें प्रसन्न करेंगे । तुम वायु या शीघ्र दान-दाता हो । स्तोता लोग तुम्हारी स्तुति करने चाहते हैं । मधुर दूधके लिये जैसे लोग स्तोत्रको पुष्ट करते हैं, वैसे ही हम भी तुम्हें अन्न आदिके द्वारा पुष्ट करते हैं ।

५ इन्द्र, तुम्हारा धन अत्यन्त प्रीति-वृत्ता और यजमानका यज्ञ-निर्वाहकारी है । जो मरुद्गण पहले ही यज्ञमें जानेके लिये तैयार हो जाते हैं, वे ही हमें सुखी करें ।

६ इन्द्र, जल-सेचक हो । पुरुषार्थों और विशाल मेघके सामने जाओ । अन्तरीक्ष-प्रदेशमें रहकर चेष्टा करो । युद्ध-क्षेत्रमें शत्रुओंके पराक्रमको तरह मरुतोंके विस्तोर्ण पद—अवगण—मेघोंपर आक्रमण करते हैं ।

७ इन्द्र, मर्चकर, कृष्णवर्ण और गमनशील मरुतोंके आनेका शब्द सुनाई देता है । जैसे अधम शत्रुका विनाश किया जाता है, वैसे ही मनुष्योंकी रक्षाके लिये मरुद्गण ग्रहरण द्वारा सेना-बल-संयुक्त शत्रुओंका विनाश करते हैं ।



त्वं मानेभ्य इन्द्र विश्वजन्त्या रदा मरुद्भिः शुद्धयो गो अत्राः ।  
स्तवानेभिः स्तवसे देवदेवैर्विद्यामेपं वृजनं क्षीरदानुम् ॥ ८ ॥

१७० सूक्त । इन्द्र देवता । प्रथम, तृतीय और चतुर्थ ऋचाओंके ऋषि इन्द्र हैं और शेषके अगस्त्य ।  
त्रिष्टुप् और बृहती छन्द ।

न नूतमस्तिनोश्चः कस्तद्वेदयदद्भुतम् ।  
अन्यस्य चित्तमभिसञ्चरेणमुताधीतं विनश्यति ॥ १ ॥  
किं न इन्द्र जिघांससि भ्रातरो मरुतस्तव ।  
तेभिः कल्पस्व साधुयामानः समरणे बधीः ॥ २ ॥  
किं नो भ्रातरगस्त्य सखासन्नतिमन्यसे ।  
विज्ञा हिते यथा मनोऽस्मभ्यमिन्द्रित्ससि ॥ ३ ॥  
अरं कृण्वन्तु वेदिं समग्निमिन्धतां पुरः ।  
तत्रामृतस्य चैतनं यज्ञं ते तदवावहे ॥ ४ ॥  
त्वमीशिषे वसुपते वसूनां त्वं मित्राणां मित्रपते धेष्ठः ।  
इन्द्र त्वं मरुद्भिः संवदस्वाध प्राशान ऋतुया हवींषि ॥ ५ ॥

८ इन्द्र, सारे प्राणी तुमसे ही उत्पन्न हुए हैं । मरुओंके साथ, अपने सम्मानके लिये, तुम दुःख-नाशिका और जल-धारिणी मेघ-पंक्तिको विदीर्ण करो । देव, स्तव्यमान देवगण तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम हमें अन्न, नल और दीर्घायु प्रदान करो ।

१ ( इन्द्र ) अद्यतन या कलयन्त कुत्र नहीं है । अद्भुत कार्यकी बात कौन कह सकता है ? अन्य मनुष्योंका मन अत्यन्त चञ्चल होता है—जो अच्छी तरह पढ़ा जाता है, वह भी भूल जाता है ।

२ ( अगस्त्य ) इन्द्र, तुम क्या मुझे मारना चाहते हो ? मरुद्गण तुम्हारे भ्राता हैं । उनके साथ अच्छी तरह यज्ञ-भाग भोगो । युद्ध-कालमें हमें ही विनष्ट करना ।

३ ( इन्द्र ) आता अगस्त्य, मित्र होकर तुम क्यों हमें अनाहत कर रहे हो ? हम मित्रवत् ही तुम्हारे मनकी बात जानते हैं । तुम हमें नहीं देना चाहते ।

४ ऋत्विक्पूजा, तुम वेदीकी सजाओ और सामने अग्निको प्रज्वलित करो । अनन्तर उसमें तुम और हम अमृतके सूचक यज्ञको करेंगे ।

५ ( अगस्त्य ) हे धनके अधिपति, हे मित्रोंके मित्रपति, तुम ईश्वर हो, तुम सबके आश्रय-स्वरूप हो । तुम मरुतोंसे कहो कि, हमारा यज्ञ सम्पन्न हुआ है । तुम ययासुसम अर्पित हव्य भक्षण करो ।

१७१ सूक्त । मरुद्गण देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्रति व एना नमसाहमेमि रुक्मे न मिक्षे सुमति तुराणाम् ।  
 रराणता मरुतो वेद्याभिनिहेलौ धत्त विदुषध्वमश्वान् ॥ १ ॥  
 एष वः स्तोमो मरुतो नमश्वान् हृदातण्डो मनसा धायि देवाः ।  
 उपेमायात मनसा जुषाणा यूयं हिष्णानमस इद्वृधासः ॥ २ ॥  
 स्तुतांसो नो मरुतो मृडयन्तुत स्तुतो मधवा शम्भविष्ठः ।  
 ऊर्ध्वानः सन्तु कोम्या वनान्यहानि विश्वा मरुतो जिगीषा ॥ ३ ॥  
 अस्माद्दन्तविषादीपमाण इन्द्राङ्गिया मरुतो रजमानः ।  
 युष्मभ्यं दध्या निशितः न्यासन्तान्यारे चट्टमा मृडतानः ॥ ४ ॥  
 येन मानासश्चित्तदन्त उक्ता द्युष्टिषु शवसा शवतीनाम् ।  
 स नो मरुद्भिर्वृषभ श्रवोधा उग्र उग्रोभिः स्थविरः सुहोदाः ॥ ५ ॥  
 त्वं पाहीन्द्र सक्षीरु नृभवा मरुद्भिर्वयातहेलाः ।  
 सुप्रवेतेभिः सारुहिर्दधानो दिद्यामेपं दृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥

१ मरुतो, मैं नमस्कार और स्तुति करता हुआ तुम्हारे पास आता हूँ । हे देववान् मरुतो, तुम्हारी दया चाहता हूँ । मरुतो, स्तुति द्वारा आनन्दित चित्तसे क्रोध छोड़ो और ऐसे अश्व छोड़ो अर्थात् तहरनेकी कृपा करो ।

२ मरुतो, तुम्हारे इस स्तोममें अन्न है । देवगण, यह स्तोम, तुम्हारे उद्देश्यसे, हृदयसे सम्पादित हुआ है; कृपा करके इसे मनमें रखिये । सादर इसे स्वीकार करते हुए आओ । तुम दध्-रूप अन्नके वर्द्धयिता हो ।

३ मरुद्गण, स्तुत होकर हमें सुखी करो । इन्द्र, स्तुत होकर हमें सवपिक्षा सुखी करें । मरुतो, इस लोग जितने दिन जीयें, वे सब दिन उत्कृष्ट, स्पृष्टणीय और मोर-योग्य हों ।

४ मरुतो, हम इस बलवान् इन्द्रके पाससे दूरके मारे मागते हुए काँपने लगे । तुम्हारे लिये जिस द्रव्यको संस्कृत किया था, उसे दूर कर दिया । हमें सुखी करो ।

५ इन्द्र, तुम बल-स्वरूप हो । तुम्हारे माननीय अनुग्रहसे किरणें, प्रतिदिन, उषाके उदय-कालमें प्राणियोंको चेतन्य देती हैं । अमीपदर्वी, उग्र बल-प्रदायी और पुरातन इन्द्र, तुम उग्र मरुतोंके साथ अन्न धारण करो ।

६ इन्द्र, दम्भूत बलवाली मरुतोंकी रक्षा करो । उनके प्रति निष्क्रोध बनो । मरुद्गण उत्तम प्रजावासे हैं । उनके साथ शत्रुओंके विनाशक बनो और हमारा रक्षा करो । हम अन्न, बल और दंर्पायु प्राप्त करें ।

१७२ सूक्त । इन्द्र देवता । गायत्री छन्द ।

चित्रो धोरतु यामश्चित्र उतो सुदानवः । मरुतो अहिमानवः ॥ १ ॥

आरेखावः सुदानवो मरुत ऋञ्जती शरुः । आरे अश्मायमस्यथ ॥ २ ॥

मृणस्कन्दस्य नु विशाः परिवृक सुदानव । ऊर्ध्वान्नः कर्त जीवसे ॥ ३ ॥

१७३ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

गायत्सामनमग्नं यथावेरर्चाम तद्वृभानं स्वर्वत् ।

गावो धनवो बर्हिष्यदध्या आयत्सुधानदिग्यं विवासान् ॥ १ ॥

अर्चदृ पा वृषभिः स्वेदुहृद्यैमृ गानाश्चो अतियज्जुगुर्यात् ।

प्रमदयुर्मनां गूर्त होता भरते मर्यो मिथुना यज्ञत्रः ॥ २ ॥

नक्षत्रोता परिष्वा मितायन्मा द्भममशरदः पृथिव्याः ।

क्रन्ददश्वो नयमानो रुद्वीरन्तदूर्तो न रोदसी चरद्वाक् ॥ ३ ॥

१ मरुतो, यज्ञमें तुम्हारा आगमन विचित्र हो । दानशील और उत्कृष्ट दीप्तिवाले मरुतो, तुम्हारा आगमन हमारी रक्षा करे ।

२ दानशील मरुतो, तुम्हारे दीप्यमान और प्राणिवचकुशल अस्त्र हमारे पाससे दूर हों । तुम जिस अश्व नामके रथको फेंकते हो, वह भी हमारे पाससे दूर हो ।

३ दाता मरुतो, सिनेके समान नीच होनेपर भी मेरी प्रजाओंको बचाना । हमें उन्नत करो, ताकि हम बच जायें ।

१ इन्द्र, उद्गाता संहवेदका इस प्रकार आकाशव्यापी गान गाता है कि, हम समस्त सक्रो । हम उस वर्तमान और स्वर्ग-प्रदत्ता स्तोत्रकी पूजा करते हैं । स्वर्गीय इन्द्र, दुग्धवती और हिंसा-शून्य गायें जैसे कुशासनपर बैठनेके समय तुम्हारी सेवा करती हैं, वैसे ही मैं भी पूजा करता हूँ ।

२ हव्यदाता यज्ञमान, हव्य-दाना अचर्यु आदिके साथ अपने दिये हव्य द्वारा इन्द्र की पूजा करने हैं । पिपासित मृगकी तरह, इन्द्र, द्रुत वेगसे यज्ञ-मन्त्रमें उपस्थित होंगे । उग्र इन्द्र, स्तोत्रामिलायी देवोंकी स्तुति करते हुए मर्त्य होता, रुद्री-पुरुष, यज्ञ-सम्पन्न करते हैं ।

३ होम-सम्पन्न अग्नि परिमित गार्हपत्यादि स्थानमें, चारो ओर, व्याप्त हैं तथा शरत्कालका और पृथिवीके गर्भस्थानीय उन्नतको ग्रहण करते हैं । अश्वकी तरह शब्द करके, वृषभकी तरह शब्द करके, अन्न लेकर, आकाश और पृथिवीके बीच, दूत-स्वरूप, वासवीत करते हैं ।

ताकर्मावतरास्मै प्रच्यौतानि देवयन्तो भरन्ते ।  
 जुजोषदिन्द्रो वस्मवर्चा नासत्येव सुगम्यो रथेष्ठाः ॥ ४ ॥  
 तमुष्टुहीन्द्रं योह सत्वायः शूरो मघवा यो रथेष्ठाः ।  
 प्रतीचश्चिघोषीयान् वृषण्वान्ववम् पश्चिन्तमसो विहन्ता ॥ ५ ॥  
 प्रयदित्या महिना नृभ्यो अस्त्यरं रोदसीकक्ष्ये नास्मै ।  
 संविध्य इन्द्रो वृजर्न न भूमा भर्ति स्वधावाँ ओपशमिव द्याम् ॥ ६ ॥  
 समस्तु त्वा शूरसतामुराणं प्रपथिन्तमं परितं सयध्यै ।  
 सजोषस इन्द्रं मदेक्षोणीः सूरि चिघो अनुमदन्ति वाजैः ॥ ७ ॥  
 एषाहितेशं सघना समुद्र आपो यत्त आसुमदन्ति देवीः ।  
 निष्ठा ते अनुजोप्याभृद्भौः सूरौश्चिघदि धिपाघेपि जनान् ॥ ८ ॥  
 अस्माम यथा सुसन्नाय एम स्वमिष्टयो नरां न शंसैः ।  
 असद्यथा न इन्द्रो वन्दनेष्टास्तुरो न कर्म नयमान उक्थ्या ॥ ९ ॥

४ इन्द्र, इन्द्रके उद्देश्यसे, अत्यन्त व्यापक हव्य प्रदान करेगा । देवामिलायी यजमान उड़ स्तोत्र करते हैं । इर्वाभीय तेजसाग्ने अग्निनीकुमारोंकी तरह जानने योग्य और रथपर अवस्थित इन्द्रह मारे स्तोत्रका सेवन करें ।

५ हे होता, जो इन्द्र अनन्त यलपासे, शौर्यवान्, यलवान् रथपर स्थित, सामनेके योद्धाओंमें श्रेष्ठ योद्धा, वज्र आदिवाले और मेघ आदिके विनाशक हैं, उनको स्तुति करो ।

६ इन्द्र, अपनी महिमासे, कर्म-निष्ठ यजमानोंको स्वर्ग आदि फल देनेमें समर्थ हैं । धावापृथिवी उनकी कक्षाकी चक्किने लिये परास्त नहीं हैं । जैसे अन्तरीक्ष पृथिवीको घेरेका कर रहता है, वैसे ही वे भी अपनी प्रतिभासे तीनों लोकोंको व्याप्त करते हैं । जैसे वृषभ अनायास शृङ्ग धारण करता है, वैसे ही अन्नवान् इन्द्र भी स्वर्गको अनायास धारण करते हैं ।

७ यूर इन्द्र, दुद्ध-भूमिमें साधुओंके बलप्रद और उत्तम-मार्ग-रूप हो । मरुद्गण तुम्हें स्वामी कहकर आनन्दित होते हैं । वे तुम्हारे परिजन हैं । तुम्हारे आनन्दके लिये सब लोग समान आनन्दित होकर तुम्हें अलङ्कृत करनेकी चेष्टा कर रहे हैं ।

८ यदि अन्तरीक्ष-स्थित और प्रकाशमान जल प्रजाओंके लिये तुम्हें सुखी करे, यदि सारे स्तोत्र आदि तुम्हें प्रसन्न करें और यदि तुम पूर्वाष्ट-प्रदान आदि कर्म द्वारा स्तोत्राओंको कामना करो, तो तुम्हारा सवन सुखकर हो ।

९ प्रभु इन्द्र, ऐसे हम तुम्हारे मित्र हो सके और स्तुति द्वारा, राजाओंकी तरह, तुम्हारे पाससे अभीष्ट प्राप्त कर सके, बैसा करो । इन्द्रदेव, हमारे स्तुति-कालमें उपस्थित होकर, वीरताके साथ, हमारा यज्ञ, उक्त स्तुतिके साथ, ले जाओ ।

विष्पर्धसो नरां न शंसैरस्माकासदिन्द्रो वज्रहस्तः ।  
 मित्रा युवो न पूर्णं सुशिष्टौ मध्यायुव उपशिक्षन्ति यज्ञैः ॥ १० ॥  
 यज्ञो हि ष्मैर्द्रं कश्चिद्वन्धञ्ज हुराणांश्चिन्मनसा परियन् ।  
 तीर्थनाच्छातातृपाणमोको दीर्घो न सिधमाकृणोत्यध्वा ॥ ११ ॥  
 मोषूण इन्द्रात्र पृत्सु देवैरस्ति हि ष्माते शुष्मिन्नवयाः ।  
 मर्द्वाश्चयस्य मी लुषो यव्या हविष्मतो मस्तोवन्दते गीः ॥ १२ ॥  
 एषः स्तोम इन्द्र स्तुभ्यमस्मे एतेन गातुं हरिवो विदो नः ।  
 आनो ववृत्याः सुविताय देव विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम् ॥ १३ ॥



१७४ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिटुप् छन्द ।

त्वं राजेन्द्र ये च देवा रक्षानून् पाह्यसुर त्वमस्मान् ।  
 त्वं सरपतिर्मघवानस्तत्तत्त्वं सत्यो वसवानः सहोदाः ॥ १ ॥

१० जैसे मनुष्योंमें प्रतिस्पर्धी व्यक्तियोंको, स्तुति द्वारा, सदैव दिया जाता है, वैसे ही हम भी इन्द्रको करेंगे । इन्द्र केवल हमारे ही होंगे । जैसे योग्य शासक नगरपतिकी, हितैषी लोग, पूजा, करते हैं, वैसे ही हमारे बीच अवस्थानामिलायी अडवयुं लोग, हव्य आदि द्वारा, इन्द्रकी पूजा करते हैं ।

११ इसी प्रकार यज्ञपरायण व्यक्ति, यज्ञ द्वारा, इन्द्रकी वृद्धि करता है और कुटिलगति व्यक्ति, मन ही मन, सदा चिन्ता-परायण रहता है, जिस प्रकार तीर्थ-मार्गमें सम्मुखस्थित जल तुरत लोगोंको प्रसन्न करता और दीर्घ-पथका जल तृप्तार्थ व्यक्तिको निराश करता है ।

१२ इन्द्र, युद्ध-वेलामें, मस्तोंके साथ, तुम हमें नहीं छोड़ना; क्योंकि हे बलवान् इन्द्र, तुम्हारे लिये यज्ञका आग स्वस्त्र है । हमारी फल-समन्वित स्तुति महान्, हविष्मान् और जलदाता मस्तोंकी बन्दना करती है ।

१३ इन्द्र, यह स्तोम तुम्हारा ही है । हरिवाहन, इस स्तुति द्वारा तुम हमारा देव-पूजन-मार्ग जान को और अनायास आनेके लिये हमारे पास पधारो ।

१ इन्द्र, तुम संसार और सारे देवोंके राजा हो । तुम मनुष्योंको रक्षा करो । अस्त्र, तुम हमारी रक्षा करो । तुम साधुओंके पालक, धनवान् और हमारे उद्धार-कर्ता हो । तुम सत्य और बल-प्रदाता हो । तुमने अपने तेजसे सबको दक लिया है ।

दनोविश इन्द्रमृधवाचः सप्त यत् पुरः शर्म शारदीर्दत् ।  
 ऋणोरपो अनवघारणा यूने वृत्रं पुरुकुत्साय रन्धीः ॥ २ ॥  
 अजावृत इन्द्र शूरपत्नोर्धा च येभिः पुरुहूत नूनम् ।  
 रक्षो अग्निमशुपं तूर्वयाणं सिंहो न दमे अपांसि वस्तोः ॥ ३ ॥  
 शेषन्त इन्द्र सस्मिन्यानौ प्रशस्तये पवीरवस्य महा ।  
 सृजर्णास्वय यद्युधा गास्तिष्ठद्वरी धृपतामृष्ट वाजान् ॥ ४ ॥  
 वहकुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्त्यूमन्यू ऋज्ञा वातस्याश्व ।  
 प्रसूश्चकं बृहतादभीकेभिरुधो यासिपद्वज्रबाहुः ॥ ५ ॥  
 जघन्वा इन्द्रमित्र रुञ्जोदप्रवृद्धो हरिवो अशशून् ।  
 प्रयेपश्यन्नर्यमणं सचायोस्त्वया शूर्तावहमाना अपत्यम् ॥ ६ ॥  
 रपत् कविरिन्द्राकासाक्षी क्षां दासायोपवर्हणीङ्कः ।  
 करत्तिस्रो मघवा वानुचित्रा निदुर्योणे कुयवाचं मृधिश्रेत् ॥ ७ ॥

२ इन्द्र, जिस समय तुमने संवत्सर-पर्यन्त दृढ़ीकृत सात पुरियोंको भिन्न किया था, उस समय प्रजाओंको संवत्-वाक्य करके अनायास दमन किया था । अनवघ इन्द्र, तुमने गतिशील जल दिया था । तुमने सृण-वयस्क पुरुकुत्स राजाके लिये वृत्रका यध किया था ।

३ इन्द्र, तुम राक्षस-निवास सारो नगरियोंको जाते और बर्हाते, हे पुरुहूत, अनुचरोंके साथ स्वर्गमें जाते हो । वहाँ अश्वोचक और शीघ्रकारी अग्निको, सिंहकी तरह, बचाते हो, ताकि वह अपने गृहमें अपना कर्त्तव्य पूरा कर सके ।

४ इन्द्र, तुम्हारे यद्यु या मेघ यज्ञकी मददसे तुम्हारी प्रशंसा करते हुए अपने जन्मस्थानमें शीघ्र शयन करें । जब तुम अस्त्र लेकर जाते हो, तब नीचे जल गिरते और हरियोंके ऊपर चढ़ते हो । अपनी शक्तिसे तुम शत्रु आदि बड़ाते हो ।

५ इन्द्र, तुम जिस यज्ञमें कुत्स ऋषिको कामना करते हो, उसमें अपने वशीभूत, सरलगामी और वायुके समान वेगवाली अश्वोंको परिचालित करते हो । इसके लिये सूर्य रथचक्रको पास ले आते और वज्रबाहु इन्द्र संप्रामकर्ता शत्रुओंके सामने आते ।

६ हरिबाहन इन्द्र, तुमने, स्तोत्र द्वारा प्रवृद्ध होकर, वान-रहित और यज्ञमानोंके विघ्नकारी लोगोंका विनाश किया है । जिन्होंने तुम्हें आश्रयदाता रूपसे देखा है और जो हव्य प्रधानके लिये मिलित हुए हैं, वे तुमसे सन्तान प्राप्त करते हैं ।

७ इन्द्र, पूजनीय अन्नकी प्राप्तिके लिये कवि तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुमने पृथिवीको दासकी कृपा बना दिया है । इन्द्रने तीन भूमिके वान द्वारा विचित्र किया है एवं दुर्योणि राजाके लिये कुयवाचका वध किया है ।

सनातात इन्द्र नव्या आगुः सहोनभो विरणाय पूर्वीः ।  
 भिनत्पुरो न भिदो अदेवीर्नमो वधरदेवस्य पीयोः ॥ ८ ॥  
 त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्हणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।  
 प्रयत् समुद्रमतिशूर पर्षि पारया तुर्वणं यदुं स्वस्ति ॥ ९ ॥  
 त्वमस्माकमिन्द्र विश्वधस्या अश्रुक्तमो नरां नृपाता ।  
 स नो विश्वासां स्पृधां सहोदा विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम् ॥ १० ॥

१७५ सूक्त । इन्द्र देवता । वृहती, त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्द ।

मत्स्यपायि ते महः पात्रस्येव हरिवो मत्सरो मदः ।  
 वृषा ते वृष्ण इन्दुर्वाजी सहस्रसातमः ॥ १ ॥  
 आनस्ते गन्तु मत्सरो वृषा मदो वरेण्यः ।  
 सहावाँ इन्द्रसानसिः पृतनाषाड्मर्त्यः ॥ २ ॥  
 त्वं हि शूरः सनिता चोदयो मनुषो रथम् ।  
 सहावान्दस्युमव्रतमोषः पात्रं न शोचिषा ॥ ३ ॥

८ इन्द्र, नये ऋषिगण तुम्हारे सनातन प्रसिद्ध वीर कर्मकी स्तुति करते हैं । तुमने अनेक हिंसकोंको, संवाम-निवारणके लिये, विनष्ट किया है । तुमने देवशून्य विपक्ष नगरोंको भिन्न किया है और देवरहित शत्रुका अस्त्र बर-किया है ।

९ इन्द्र, तुम शत्रुओंमें हृदयमय पवा करनेवाले हो । इसीलिये तुम प्रवहमाना सिरा नामकी नदीकी तरह तरंग-युक्त बल पृथिवीपर गिराते हो । हे वर, जिस समय तुम समुद्रको परिपूर्ण करते हो, उस समय तुमने तुर्वण और बहुके मंगलके लिये उनका पालन किया है ।

१० इन्द्र, तुम सदा हमारे रक्षक-ब्रह्म बनो और प्रजाओंका पालन करो । हमारे सैन्योंको बल दो, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें ।

१ हरिवाहन इन्द्र, हर्वकर, अमीष्टवर्षी, आह्लावकारी, अन्नवान्, असौम दानवाले और महाबुभाव सोम जिस प्रकार पात्रमें स्थापित किया जाता है, उसी प्रकार तुम भी होकर और पानकर धारण करो और अतीव प्रसन्न बनो ।

२ इन्द्र, हर्वकर, अमीष्टवर्षी, तर्पयिषा, वरणीय, सहायवान्, शत्रु-सैन्य-विनाशक और अविनाशी सोम तुम्हारे पास आवे ।

३ इन्द्र, तुम वर और दाता हो, मैं ब्रह्म हूँ । मेरा मनोरथ पूर्ण करो । तुम सहायवान् हो । जैसे अग्नि, अपनी ज्वालासे, पात्रको जलाता है, वैसे ही तुम व्रत-रहित दस्युको जलाओ ।

मुषाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा ।  
 वह शुष्णाय बध्नं कुत्सं घातस्याश्वैः ॥ ४ ॥  
 शुष्मिन्तमो हि ते मदो द्युस्मिन्तम उत क्रतुः ।  
 वृत्रघ्ना वरिवोचिदा मंसीष्ठा अश्वसातमः ॥ ५ ॥  
 यथा पूर्वभ्यो जरितुभ्य इन्द्र मयइवापो न तुष्यते बभूथ ।  
 तामनु त्वा निविदं जोहवीमि विद्यामेपं वृजनं जीरयानुम् ॥ ६ ॥



१७६ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

मत्सि नो वस्य इष्ट्य इन्द्रमिन्द्रो वृषाविश ।  
 अधायमाण इत्यसि शत्रु मन्ति न धिन्दसि ॥ १ ॥  
 तस्मिन्नावेक्षया गिरो य एकश्चर्पणोनाम् ।  
 अनुस्वधायमुष्यते यवं न चर्ह पद्भ्याम् ॥ २ ॥  
 यस्य विश्वानि हस्तयोः पञ्चक्षितीनां वसु ।  
 स्वाशयस्व यो अस्मध्मुद्व्येवाशनिजंहि ॥ ३ ॥

४ मेधावी इन्द्र, तुम ईश्वर हो। अपनी सामर्थ्यसे तुमने सूर्यके दो चक्रोंमेंसे एक इरण कर लिया। शुष्णका बध्न करनेके लिये कुत्स-साधन धनु लेकर घायुके समान वेगवासे अश्वके साथ आओ।

५ इन्द्र, तुम्हारी प्रसन्नता सर्वापेक्षा बल-संयुक्त है। तुम्हारा यज्ञ सर्वापेक्षा अन्नवान् है। हे अनेक-अश्व-वाता इन्द्र, अपने वृत्रघाती और घनहायी तथा क्रतुका समर्थन करो।

६ इन्द्र, तुम पुराने स्तोताओंके प्रति, वृषार्चके पास जलकी तरह हुए थे, इसलिये हम बार-बार तुम्हारी स्तुति करते हैं, ताकि अन्न, बल और दीर्घायु प्राप्त करें।

१ हे सोम, घन-कामके लिये इन्द्रको आनन्दित करो। अभीष्टवर्षी इन्द्रके बीच प्रवेश करो। प्रसन्न होकर ऋतुओंका विनाश करते हुए क्रमशः व्याप्त होते हो, इसलिये किसी ऋतुको पासमें नहीं आने देते।

२ इन्द्र, मनुष्योंके अद्वितीय अधीश्वर हैं। वे यथा-रीति यव (जौ) की तरह हमारा अभीष्ट सार्थक करते हैं।

३ जिन इन्द्रके हाथोंमें पञ्च क्षिति अर्थात् ब्राह्मणादि चार वर्ण और निषादका सर्वप्रकार अन्न है, वही इन्द्र, जो हमारा द्रोह करता है, उसे दिव्य धनुषकी तरह विनष्ट करें।



अमुन्वन्तं समं जहि दूणाशं योनते मयः ।  
 अस्मभ्यमस्य वेदनं वद्धि सूरिश्चिदोहते ॥ ४ ॥  
 आवो यस्य द्विर्हसोऽर्कषु सानुपगसत् ।  
 आज्ञाविन्द्रस्येन्द्रो प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ५ ॥  
 यथा पूर्वभ्यो जरितुभ्य इन्द्र मय इवापो न तुष्यते बभूथ ।  
 तामनुत्वा निविद्ध जोहवीमि विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥ ६ ॥



१७७ सूक्त । इन्द्र देवता । बृहती, त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् छन्द ।  
 आचर्षणिप्रा वृषभो जनानां राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः ।  
 स्तुतः श्रवत्यन्नवसोप मद्विगुक्त्वा हरी वृषणायाह्यर्वाङ् ॥ १ ॥  
 ये ते वृषणो वृषभास इन्द्र ब्रह्मगुजो वृषरथासो अत्याः ।  
 तां आतिष्ठ तेमिरा याह्यर्वाङ् इवामहे त्वा सुत इन्द्र सोमे ॥ २ ॥  
 आविष्ठ रथं वृषणं वृषाते सुतः सोमः परिषिका मधूनि ।  
 युक्त्वा वृषभ्यां वृषभक्षितीनां हरिभ्यां याहि प्रवतोप मद्विक् ॥ ३ ॥

४ इन्द्र, जो लोग सोमका अभिषेक नहीं करते और जिनका विनाश करना दुःसाध्य है, उनका बच-करो; क्योंकि वे तुम्हारे कलके कारण नहीं हैं । उनका घन हों दो । तुम्हारा स्तोता ही घन प्राप्त करता है ।

५ हे सोम, तिन स्तोत्र और हविके द्विविध कर्म करनेवाले यजमानके पूजा-साधक मंत्रमें तुम सदा अवस्थिति करते हो, उसकी तुम रक्षा करो । हे सोम, इन्द्रके युद्धमें अन्नके लिये अन्नवान् इन्द्रकी रक्षा करो ।

६ इन्द्र, हम प्राचीन स्तोताओंके प्रति, वृषात्तके पास, जलकी तरह हुए थे, इसलिये हम बार-बार तुम्हारी सुखकर और प्रसिद्ध स्तुति करते हैं, ताकि हम अन्न, वर और दीर्घायु प्राप्त करें ।

१ मनुष्योंके प्रीति-दायक, सबके हृच्छित्त-वर्षक, मनुष्योंके स्वामी और बहुतेके द्वारा आहूत इन्द्र हमारे पास आवें । इन्द्र, हमारी स्तुति ग्रहण कर दोनों तक्षण हरितोंको रथमें जोतकर, हव्य ग्रहण करने और रक्षाके लिये हमारे सामने आओ ।

२ इन्द्र, तुम्हारे जो तक्षण, उत्तम, मंत्र द्वारा रथमें योजनीय, वर्षक और रथसे युक्त घोड़े हैं, उनपर चढ़ो और उनके साथ हमारे सामने आओ ।

३ इन्द्र, हम अमीष्टवर्षक रथपर चढ़ो; क्योंकि तुम्हारे लिये मनोरथ दाता सोम तैयार है—मधुर घृत आदि भी तैयार है । अमीष्ट-वर्षक इन्द्र, अमीष्टदाता दोनों हरि नामके घोड़ोंको जोतकर यजमानोंके ऊपर कूपा करनेके लिये वेगवान् रथसे हमारे सामने आओ ।

अयं यज्ञो देवया अयं मियेध इमा ब्रह्माण्यमिन्द्रसोमः ।  
 स्तीर्णं बर्हिःरातु शक्रं प्रयाहि पिबा निषद्य विमुचा वरी, इह ॥४॥  
 ओ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वाङ्मप ब्रह्माणं मान्यस्य कारोः ।  
 विद्या मवस्तोरवसा गृणन्तो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥५॥

१७८ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

यज्ञस्यात इन्द्र श्रष्टिरस्ति यया बभूथ जरितृभ्य ऊती ।  
 मानः कामं महयन्तमा धम्विश्वा ते अश्यां पर्याप आयोः ॥१॥  
 न त्वा राजेन्द्र आ दभन्नो या नु स्वसारा कृणवन्त योनौ ।  
 आपश्चिददमै सुतुका अवेपन्गामन्न इन्द्रः सख्या घयश्च ॥२॥  
 जेता नृभिरिन्द्रः पृत्सु शूरः श्रोता हवं नाधमानस्य कारोः ।  
 प्रमर्ता रथं वाशुप उपाक उद्यन्ता गिरो यदि च त्मना भूत् ॥३॥  
 पवा नृभिरिन्द्रः सुश्रवस्या प्रत्नादः पृक्षो अभि मित्रिणो भूत् ।  
 समय इपः स्तवते विवाचि सत्राकरो यजमानस्य शंसः ॥४॥

४ इन्द्र, देवोंके उद्देश्यसे यह यज्ञ जाता है । यह यज्ञीय पशु, ये मंत्र, यह प्रस्तुत सोम और यह विद्या हुआ हुआ तुम्हारे लिये तैयार हैं । तुम जलदी आओ, बैठो, सोम पिनाँ और यज्ञ-स्थलमें दार चादोंको छोड़ो ।

५ इन्द्र, हमारे द्वारा अच्छी तरह स्तुत होकर माननीय स्तोताके मंत्रको उपलब्ध करके हमारे सामने आओ । हम, स्तुति करते हुए, तुम्हारा आश्रय प्राप्त कर अनायास वास—स्नान प्राप्त करेंगे । साथ ही अन्न, बल और दीर्घ आयु भी लाभ करेंगे ।

१ इन्द्र, जिस समृद्धिके द्वारा तुम स्तोताओंकी रक्षा करते हो, वह सर्वत्र प्रसिद्ध हो । तुम हमें सहाय करनेकी अभिलाषाको नष्ट न करो । तुम्हारे लिये जो वस्तु प्राप्तव्य और भोग्य है, वह सब हम प्राप्त करें ।

२ परस्पर भगिनी—स्वरूप अहोरात्र अपने जन्मस्थानमें जो वृष्टि-रूप कर्म करते हैं, राजा इन्द्र वह हमारा कर्म नष्ट न करें । बलका कारण हव्य इन्द्रके लिये व्याप्त होता है । इन्द्र हमें मैत्री और अन्न प्रदान करें ।

३ विक्रमशाली इन्द्र, युद्ध-नेता मरुतोंके साथ युद्धमें जय-लाभ करते हुए अनुग्रहार्थी स्तोताका आह्वान सुनते हैं । जिस समय स्वर्ण स्तुति-वाक्यको वरण करनेका इच्छा करते हैं, उस समय हव्यदाता यजमानके पास रख ले जाते हैं ।

४ उत्तम धनके कामकी इच्छासे यजमान द्वारा दिया हुआ अन्न, प्रचुर परिमाणमें, भक्षण करते तथा सहायता-वासे यजमानके शत्रुओंकी पराजित करते हैं । विभिन्न आह्वानोंकी ध्वनिवाँसे युक्त युद्धमें सत्यपालक इन्द्र यजमानके कर्मकी प्रसिद्धि करते हुए हव्यको स्वीकार करते हैं ।

तत्रयः धर्मं मघदन्तिन्द्र शत्रून्मिथ्याम महती मन्यमानात् ।  
त्वं ज्ञाता त्वष्टु नो वृधे भूर्धिया मेघंवृजनं जीरवानुम् ॥१॥



१०६ सूक्त । इस सूक्तमें अगस्त्य, उनकी स्त्री (लोपामुद्रा) और शिष्यमें सम्भोग-विषयक कथोपकरण है; इसलिये सम्भोग ही इसका देवता है । त्रिष्टुप् और वृहती छन्द ।

पूर्वोरहं शरदः शश्रमाणा दोषावस्तो रुषसो जयन्ती ।  
मिनाति श्रियं जग्मि तनूनामप्युनु पत्नीवृषणो जगम्युः ॥१॥  
ये चिद्वि पूर्वं ऋतसाप आसन्त्सार्कं देवेभिरवदन्तानि ।  
ते चिद्वत्सुर्नह्यन्तमापुः समूनुपती वृषमिर्जगम्युः ॥२॥  
न मृषा भ्रान्त यदवन्ति देवा विश्वा इत्स्वृधो अभ्यश्नवाव ।  
जयावेदत्र शतनीथमाजि यत् सम्यञ्चा मिथुनावभ्यजाव ॥३॥  
नदह्य मारु धतः काम आगजित आज्ञातो अमुतः कुतश्चित् ।  
लोपामुद्रा वृषणं नीरिणाति घीरमघीरा धयति इवसन्तम् ॥४॥  
इमं नु सोममगितो हृत्सु पीतमुपब्रुवे ।  
यत् सोमागश्चक्रमा सत् रुमृत्तु पुलकामो हि मर्त्यः ॥ ५ ॥

५ इन्द्र, तुम्हारी सहायता लेकर हम अब शत्रुओंका वध करेंगे, जो अपनेको अचक्षु समझते हैं । तुम हमारे जाता हो । तुम हमारे धनके बर्हक बनो, ताकि हम अन्न, दल और दीर्घ आयु प्राप्त करें ।

१ (लोपामुद्रा) अगस्त्य, अनेक वर्षोंसे मैं दिन-रात बुढ़ापा कानेवाली उषाओंमें, तुम्हारी सेवा करके, भ्रान्त हुई हूँ । अरा गरीरके सौन्दर्यका नाश करतो है । इस समय क्या ? पुरुष स्त्रीके पास गमन करे ।

२ अगस्त्य, ओ प्राचीन और सत्य-रक्षक ऋषि लोग देवताओंके साथ सच्ची बात कहते थे, उन्होंने भी रेत का स्खलन किया है; परन्तु उन्हें भी अन्न नहीं मिला । पुरुष स्त्रीके साथ गमन करे ।

३ (अगस्त्य) हम लोग वृषा नहीं आन्त हुए; क्योंकि देवता लोग रक्षा करते हैं । हम सारे भोगोंका उपभोग कर सकते हैं । यदि हम दोनों चाहें, तो इस संसारमें हम सैकड़ों भोगोंके साधन प्राप्त कर सकते हैं ।

४ यद्यपि मैं जय और संयममें विद्युक्त हूँ; तथापि इसी कारण या किसी भी कारण, मुझे काम-भाव हो गया है । लेकिन करनेवाली लोपामुद्रा पक्षिके साथ संगत हो । अघीरा स्त्री घीर और महाप्राण पुरुषका उपभोग करे ।

५ (शिष्य) इदधमें पीत इस सोमसे मैं आन्तरिक प्रार्थना करता हूँ कि, सोम मुझे सुखी करे । मनुष्य बहुत कामनावाला होता है ।

अगस्त्यः प्लनमानः खनित्रैः प्रजामपत्यं बलमिच्छमानः ।  
अभी वर्णावृषिरुग्रः पुषोष सत्या देवेष्वाशिषो जगाम ॥६॥

—००००००००—

२४ अनुवाक । १८० सूक्त । अश्विद्वय देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।  
युवो रजांसि सुयमासो अथा रथो यद्वां पर्यर्णांसि शीयत् ।  
तिरय्यया वां पथयः प्रुषायन्मध्वः पिबन्ता उपसः सन्वेथे ॥१॥  
युवमत्यस्याव नक्षद्यो यद्विपत्तमनो नर्यस्य प्रयज्योः ।  
स्वसा यद्वां विश्वगूर्ति भराति वाजायेद्वे मधुपाविषे च ॥२॥  
युधं पय स्रियायामधत्त पकमामायामव पूर्यङ्गोः ।  
अन्तर्यद्वनिनो घामृतप्लूहागे न शुचिर्यजते हविष्मान् ॥३॥  
यघं ह धर्मं मधुमन्तमप्रयेपो न क्षोदावृणीतमेपे ।  
तद्वां नरावश्विना पश्वइष्टी रथयेव चक्रा प्रति यन्ति मध्वः ॥४॥

१ इस ऋषि अगस्त्यने अनेक उपायोंका उद्बोधन करके, बहुत पुत्रों और बलकी इच्छा करके, काम और तप दोनों वर्णीय यस्तुओंका पालन किया था । अगस्त्यने देवोंके पास सत्य आशोर्वाद् प्राप्त किया था ।

१ अश्विनीकुमारों, जिस समय तुम्हारे शोभन गति छोड़ें तुम्हें लेकर अभिमत प्रदेशमें जाते हैं, उस समय तुम्हारे द्विरय्यमय रथकी नेमि अभिमत प्रदान करती है; इसलिये तुम उवाकालमें सोमपान करते हुए यज्ञमें आ मिलो ।

२ सदैवस्तस्य अश्विद्वय, जिस समय तुम्हारी भगिनी-स्थानीय उषा प्रस्तुत होती है, हे मधुपायी अश्विद्वय, जिस समय अन्न और बलके लिये यजमान तुम्हारी स्तुति करता है, उस सम यह तुम्हारा सतत-गन्ता, चित्रिन्नगति-शील, मज्जुष्य हितैषी और विविष्ट रूपसे पूजनीय रथ निम्नाभिमुख जाता है ।

३ अश्विद्वय, तुमने गार्ग्योंमें दुग्ध स्थापित किया है । तुमने गार्ग्योंके अयोदेशमें पूर्ववर्ती पक्व दुग्ध स्थापित किया है । सत्यरूप अश्विद्वय, यत्न-वृक्षावलीके बीच चोरकी तरह सदा जागरूक विशुद्ध-स्वभाव और हविवाला यजमान हविवाले यज्ञमें तुम्हारी स्तुति करता है ।

४ अश्विद्वय, तुमने सहायताकी इच्छावाले अग्नि मुनिके लिये दीप्त दुग्ध और घृतको जल-प्रवाहकी तरह किया था; इसलिये हे नराकार अश्विद्वय, तुम्हारे लिये अग्निमें यज्ञ किया जाता है । निम्न देशमें रथ-चक्रोंकी तरह सोमरस तुम्हारे लिये आता है ।

आ वां दानाय षड्वितीय दत्त्वा गोरोहेण तौग्र्यो न जिघ्रिः ।  
 अपः क्षोणी सचते माहिना वां जूर्णो वामधुरंहसो यजत्रा ॥५॥  
 नि यद्यु वेथे नियुतः सुवानू उप स्वधाभिः सृजयः पुरन्धिम् ।  
 प्रेषद्वेषद्वतो न सूरिशमहे ददे सुव्रतो नवाजम् ॥६॥  
 वथं चिद्धि वां जरितारः सत्या विपन्यामहे वि पणिहितावान् ।  
 अधाचिद्धि ष्माश्विनावनिन्धा पाथो हि ष्मा वृषणावन्तिदेवम् ॥ ७ ॥  
 युवां विद्धिष्माश्विनावनु द्यून्विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ ।  
 अगस्त्यो नरां नृप प्रशस्तः काराधुनीव चितयत् सहस्रैः ॥८॥  
 प्र यद्वहेथं महिना रथस्य प्र स्पन्द्रा याथो मनुषां न होता ।  
 धत्तं सूरिस्य उत वा स्वश्व्यं नासत्या रयिषाचः स्याम ॥९॥  
 तं वां रथं वयमद्या हुवेम स्तोमैरश्विना सुविताय नव्यम् ।  
 अरिष्टनेमिं परि द्यामिथानं विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम् ॥१०॥



५ अश्विनीकुमारो, बड़े तुम राजाके पुत्रकी तरह मैं स्तुति द्वारा अभिमन्यु लाभके लिये तुम्हें यज्ञ-देशमें ले आऊँगा । तुम्हारी महिमासे आवापृथिवी परस्पर मिली है । यजनीय अश्विद्वय, यह जराजीर्ण ऋषि पापमुक्त होकर दीर्घ जीवन लाभ करें ।

६ शोभन दानवाले अश्विद्वय, जिस समय तम नियुक्त वाः-को घाड़ों-में दौड़ाते हो, उस समय अन्नसे पृथिवीको भर देते हो; इसलिये वायुकी तरह स्तोता शीघ्र तुम दोनोंको तृप्त और वश करे । उत्तम वर्मवाले व्यक्तिकी तरह स्तोता, अपने महत्त्वके लिये, अन्न स्वीकार करते हैं ।

७ हम भी तुम्हारे स्तोता और सत्यप्रतिज्ञ होकर विभिन्न स्तव करते हैं । द्रोण-कलश स्थापित हुआ है । हे स्तुतिपात्र और अमीष्टवर्षी अश्विनीकुमारो, देवोंके पास सोमपान करो ।

८ अश्विनीकुमारो, कर्मनिर्वाहक लोगोमें श्रेष्ठ अगस्त्य ऋषि भीष्मके दुःखनिवारक चोतकी प्राप्तिके लिये, शब्द उत्पन्न करनेवाले शङ्ख आदिकी तरह, हजार स्तुतिवर्षों द्वारा तुम्हें प्रतिदिन जगाते हैं ।

९ अश्विनीकुमारो, तुम रथकी महिमासे यज्ञ धारण करो । गति-शील अश्विनीकुमारो, यजमानके होताकी तरह तुम गमनागमन करो । स्तोताओंको बल दो, उत्तम घोड़े दो । फलतः हे नारुत्यद्वय, हम धन प्राप्त करेंगे ।

१० अश्विद्वय, तुम्हारे स्तुतिपात्र, नये आकाशदिहारी अमरन चक्रवाले रथकी प्राप्तिके लिये स्तोत्र द्वारा उसे हलाते हैं । तब हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें ।

१८१ सूक्त । अश्विद्वय देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

कदु प्रेष्ठा चिपां रयीणामध्वयन्ता यदुन्निनीधो अपाम् ।  
 मयं वां यतो मरुतप्रशस्ति वसुधितो अवितारा जनानाम् ॥१॥  
 आ धामश्रवातः शुचयः पयस्प, वातरंहसो दिव्यास्तो अत्याः ।  
 मनोजुयो वृषणो वीतपृष्ठा पद स्वराजो अश्विना वहन्तु ॥२॥  
 आ वां रयो धनिर्न प्रवत्वान्त्सुप्रवन्धुरः सुविताय गम्याः ।  
 वृष्णः स्यातारा मनसो जवीयानहं पूर्वो यजतो धिष्ययायः ॥३॥  
 इहेह जाता समवाचशीतामरेपसा तन्वा नामभिः स्वैः ।  
 जिष्णुर्वामन्यः सुमन्त्रस्य सूरिर्दिवो अन्यः सुमगः पुत्र ऊहे ॥४॥  
 प्र वां निचेहः ककुहो वशां अनु पिशङ्गरूपः सदनानिगम्याः ।  
 हरी अन्यस्य पीपयन्त वाजैर्मथ्ना रजांस्यश्विना विघोषेः ॥५॥  
 प्र वां शम्भान्वृषभो न निः पाट् पूर्वोरिपश्चरति मद्रव इष्णन् ।  
 पधैरन्यस्य पीपयन्त वाजैर्वेषन्तीरुध्वा नद्यो न आगुः ॥६॥

१ त्रिषतम अश्विद्वय, तुम कब अन्न और धनको उपरके देशमें ले जाओगे कि, यज्ञ समाप्त करनेकी इच्छा करते हुए जलको भीचे गिराया जा सकेगा । हे धनधाराके और मनुष्योंके आश्रयदाता अश्विद्वय, इस यज्ञमें तुम्हारी ही प्रशंसा की जाती है ।

२ अश्विद्वय, तुम्हारे बीसियाली, वृष्टिपान करनेवाले, वायुकी तरह वेगवाले, स्वर्गीय गतिशील, मनकी तरह वेगवान् धुवा और क्षोभन घुटवाले अथ तुम्हें इस यज्ञमें ले आवें ।

३ हे ऊँचे स्थानके योग्य और रथासीन अश्विद्वय, भूमिकी तरह अत्यन्त विस्तृत, उत्तम बन्धुवाले, धर्षणसमर्थ, अन्नकी तरह वेगवाले, अहंकारी और यजनीय रथ यज्ञमें ले आवे ।

४ अश्विद्वय, तुमने सूर्य और चन्द्रके रूपसे जन्म ग्रहण किया था और पाप-शून्य हो । तुम्हारे करीर-सौम्य और नाम-महिमाके कारण मैं बार-बार तुम्हारी स्तुति करता हूँ । तुममें एक यज्ञ-प्रवर्तक होकर संसारको धारण करते हैं और दूसरे धुलोकके पुत्र-रूप होकर विविध रश्मियोंको धारण करते हुए संसारको धारण करते हुए हैं ।

५ अश्विद्वय, तुममेंसे एकका श्रेष्ठ और पीतवर्ण रथ, इच्छानुसार, हमारे यज्ञ-गृहमें जाय और एक जनके हरि नामके अरवोंको मनुष्य लोग मधन-निष्पादित खाद्य और स्तुतिसे प्रसन्न करें ।

६ अश्विद्वय, तुम्हारे बीच एक जन मेवोंको विधीर्ण करते हैं । वह इन्द्रकी तरह शत्रुओंको निकालते हुए इन्द्रकी अभिलाषासे, बहुत अन्न-दानके लिये, जाते हैं । दूसरेके मग्नके लिये यज्ञमान लोग हव्य द्वारा उन्हें प्रसन्न करते हैं । उनके द्वारा भेजी हुई उपायक और तल्लचिनी नदियाँ हमारे पास आती हैं ।

असृजि वां स्थविरा वेधसा गीर्वाह्ये अश्विना त्रेधा क्षरन्ती ।

उपस्तुताववतं नाधमानं यामन्नयामन्वृणुतं हवमं मे ॥७॥

उत स्या वां कशतो वप्ससो गीस्त्रिर्बर्हिषि सदसि पिन्वतेनृ न ।

वृषा वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन् ॥८॥

युवां पूषेवाश्विना पुरन्धिरग्निमुषां न जरते हविष्मान् ।

हुवे यद्वां वरिवस्या गृणानो विद्यामेघं वृजनं जीरदानुम् ॥९॥

13826

१८२ सूक्त । अश्विद्वय देवता त्रिष्टुप् छन्द ।

अश्विर्द्वे चयुनसोषु भूषता रथो वृषणान्मदता मनीषिणः ।

धियज्जिन्वा धिष्ण्या विष्पलावसू दिवो न पाता सुकृते शुचित्रता ॥१॥

इन्द्रतमा द्वि धिष्ण्या मरुत्तमा दत्ता दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा ।

पूर्णं रथं वद्वेये मध्व आचितं तेन दाश्वान् समुप याथो अश्विना ॥२॥

७ विधाता अश्विद्वय, पुम्हारी स्थिरताकी प्राप्तिके लिये अस्यन्त स्थिर स्तुतिर्वा बनायी जाती हैं । यह तीन तरहसे पुम्हारे पास जाती हैं । तुम प्रशंसित होकर याचमान यजमानकी रक्षा करो । जाकर या लड़े होकर उसका शास्त्रान् लो ।

८ अश्विद्वय, पुम्हारी प्रदोस स्तुति कुणत्रय-युक्त यज्ञ-साधन द्वारा यजमानोंको प्रसन्न करे । अभीष्ट-वर्षिद्वय, पुम्हारा मेघ जल-वर्षण करते हुए, जल-सेवनकी तरह, मनुष्योंको घन देकर प्रसन्न करे ।

९ अश्विद्वय, पूषाकी तरह बहुत प्रज्ञाशाली और हविष्मान् यजमान, अग्नि और उषाकी तरह, पुम्हारी स्तुति करता है । जिस समय पूजा-परायण स्रोता स्तुति करता है, उस समय यजमान भी स्तुति करता है, जिससे हम अन्न, दल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें ।

१ मनीषी श्रुतिको, हमारी ऐसी धारणा हो रही है कि, अश्विनीकुमारोंका अभीष्टवर्षी रथ उपस्थित है । उसके आगे जाकर उनकी प्रतीक्षा करो । वे पुण्यात्माओंके कर्मको काते हैं । वे स्तुतियोग्य हैं । उन्होंने विष्पलाका भला किया था । वे स्वर्गके नसा हैं । उनका कर्म शुचि है ।

२ अश्विद्वय, तुम अवश्य ही इन्द्रश्रेष्ठ, स्तुति-योग्य, मरुत्श्रेष्ठ, शत्रुनाशक, उत्कृष्टकर्मकारी, रथवान् और रथियों-में उत्तम हो । तुम मनुष्य हो । तुम चारो ओर सन्नद्ध रथको ले जाते हो । उसी रथपर कृपा करके हव्यदाताके पास आओ ।

किमत्र दत्ता कृणुथः किमासाथे जनो यः कश्चिदहविर्महीयते ।  
 अति कमिष्टं जुनं पणेशं ज्योतिर्विप्राय कृणुतं वचस्यवे ॥३॥  
 जम्भयतममिषो रायतः शुनो हतं मृधो विदधुस्तान्यश्विना ॥४॥  
 घाचं घाचं जस्तिरतिनीं कृतमुभा शंसं नासत्यावतं मम ॥५॥  
 युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु पुवमात्मन्धन्तं पक्षिणं तौग्रयाथ कम ॥६॥  
 येम देवना मनसा निरुदधुः सुपसनीपेयथुः क्षोदसो महः ॥७॥  
 अवविद्धं तौग्रयमपस्वन्तरणारम्भणे तमसि प्रविद्धम् ।  
 चतस्रो नावो जठलस्य जुष्टा उदश्विभ्यामिपिताः पारयन्ति ।  
 कः स्विहृक्षो निष्ठितो मध्ये अर्णस्रोथं तौग्रयो ना धितः पर्यषस्वजत् ।  
 पर्णा मृगस्य पतरोरिवारभ उदश्विना ऊदधुः श्रोमताथ कम ॥८॥  
 तद्वां नरा नासत्याचनुप्याद्यद्वां मानास उचथमवोचन् ।  
 ममादध सदसः सोम्यादा विद्यामेधं धृजनं जीरदाधुम् ॥९॥



३ अश्विद्वय, यहाँ क्या करते हो ? यहाँ क्यों हो ? हव्य-दून्य जो कोई व्यक्ति पूजनीय हुआ हो, उसे परास्त करो । पणि या अयाशिकका प्राण नाश करो । मैं मेवावोकी और तुम्हारी स्तुतिका अभिलाषी हूँ । मुझे ज्योति हो ।

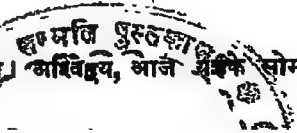
४ अश्विद्वय, जो कुत्तेकी तरह जलन्य शब्द करते हुए हमारे विनाशके लिये आते हैं, उन्हें मष्ट करो । वे डकार करना चाहते हैं, उन्हें मार डालो । उन्हें मारनेका उपाय तुम जानते हो । जो तुम्हारी स्तुति करता है, उसकी प्रत्येक कथाको रत्नवदी करो । नासत्यद्वय, तुम दोनों मेरी स्तुतिकी रक्षा करो ।

५ अश्विद्वय, तुम राजाके पुत्रके लिये तुमने समुद्र-जलमें प्रसिद्ध, बड़ और पक्ष-विशिष्ट नौका बनायी थी । देवोंमें तुमने ही अजुह्व करके नौका द्वारा उसको निकाला था । अनायास आकर तुमने महासमुद्रसे उसका उद्धार किया था ।

६ जलके बीच, निम्नमुख गिराया हुआ तुमपुत्र अवलम्बनरहित अन्धकारके बीच अतीव पीड़ित हुए थे । अश्विद्वयकी प्रेरित जलके बीच प्रविष्ट चार नौकार्य उसे मिली थीं ।

७ तुमपुत्रने बाचमान होकर जलके मध्य जिस निरचल वृक्षका आलिङ्गन किया था, वह वृक्ष क्या है ? अश्विद्वय, तुमने उसे सुरक्षित बठाकर विपुल कीर्ति प्राप्त की है ।

८ नराकर अश्विद्वय, तुम्हारे पूजकोंने जो स्तव किया है, उसे तुम ग्रहण करो । अश्विद्वय, आज तुम्हारे सोम-वाग-सम्पादक स्तोत्रमें प्रती बनी, जिससे हम अन्न, धन और धन प्राप्त करेंगे ।





१८३ सूक्त । अश्विद्वय देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

तं युञ्ज्वां मनसो यो जवीयान्निबन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः ।  
 येनोपयाथा लुहृतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो विर्नपणैः ॥१॥  
 सुधृत्रथो वर्तते यन्नभिक्षां यत्तिष्ठतः क्रतुमन्तानु पृक्षे ।  
 वपुर्वपुष्या सचतामिषं गीर्दिवो दुहिन्नोपसा सच्ये ॥२॥  
 आतिष्ठतं सुवृतं यो रथो धामनुव्रतानि वर्तते हविष्मान् ।  
 येन नरा नास्त्येवयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय तमने च ॥३॥  
 मा वां वृको मा वृकीरावधर्षीन्मा परिवर्त्तमुत मातिधकम् ।  
 अयं वां भागो निहित इयं गीर्वस्त्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥४॥  
 युवां गोतमः पुरुमीहो अत्रिर्दक्षा हवतेवसे हविष्मान् ।  
 दिशं न दिष्टा मृजूयेव यन्ता मे हवं नास्त्योपयातम् ॥५॥  
 अतारिष्म तमस्तरुपरमस्य प्रति धां स्तोमो अश्विनावधाय ।  
 एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेघं शृज्जनं जीरदानुम् ॥६॥

१ अमीष्टवर्षी अश्विद्वय, जो रथ मनकी अपेक्षा भी वेगशाली है, जिसमें तीन सारधि-स्थान और तीन चक्र हैं, जो अमीष्टवर्षी और धातुत्रय-विशिष्ट है, जिस रथपर चढ़कर जैसे पक्षी पक्षोंके बल जाता है, वैसे ही तुम छल्लकारीके घर जाते हो, वसी रथको तैयार करो ।

२ अश्विनीकुमारो, तुम संवत्सपवान् होकर इन्धनके लिये जिस रथपर चढ़ते हो, वही तुम्हारा अग्नी भाँति आवर्त्तनकारी रथ, देवयजनभूमिके सामने, जाता है । तुम्हारे शरीरकी हितकारी स्तुति तुम्हारे साथ मिले । तुम खुल्लोकी पुत्री उषाके साथ मिलो ।

३ अश्विद्वय, जो रथ इविवाले यज्ञमानके कर्मका लक्ष्य करके जाता है, हे नराकार नास्त्यद्वय, तुम जिस रथसे यज्ञ-शाला जानेकी इच्छा करते हो, उसी अच्छी तरह आवर्त्तनकारी रथपर चढ़कर यज्ञमानके पुत्र और अपने हितकी प्राप्तिके लिये यज्ञ-गृहमें जाओ ।

४ अश्विद्वय, तुम्हारी कृपासे बृक और वृकी मुझे न राखें । मुझे छोड़कर दूसरेको दान नहीं करना । अश्विनी-कुमारो, यही तुम्हारा इन्धन-भाग है, यही तुम्हारी स्तुति है, यही तुम्हारे लिये सोमरसका पात्र है ।

५ अश्विद्वय, जैसे मार्ग जाननेके लिये, पथिक पथ-प्रदर्शकको बुलाता है, वैसे ही गौतम, पुरुमीह और अग्नि इन्धन ग्रहण करके लुप्त करनेके लिये तुम्हें बुलाते हैं । अश्विद्वय, मेरे आह्वानके पास आओ ।

६ अश्विद्वय, तुम्हारे अनुग्रहसे हम अन्वकारके पार चले जायेंगे । तुम्हारे उद्देश्यसे यह स्तुति बनायी गयी है । देवोंके गन्तव्य पथ यज्ञमें आओ । वेला होनेपर हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकेंगे ।

चतुर्थ अध्याय समाप्त

## पञ्चम अध्याय



१८४ सूक्त । अश्विद्वय देवता । अनुष्टुप् छन्द ।

ता वामथ तावपरं हुवेमोच्छन्त्यामुषसि वह्निरुवथैः ।  
 नासत्या कुह चित्सन्तावर्यो विवो नपाता सुदास्तराय ॥१॥  
 अस्मे ऊपु घृषणा माषयेथामुत्पणीर्हितभूम्या मदन्ता ।  
 धृतं मे अच्छोर्किर्भर्मतीनामेषा नरा निचेतारा च कर्णैः ॥२॥  
 श्रिगे पूषन्निपूकतेव देवा नासत्या वहतुं सूर्यायाः ।  
 वच्यन्ते पां फकुदा अप्सु जाता युगा जूर्णैव वरुणस्य भूरैः ।  
 अस्मे सा वां माध्वी रातिरस्तु स्तोमं हिनातं मान्यस्य कारोः ।  
 अनु यद्वां ध्रुवस्या सुदानू सुवीर्याय धर्षणयो मदन्ति ॥४॥  
 एष वां रतोमो अश्विनावकारि मानेभिर्मघवाना सुवृक्षि ।  
 यातं धनिस्ननयाय तन्ने वागस्त्ये नासत्या मदन्ता ॥५॥

१ अन्वकारका विनाय करनेके लिये उषाके आनेपर हम आजके यज्ञमें और दूसरे दिनोंके यज्ञमें तुम्हें बुलाते हैं । अश्विनीकुमारो, तुम असत्यशून्य और शुलोदके नेता हो । तुम जहाँ-कहीं रहो, स्तोता आर्य श्रुग्देवीय मंत्र द्वारा, विशिष्ट दानशील यज्ञमानके लिये, तुम्हारी स्तुति करता है ।

२ अमीष्टवर्षी अश्विनीकुमारो, सोमरससे घलवान् होकर तुम हमारी वृत्ति करो और पणियोंका समूह नाश करो । हे नेशुद्र, तुम्हें सामने लानेके लिये हम जो वृत्ति-प्रद स्तुति करते हैं, उसे खनो; क्योंकि तुमलोग स्तुतिके अन्वेषक और सन्वय करनेवाले हो ।

३ नासत्यद्वय, हे सूर्य-चन्द्र-रूपी अश्विनीकुमारो, कसयाणप्राप्तिके लिये, तीरकी तरह, शीघ्रगामी होकर सूर्य-सनकाको ले जाओ । पूर्व युगकी तरह यज्ञ-कालमें सम्पादित स्तुति महान् वरुणको सुष्टिके लिये तुम्हें स्तुत करती है ।

४ मधुपात्रवाले अश्विनीकुमारो, तुम कवि मान्यकी स्तुति अंगीकार करो । तुम्हारा दान हमारे उद्देश्यसे प्रदत्त हो । शुभ-फल-प्रदाता अश्विनीकुमारो, अन्नकी वृद्धासे और वीर्यशाली यज्ञमानके हिसके लिये मनुष्य या पुरोहित तुम्हारे साथ धर्षयुक्त हों ।

५ अन्नवान् अश्विनीकुमारो, तुम्हारे लिये हज्जके साथ यह पाप-विनाशी स्त्रोत्र रचित हुआ है । अश्विनीकुमारो, अगस्त्यके प्रति सन्तुष्ट होकर यज्ञमानके पुत्रादि और अपने छल-भोगके लिये यज्ञ-भूमिमें आगमन करो ।

अतारिष्य तमसरूपारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि ।  
यह यातं पथिभिर्देव यानैर्विद्यामेवं वृजनं जीस्वानुम् ॥६॥

१८५ सूक्त । धावापृथिवी देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

क्षतरा पूर्वा कतरापरायोः कथा जाते कवयः को विवेद ।  
विश्वं स्मना विभृतो यद्ध नाम विचर्तते अह्नो चक्रियेव ॥१॥  
भूरि द्वे अचरन्ती चरन्तं पदन्तं गर्भमपदी दधाते ।  
नित्यं न सूनं पित्रोः रूपस्थे धावा रक्षतं पृथिवीं नो अम्यात् ॥२॥  
अनेहो दात्रमदितेरनर्बं हुवे स्वर्गदवधं नमस्वत् ।  
तद्रोदसी जनयतं जरित्रे धावा० ॥३॥  
अतप्यमाने अवसाचन्ती अनुष्याम रोदसी देवपुत्रे ।  
उभे देवानामुभयेभिरह्नान्धावा० ॥४॥  
संगच्छमाने शुवती समन्ते स्वसारा जामीपित्रोरुपस्थे ।  
अभिजिघ्रन्ती भुवनस्य नाभिं धावा० ॥५॥

६ अश्विनीकुमारो, तुम्हारी कृपासे हम अन्वकारको पार कर जायेंगे । तुम्हारे उद्देशसे यह स्तव रचित हुआ है ।  
देवोंके गन्तव्य पथसे यज्ञमें आओ, ताकि हम अन्न, धन और दीर्घ आयु प्राप्त करें ।

१ कविगण, धु और पृथिवीमें पहले कौन उत्पन्न हुआ है, पीछे कौन उत्पन्न हुआ है, किसलिये उत्पन्न हुए हैं,  
यह बात कौन जानता है ? वे दूसरेके ऊपर निर्भर होकर सारे संसारको धारण करते हैं और दिन तथा रात्रिकी तरह  
चक्रवत् परिवर्चिष होते रहते हैं ।

२ पाद-रहित और अविचल धावापृथिवी पादयुक्त तथा सचक्र गर्भस्थित प्राणियोंको, पिता-माताकी गोदमें  
पुत्रकी तरह, धारण करते हैं । हे धावापृथिवी, हमें महापापसे बचाओ ।

३ हम अदितिसे पापरहित, अक्षीण, हिंसा-रहित, अन्नयुक्त और स्वर्गलुप्त धनके लिये प्रार्थना करते हैं ।  
धावापृथिवी, स्वोत्ता यजमानके लिये, जही धन उत्पन्न करते हो । हे धावापृथिवी, हमें महापापसे बचाओ ।

४ हम प्रकाशमान दिन और रात्रिके उन्नयविध धनके लिये दुःख-रहित और अन्न द्वारा तृप्तिकारी धावा-  
पृथिवीका अनुगमन कर सकें । हे धावापृथिवी, हमें महापापसे बचाओ ।

५ परस्पर संसक्त, सदा तक्षण, समान सीमासे संयुक्त, सगिनीभूत और बन्धु-सहृद धावापृथिवी, पिता-माताके  
क्रोडस्थित और प्राणियोंके नाभि-स्वरूप, जलका धारण करते हुए, हमें महापापसे बचावें ।

उर्वी सञ्जनी बृहती ऋतेन ध्रुवे देवानामवसा जनित्री ।  
 दधाते ये अमृतं सुप्रतीके द्यावा रक्षन् पृथिवी नो अम्वात् ॥६॥  
 उर्वी पृथ्वी बहुले दूरेअन्ते उप ब्रुवे नमसा यक्षे अस्मिन् ।  
 दधाते ये सुभगे सुप्रवर्त्ती द्यावा रक्षन् पृथिवी नो अम्वात् ॥७॥  
 देवान्वा यच्चहृमाकच्चिदागः सखायं वा सधमिज्जारूपतिं वा ।  
 इयं धीर्भूया अवयानमेषां द्यावा रक्षन् पृथिवी नो अम्वात् ॥८॥  
 उमा शंसा नर्या मामविष्टामुमे मामूती अवसा सचेताम् ।  
 भूरि चिद्वर्यः सुदास्तरायेषा प्रवन्त इययेम देवाः ॥९॥  
 ऋतं दिवे तद्वोचं पृथिव्या अभिश्रावाय प्रथमं सुमेधा ।  
 पातामवद्याद्बुदुरितादमोके पिता माता च रक्षतामवोभिः ॥१०॥  
 इदं द्यावा पृथिवी सत्यमस्तु पितृमर्त्यदिहोपबु वेवाम् ।  
 भूतं देवानामक्षमे अवोभिर्विद्यामेधं धृजनं जीरदानुम् ॥११॥



६ देवीकी प्रसन्नताके लिये मैं विस्तीर्ण-निवासभूत, महाब्रुभाव और शस्यादि-समुत्पादक द्यावापृथिवीको ब्रह्मके लिये युक्ता हूँ । इनका रूप आश्चर्य-जनक है और ये जल धारण करते हैं । द्यावापृथिवी, हमें महा पापसे बचाओ ।

७ महान्, पृथु, अनेक आकारोंसे विविष्ट और अनन्त द्यावापृथिवीकी, यक्षस्थलमें, मैं, नमस्कार-मंत्र द्वारा, स्तुति करता हूँ । हे सौभाग्यवती और उदार-कुण्डला द्यावापृथिवी, तुम संसारको धारण करो और हमें महा पापसे बचाओ ।

८ हम देवोंके पास जो सदा अपराध करते हैं, बन्धु और जामाताके प्रति जो सब अपराध करते हैं, हमारा यह यक्ष उन सब पापोंको दूर करे ।

९ स्तुति-योग्य और मनुष्योंके हिसकर द्यावापृथिवी सुभे, आश्रय प्रदान करें । आश्रयदाता द्यावापृथिवी आश्रय देनेके लिये मेरे साथ मिलें । देवो, हम तुम्हारे स्तोता हैं; अन्न द्वारा तुम्हें वृत्त करते हुए प्रचुर दानके लिये प्रचुर अन्न चाहते हैं ।

१० मैं बुद्धिमान हूँ । द्यावापृथिवीके उद्देशसे चारो दिशाओंमें प्रकाशके लिये मैंने अत्युत्तम स्तोत्र किया है । पिता-माता निन्दनीय पापसे हमें बचावें तथा हमें सदा पासमें रखकर वृत्तिकर वस्तु द्वारा पालित करें ।

११ हे पिता और हे माता, तुम्हारे लिये इस यज्ञमें मैंने जो स्तोत्र पढ़े हैं, उन्हें सार्थक करो । द्यावापृथिवी, आश्रय-दान द्वारा तुम स्तोताओंके समीपवर्ती बनो, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त करें ।

१८६ सूक्त । विश्वेदेवगण देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

आ न इदमिर्विदधे सुशस्ति विश्वानरः सविता देव एतु ।  
 अपि यथा युवानो मत्सथानो विश्वं जगदमिपित्वे मनीषा ॥१॥  
 आ नो निश्च आस्ता गमन्तु देवा मित्रो अर्यमा वरुणः सजोपाः ।  
 भुवन् यथा नो विश्वे वृधासः करन्तसुपाहा विधुरं न शवः ॥२॥  
 प्रेष्टं वो अतिथिं गृणीपेग्निं शस्तिमिस्तुर्वेणिः सजोपाः ।  
 असद्यथा नो वरुणः सुफीन्तिरिपश्च पर्पदरिगूर्तः सूरिः ॥३॥  
 उप न एपे नमसा जिगीपोपासावका ह्युधेव धेनुः ।  
 समाने अहन्विमिमानो अर्कं विधुरूपे पयसि सस्मिन्नूध्र ॥४॥  
 एत नोहिर्वृध्न्योमयस्कः शिशुं न पिप्पुषीव वेति सिन्धुः ।  
 येन नपातमपां जुनाम मनोजुवो वृषणो यं वहन्ति ॥५॥  
 उत न ईं त्वष्टागन्तवच्छा स्मत् सूरिमिरमिपित्वे सजोपाः ।  
 आ वृत्रहेन्द्रश्चर्षणिप्रास्तुविष्टमो नरां न इह गम्याः ॥६॥  
 उत न ईं मतयोश्चयोगाः क्षिशुं न गावस्तरुणं रिहन्ति ।  
 तमीं गिरो जनयो न पत्नीः सुरभिष्टमं नरां नसन्त ॥७॥

१ अग्नि और सविता हमारी स्तुतिवशोंके कारण भूस्थानीय देवोंके साथ यज्ञ-स्थलमें आवें। युवकगण, हमारे प्रसन्न हृदयपूर्वक आकर सारे जगत्की तरह हमें भी प्रसन्न करो।

२ शत्रुओंके आक्रमण-कर्ता मित्र, वरुण और अर्यमा ये सब समान प्रीति-युक्त होकर आगमन करें। हमारे सब बर्द्धयिता हों और शत्रुओंको परास्त करके, जिस प्रकार हमारा अन्न हीन न हो, ऐसा करें।

३ देवगण, मैं क्षिप्रकारी और तुम्हारी तरह प्रीति-युक्त होकर तुम्हारे श्रेष्ठ अतिथि (अग्नि) की स्तुति-मन्त्रों द्वारा स्तुति करता हूँ। उत्तम कीर्तिवाले सूरि वरुण हमारे हो हों। वरुण शत्रुओंके प्रति हुंकार करते हुए अन्न द्वारा हमें परिपूर्ण करें।

४ देवो, दिन-रात नमस्कार करते हुए, पाप-विजयके लिये, दुरधवती धेनुकी तरह तुम्हारे पास उपस्थित होते हैं। हम, यथासमय, अथः स्थानसे एक मात्र उत्पन्न नाना रूप साथ द्रव्य मिश्रित करके लाये हैं।

५ अहिर्बुध्ननामक अन्तरिक्षचारी देव हमें छल दें। सिन्धु, वत्सकी तरह, हमें प्रसन्न करें। हम जलके नष्टा अग्निदेव स्तुति करते हुए प्राप्त हुए हैं। मनकी तरह वेगवाली मेघ उन्हें ले जाते हैं।

६ त्वष्टा हमारे सामने आवें। यज्ञके कारण त्वष्टा स्तोताओंके साथ समान-प्रीति-सम्पन्न हों। असीव विशाल, वृत्रघातक और मनुष्योंके अमीष्ट-पूरक इन्द्र हमारे यज्ञस्थलमें आवें।

७ जैसे गाथें बछड़ोंको चाटती हैं, वैसे ही अश्वमुख्य हमारा मन तरुण इन्द्रकी स्तुति करता है। जैसे स्त्रियाँ पतिको प्राप्त कर सम्मानवाली होती हैं, वैसे ही हमारी स्तुति, अतिथय यज्ञोयुक्त इन्द्रको प्राप्तकर फल उत्पन्न करती है।

उत न ईं भरुतो वृद्धसेनाः स्मद्रोदसी समनसः सदन्तु ।  
 पृषदश्वासोवनयो न रथा रिशादसो मित्रयुजो न देवाः ॥८॥  
 म सु यदेपां महिना चिकित्रे प्रयुजते प्रयुजस्ते सुवृत्ति ।  
 अध यदेपां सुदिने न शरुर्विश्वमेरिणं प्रुषायन्त सेनाः ॥९॥  
 प्रो अश्विनाचवसे कृणुध्वं प्रपूषणं स्वतवसो हि सन्ति ।  
 अद्वेपो विष्णुर्वात ऋभुक्षा अच्छा सुम्नाय ववृषीय देवान् ॥१०॥  
 इर्य सा वो अस्मे दीधितियंजत्रा अपि प्राणी च सदनी च भूयाः ।  
 नि या देवेषु यतते वसूयुर्विद्यामेपं जीरदानुम् ॥११॥



१८७ सूक्त । पितु देवता । गायत्री और अनुष्टुप् छन्द ।

पितुं तु स्तोतॄणां महो धर्माणं तविषीम् । यस्य त्रितो व्योजसा घृत्रं विपर्धमर्धयत् ॥१॥  
 स्वादो पितो मधो पितो वयं त्वा ववृमहे । अस्माकमविता भव ॥२॥  
 उप नः पितवाचर शिवः शिवाभिरुतिभिः॥ मयोभुरद्विपेयः सखा सुशेवो अद्वयाः ॥३॥

८ अतोय बलशाली, समान-प्रोति-युक्त, पृषत् नामक अश्वसे सङ्गपन्न, अवनतस्वभाव और शत्रु-भक्षक भरु-गात्र, मेनोवाले ऋषियोंकी तरफ, यावापृथिवीके पासले एकत्र हमारे इस यज्ञमें आवें ।

९ भरुओंकी महिमा प्रसिद्ध है; क्योंकि वे स्तुतिका प्रयोग जानते हैं । अनन्तर, जैसे प्रकाश संसारको व्याप्त करता है, वैसे ही छदिनमें अन्धकार-विनाशक भरुओंकी घृष्टि-प्रद सेना सारे अनुवर् देशोंको उत्पादिका शक्तिले सङ्गपन्न करती है ।

१० ऋषिोंकी, हमारी रक्षाके लिये अश्विनीकुमारों और पूषाकी स्तुति करो । दृष-शून्य विष्णु, वायु और इन्द्र (ऋभुक्षा) नामके स्वतंत्र बल-विशिष्ट देवोंकी स्तुति करो । सुखके लिये मैं सारे देवोंको सामने लाऊंगा ।

११ यज्ञनीय देवों, तुम्हारी प्रसिद्ध ज्योति हमारे लिये प्राणदाता और निवास-स्थान बने । तुम्हारी अन्नवती ज्योति देवोंको प्रकाशित करे, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें ।

१ मैं, क्षिप्रकारी होकर, विशाल, सबके धारक और बलात्मक पितु (अन्न)की स्तुति करता हूँ । उनकी ही शक्तिले त्रितदेव या इन्द्रने घृत्रकी सन्धियाँ काटकर उसका वध किया था ।

२ हे स्वादु पितु, हे मधुर पितु, हम तुम्हारी सेवा करते हैं । तुम हमारी रक्षा करो ।

३ हे पितु, तुम संगलमय हो । कल्याणदात्री आश्रयदाता द्वारा हमारे पास आकर, हमें सुख दो । हमारे लिये तुम्हारा रस अप्रिय न हो । तुम हमारे लिये मित्र और अश्विनीय सुलभ बनो ।

तव त्वे पितो रसा रजांस्यनुविष्टिताः । दिवि वाता इव श्रिताः ॥४॥  
 तव त्वे पितो द्रवतस्तव स्वादिष्टते पितो । प्र स्वाद्भुमानो रसानां तुविप्रीवा इवेरते ॥५॥  
 त्वे पितो महानां देवानां मनोहितम् । अकारि चारु केतुना तवाहिमवसावधीत् ॥६॥  
 यद्वो पितो अजगन्विधस्व पर्वणानाम् । अत्राचिन्नो मधो पितोरम्मक्षाय गम्याः ॥७॥  
 यदपामोषधीनां परिसमारिशामहे । वातापे पीव इद्भव ॥८॥  
 यत्ते सोम गवाशिरो यवाशिरो भजामहे । वाता पे पीव इद्भव ॥९॥  
 कस्मभ ओषधे भव पीवो वृकः उदारथिः । वातापे पीव इद्भव ॥१०॥  
 तं त्वा वयम् पितो बचोमिर्गावो न हव्या सुषूदिम ।  
 देवेभ्यस्त्वा सधमादमस्मभ्यं त्वा सधमादम् ॥११॥

१८८ सूक्त । आसी देवता । गायत्री छन्द ।

समिद्धो अद्य राजसि देवो देवैः सहस्रजित् । दूती हव्या कविर्वह ॥१॥

४ पितु, जैसे वस्तु अन्तरीक्षकाभ अथ किये हुए हैं, वैसे ही तुम्हारा रस सारे संसारके अनुकूल व्याप्त है ।

५ स्वाद्भुतम पितु, जो लोग तुम्हारी प्रार्थना करते हैं, वे भोक्ता हैं । पितु, तुम्हारी कृपासे वे तुम्हें दान देते हैं । तुम्हारे रसका आस्वादन करनेवालोंकी गर्वन ऊँची या मजबूत होती है ।

६ पितु, महान देवोंने तुममें ही मन निहित किया है । पितु, तुम्हारी चाप बुद्धि और आभय द्वारा ही अहिका बध किया गया था ।

७ पितु, जिस समय मेघ प्रसिद्ध जलको लाते हैं, उस समय हे मधुर पितु, हमारे सम्पूर्ण अोजनके किये पास जाना ।

८ चूँकि हम यथेष्ट जल और यव आदि ओषधियोंको खाते हैं; इसलिये हे शरीर, तुम स्थूल बनो ।

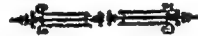
९ सोम, तुम्हारे यव आदि और दुग्ध आदिसे मिश्रित अंशका हम भक्षण करते हैं । इसलिये हे शरीर, तुम स्थूल बनो ।

१० हे कस्मभ ओषधि या सत्पिण्ड, तुम स्थूलता-सम्पादक, रोग-निवारक और हन्त्रियोद्दीपक बनो । हे शरीर, तुम स्थूल बनो ।

११ पितु, गायोंके पास जैसे हव्य गृहीत होता है, वैसे ही तुम्हारे पास स्तुति द्वारा हम रस ग्रहण करते हैं । यह रस देवोंको ही नहीं, हमें भी दृष्ट करता है ।

१ अग्नि, ऋत्विर्को द्वारा अली भाँति आज समिद्ध नामक अग्नि उद्योभित होते हैं । हे सहस्रजित् देव, तुम कवि और वृत्त हो । तुम अली भाँति हव्य ग्रहण करो ।

तनूनपादृतम् यते मध्वा यज्ञः समज्यते । दधत् सहस्रिणीरिपः ॥२॥  
 आजुह्वानो न इक्ष्यो देवाँ आवक्षि यक्षियान् । अग्ने सहस्रसा अक्षि ॥३॥  
 प्राचीनं बर्हिरोजसा सप्तस्रवीरमस्तृणन् । यज्ञादित्या विराजथ ॥ ४ ॥  
 विराट् सप्तारुविम्बोः प्रम्बोर्वह्नीश्च भूयसीश्च याः । दुरो घृतान्यक्षरन् ॥५॥  
 सुरुक्मे हि सुपेशसाधिश्रिया विराजतः । उपासावेह सीदताम् ॥६॥  
 प्रथमा हि सुवाचसा क्षीतारा दैव्या कवी । यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥७॥  
 भारतीदे सरस्वति यावः सर्वा उपत्र वे । ता नश्चोदयतः श्रिये ॥८॥  
 त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः पशून्विश्वान्तसमानजे । तेषां नः स्फातिमा यज ॥९॥  
 उपत्मन्या वनस्पते पाथो वैदेभ्यः सृज । अग्निर्हव्यानि सिष्वदत् ॥१०॥  
 पुरोगा अग्निर्दवानाम् गायत्रेण समज्यते । स्वाहाकृतीषु रोचते । ॥११॥



१८६ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।

युयोध्यस्मज्ज हुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम ॥१॥

२ पूजनीय तनूनपात् नामक अग्नि हजार प्रकारोंसे अन्न धारण करके, यजमानके लिये, मधुर रससे युक्त द्रव्यमें मिळते हैं ।

३ हे इक्ष्य नामक अग्नि, तुम हमारे द्वारा आहुत होकर हमारे लिये यज्ञभागी देवोंको बुलाओ । अग्नि, तुम असीम अन्नके दाता हो ।

४ सहस्र बीरोंवाले और पूर्वामिमुखमें अन्न भागसे युक्त जिस अग्निरूप कुण्डपर आदित्य लोग बैठे हैं, उसे ऋत्विक् लोग, मंत्रके प्रभावसे, आच्छादित करते हैं ।

५ यज्ञशालाका विराट्, सप्तारु, विभु, प्रभु, बहु, और भूयान् ( अग्निरूप ) द्वार जल गिराता है ।

६ क्षीत आभरणसे युक्त और सुन्दर-रूप-संयुक्त अग्नि रूप दिवा-रात्रि, अतीव शोभाशाली होकर विराजित होते हैं । वे यहाँ बैठे ।

७ वह अत्युत्तम और प्रियभाषी अग्निरूप देव होता तथा दिव्य कवि-द्वय हमारे यज्ञमें उषस्थित हों ।

८ हे अग्निरूपिणी भारती, सरस्वती और इला, मैं तुम सबको बुलाता हूँ । जैसे मैं सम्पत्तिशाली हो सकूँ, वैसा करो ।

९ अग्निरूप त्वष्टा रूप देनेमें समर्थ हैं । वह सारे पशुओंका रूप व्यक्त करते हैं । त्वष्टा, हमें बहुत पशु दो ।

१० हे अग्निरूप वनस्पति, तुम देवोंका पशु रूप अन्न उत्पन्न करो । अग्नि सब पद्योंको स्वादिष्ट करें ।

११ देवोंके अन्नगामी अग्नि गायत्री छन्दसे लक्षित हुआ करते हैं । स्वाहा देनेके समय वह प्रदीप्त होते हैं ।

१ क्षीतिविशिष्ट अग्नि, तुम सब प्रकारके ज्ञान जानते हो; इसलिये हमें समार्गपर, घनकी ओर, ले जाओ । तुम कृत्तिक पापको हमारे पाससे ले जाओ । हम बार-बार तुम्हें प्रणाम करते हैं ।



अग्ने त्वं पारया नव्यो अस्मान्स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।  
 पूश्च पृथ्वी बहुला न उर्वीभवा तोकाय तनयाय शंथोः ॥२॥  
 अग्ने त्वमस्मद्युयोध्यमीवा अनग्नित्रा अभ्यमन्त कृष्टीः ।  
 पुनरस्मभ्यं सुविताय देव क्षां विश्वेमिरमृतेभिर्यज्ञत्र ॥३॥  
 पाहि नो अग्ने पायुभिरजस्रैरुत प्रिये सदन आ शुशुक्वान्  
 मा ते भयं जरितारं यविष्ठ नूनं विदन्मापरं सहस्वः ॥४॥  
 मा नो अग्नेव सृजो अघायाविष्यवे रिषवे दुच्छुनायै ।  
 मा वृत्वते दशते मादते नो मा रीपते सहसावन् परा दाः ॥ ५ ॥  
 वि घ त्वावाँ ऋतजात यंसद्वृणानो अग्ने तन्वे वरूथम् ।  
 विश्वाङ्गिरिक्षोक्त वा निनित्सोरमिह तामसि हि देव विष्पद् ॥ ६ ॥  
 त्वं ताँ अग्न उभयान्विविद्वान्वेपि प्रपित्वे मनुषो यजत्र ।  
 अभिपित्वे मनवे शास्यो भूर्ममृजेन्य उशिग्मिर्नाकः ॥७॥

१ अग्नि, तुम नये हो । स्तुतिके कारण हमें तुम सारे दुर्गम पापोंसे मुक्त करो । हमारा नगर अतीव प्रशस्त हो । हमारी भूमि प्रशस्त हो । तुम हमारे पुत्रों और अपत्योंको सुख प्रदान करो ।

२ अग्नि, तुम हमारे पाससे सब रोग दूर करो । जो अग्निहोत्र नहीं करते या जो हमारे विद्रोही हैं, उन्हें भी हटाओ । देव, तुम हमें शोभन फल देनेके लिये सारे मरण-रहित देवोंके साथ यज्ञशालामें आओ ।

४ अग्नि, तुम सतत आश्रय-दान द्वारा हमें पालित करो । हमारे प्रिय यज्ञ-गृहमें चारो ओर दोसि-पुच्छ बनो । युवक अग्नि, मैं तुम्हारा स्तोत्रा हूँ । मुझे आज और न पीछे कभी भय उत्पन्न हो ।

५ अग्नि, हमें अन्नप्राप्ति, हिंसक और क्षुभनाशक शत्रुके हाथमें नहीं समर्पण करना । हमें दन्त-विशिष्ट और दंष्टक सर्प आदिके हाथमें नहीं सौंपना; दन्त-शून्य ऋगादिवाले पशुओंको नहीं सौंपना । बलिष्ठ अग्नि, हिंसक और, राक्षस आदिके हाथ भी हमें नहीं सौंपना ।

६ यज्ञोत्पन्न अग्निदेव, तुम धरणीय हो । शरीर पुष्टिके लिये स्तुति करते हुए लोग तुम्हें प्राप्त करके सारे हिंसक और निन्दक व्यक्तियोंके हाथोंसे अपनेको बचाते हैं । अग्नि, जो सामने कुटिल आचरण करते हैं, ऐसे दुष्टका तुम दमन करो ।

७ यज्ञनीय अग्नि, तुम यज्ञ करनेवाले और न करनेवाले लोगोंको जानकर यज्ञकर्त्ताकी ही कामना करो । आक्रमणकारी अग्नि, पवित्रताभिलाषी यजमान जैसे ऋत्विक्के लिये शिक्षणीय है, उसी प्रकार तुम भी, यथासमय, यजमानके शिक्षणीय हो ।

अयोचाम निषचनान्यस्मिन्मानस्य स्रुः सहस्रानि अग्नौ ।  
वयं सहस्रमृषिभिः सनेम विद्यामेपं वृजनम् जीरदानुम् ॥ ८ ॥

१६० सूक्त । बृहस्पति देवता । त्रिष्टुप्छन्दः ।

अनर्घाणि धूपमं मन्द्रजिह्वम् बृहस्पतिं वर्धयानव्यमकैः ।  
गाथान्यः सुरुचो यस्य देवा आश्रुण्वन्ति नवमानस्य मर्ताः ॥ १ ॥  
तमृत्विष्या उपवाचः सचन्ते सर्गो न यो देवयतामसर्जि ।  
बृहस्पतिः सद्यज्ञो वरांसि विन्वाभवत्समृते मातरिष्व ॥ २ ॥  
सपस्तुति नमस उद्यति च श्लोकं यंसत् सविदेव प्रावहू ।  
अस्य क्रत्वाह्न्यो यो अस्ति मृगो न भीमो अरक्षसस्तुविष्मान् ॥ ३ ॥  
अस्य श्लोका दिवीयते पृथिव्यामत्यो न यंसद्यक्षभृद्विचेताः ।  
मृगाणां न हेतयो यन्ति चेमा बृहस्पतेरहिमायां अभिद्यून ॥ ४ ॥  
ये त्वा देवोस्त्रिकं मन्यमानाः पापा भद्रमुपजीवन्ति पज्राः ।  
न दूढये अनुवदासि धामं बृहस्पते चयस इत्पियारुम् ॥ ५ ॥

८ मंत्र-पुत्र और शत्रुनाशक इन अग्निके लिये ये सारे स्तोत्र बनाये गये हैं । हम इन अतोन्मिय-प्रकाशक मंत्रों द्वारा सहस्र धन प्राप्त करेंगे । हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें ।

१ होता, अनीष्टवर्षी मिष्टजिह्व और स्तुतियोग्य बृहस्पतिको पूजा-साधक मंत्रों द्वारा वर्द्धित करो । वह स्तोत्राको नहीं छोड़ते । दीप्तियुक्त और स्वयमान बृहस्पतिको गाथा-पाठक देवगण और मनुष्यगण स्तुति सुनाते हैं ।

२ वर्षा शत्रु-सम्बन्धिवनी स्तुतियाँ सृजन-कर्तृ-रूप बृहस्पतिके पास जाती हैं । वह देवाभिलाषियोंको फल देते हैं । वह सारे विरघको व्यक्त करते हैं । वह स्वर्गव्यापी मातरिष्वकी तरह वरणीय फल उत्पन्न करके यज्ञके लिये सम्मूत हुए हैं ।

३ जैसे सूर्य किरणें प्रकाशित करनेकी चेष्टा करते हैं, वैसे ही बृहस्पति, यजमानोंकी स्तुति, अन्न, दान और मंत्रोंके स्वीकारके लिये चेष्टा करते हैं । राक्षसों और शत्रुओंसे शून्य बृहस्पतिकी शक्तिसे दिवसकाकीन सूर्य भयंकर जगत्सुकी तरह बलशाली होकर धूमते हैं ।

४ भूलोक और पृथुलोकमें बृहस्पतिकी कीर्ति व्याप्त होती है । बृहस्पति सूर्यकी तरह पूजित हव्य धारण करते हैं । वह प्राणिजोंमें चैतन्य प्रदान करते और फल देते हैं । बृहस्पतिका आयुष्य शिकारी पुष्पोंके आयुष्यकी तरह जाता है । उनका आयुष्य मायाविषोंके सामने प्रतिदिन दौड़ता है ।

५ बृहस्पति, जो पापी लोग कृत्यणवाही बृहस्पतिको बूढ़ा बैल जानते हैं, उन्हें तुम वरणीय धन नहीं देना । बृहस्पतिदेव, जो सोमयज्ञ करता है, उसपर तुम अवश्य कृपा रक्षते हो ।

सुप्रैतुः द्रुयवसो न पन्था दुर्नियंतुः परिप्रीतो न मितः ।  
 अनर्वाणो अभि ये चक्षतेः नोपीवृता अपार्णुषन्तो अस्थुः ॥६॥  
 सं यं स्तुभोवनयो न यन्ति समुद्रं न खवतो रोधचक्राः ।  
 स विद्वां उभयं चष्टे अस्तवृद्धस्पतिस्तर आपश्च गृध्रः ॥७॥  
 एवामहस्तुविजातस्तुविष्मान्वृहस्पतिवृषभो धायि देवः ।  
 स नःस्तुतो वीरवद्भ्रातु गोमद्विधामेपं वृजतं जीरदानुम् ॥८॥



१११ सूक्त । जल, तृण और सूर्य देवता । त्रिष्टुप् और महा पंक्ति छन्द ।

कङ्कषो न कङ्कतोथो सतीनकङ्कतः ।  
 द्वाविति प्लुषी इति न्यद्वष्टा अलिप्सत ॥१॥  
 अद्वष्टान् हन्त्यायत्यथो हन्ती परायती ।  
 अथो अवचनती हन्त्यथो पिनष्टि पिपती ॥२॥  
 शरासः कुशरासो दर्मासः सैर्या उत ।  
 मौञ्जा अद्वष्टाः वैरिणाः सर्वे साकं न्यलिप्सत ॥३॥

६ बृहस्पति, तुम हलगामी और सखाद्य-विशिष्ट यजमानके मार्गरूप और दुष्टहन्ता राजाके बन्धु हो । जो हमारी निन्दा करते हैं, उनके सुरक्षित होनेपर भी, उन्हें रक्षा-शून्य करो ।

७ जैसे मनुष्य राजासे मिलता है, तद्व्यवर्त्तिनी नदी जैसे समुद्रमें मिलती है, वैसे ही सारी स्तुतिर्वाँ बृहस्प-  
 तिमें मिलती हैं । वह विद्वान् हैं । आकाशचारी पक्षीकी तरह बृहस्पति-रूपसे जल और तट, दोनोंको देखते हैं ।  
 अथवा वृष्टिकामी अभिज्ञ बृहस्पति, मध्यमें स्थित होकर तट और जल दोनोंको उत्पन्न करते हैं ।

८ इसी रूपसे बृहस्पति महान्, बलवान्, अभीष्टवर्षी, क्षीप्तिमान् होकर और बहुतोंके उपकारके लिये उत्पन्न  
 हुए हैं । उनका स्तव करनेपर वह हमें वीर-विशिष्ट करें, ताकि हम अन्न, बल और दीर्घ आयु प्राप्त कर सकें ।

१ अल्प विषवाले, महा विषवाले, जलीय अल्प विषवाले, दो प्रकारके, जलचर और स्थलचर, दाहक प्राणी  
 तथा अदृश्य प्राणी मुझे विष द्वारा, अच्छी तरह, लिप्त किये हुए हैं ।

२ जो औषध खाता है, वह अदृश्य विषधर प्राणीको विनष्ट करता है और प्रत्यावर्त्तन कालमें उसे विनष्ट करता  
 है । बिनाशके समय नाश करता और पिते जानेके समय पिसता है ।

३ शर, कुशर, दर्म, सैर्य, मुञ्ज वीरण, आदि वासोंमें छिपे विषधरण मिलकर मुझे लिप्त करते हैं ।

नि गावो गोष्ठे असहन्नि मृगासो अविक्षत ।  
 नि केतवो जनानां न्यदृष्टा अलिप्सत ॥४॥  
 एत छत्ये प्रत्यदृशन्प्रदोषं तत्करा इव ।  
 अदृष्टा विश्वदृष्टाः प्रतिबुद्धा अभूतन ॥५॥  
 द्यौर्धः पिता पृथिवी माता सोमो आतादितिः स्वसा ।  
 अदृष्टा विश्वदृष्टास्तिष्ठतेलयता सु कम् ॥६॥  
 ये अस्या ये अंग्याः सूचीका ये प्रकङ्कताः ।  
 अदृष्टाः किञ्चनेह यः सर्वं साकं नि जस्यत ॥७॥  
 उत् पुरस्तात् सूर्य एति विश्वदृष्टो अदृष्टहा ।  
 अदृष्टान्तसर्वाञ्जं भयनत्सर्वाश्च यातुधान्यः ॥८॥  
 उदपतदसौ सूर्यः पुरु विश्वानि जूर्ध्वम् ।  
 आदित्यः पर्वतेभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥९॥

४ जिस समय गाये गोष्ठमें बैठी रहती हैं, जिस समय हरिण, अपने-अपने स्थानोंपर, विभ्राम करते हैं और जिस समय मनुष्य निद्रामें रहता है, उस समय अहरय विषय मुझे लिप्त किये हुए हैं।

५ तत्करकी तरह उन सबको रातको देखा जाता है। वे, अहरय होनेपर भी, सारे संसारको देखते हैं; इसलिये मनुष्य सावधान हो जायें।

६ स्वर्ग पिता, पृथिवी माता, सोम आता और अदिति अग्निनी हैं। अदृष्ट-समक्षी लोग, तुम लोग अपने-अपने स्थानपर रहो और यथासंभव गमन करो।

७ जो विषय सकलधराते हैं, जो अंगवाले (सर्प) हैं, जो सूचीवाले (दुग्धिकादि) हैं, जो अतीव विषय हैं, वेसे अदृष्ट विषयगणका यहाँ क्या है? तुम सब लोग हमारे पाससे चले जाओ।

८ पूर्व दिशामें सूर्य उगते हैं, वह सारे संसारको देखते और अदृष्ट विषयोंका विनाश करते हैं। वह सारे अदृष्टों और वासुधात्री [ राक्षसी वा महोरगी ] का विनाश करते हैं।

९ सूर्य, बड़ी संख्यामें, विषोंका विनाश करते हुए, उदित होते हैं। सर्वदक्षी और अहरयोंके विनाशक आदित्य जीवोंके अंगुलके लिये उदित होते हैं।

सूर्ये विषमा सजामि द्रुतिं सुरावतो गृहे ।  
 सो चिन्त न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनम्  
 हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१०॥

इयत्तिका शकुन्तिका सका जघास ते विषम् ।  
 सो चिन्तु न मराति नो वयं मरामारे अस्य योजनम्  
 हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥११॥

त्रिः सप्त विष्णुलिङ्गका विषस्य पुष्पमक्षम् ।  
 ताम्रिन्तु न मरान्ति नो वयं मरामारे अस्य योजनम्  
 हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१२॥

नवानां नवतीनां विषस्थ रोपुषीणाम् ।  
 सर्वासामग्रमं नामारे अस्य योजनम्  
 हरिष्ठा मधु त्वा मधुला चकार ॥१३॥

त्रिः सप्त मयूर्यः सप्तसंवसारो अग्रवः ।  
 तास्ते विषं विजग्मिर उदकं कुम्भिनीरिव ॥१४॥

१०. सूर्यदेवकी वरमें चर्ममय घ्राणात्रकी तरह मैं सूर्यमण्डलमें विष फैकता हूँ । जैसे पूजनीय सूर्यदेव प्राण-त्याग नहीं करते, वैसे ही हम भी प्राण-त्याग नहीं करते । अश्व द्वारा चालित होकर सूर्यदेव दूरस्थित विषको दूर करते हैं । विष, मधुविद्या तुम्हें अमृतमें परिणत कर देती है ।

११ जैसे क्षुद्र शकुन्तिका पक्षीने तुम्हारा विष खाकर बगल दिया है, जैसे उसने प्राण त्याग नहीं किया, वैसे ही हम भी प्राण-त्याग नहीं करेंगे । अश्व द्वारा परिचालित होकर सूर्यदेव दूरस्थित विषको दूर करते हैं । विष, मधुविद्या तुम्हें अमृतमें परिणत करती है ।

१२ अग्निकी सातों जिह्वाओंमेंसे प्रत्येकमें श्वेत, लोहित और कृष्ण आदि तीन वर्ण अथवा २१ प्रकारके पक्षी विषकी पुष्टिका विनाश करते हैं । वे कभी नहीं मरते; वैसे ही हम भी प्राण-त्याग नहीं करते । अश्व द्वारा परिचालित होकर सूर्य दूरस्थित विषका अपनयन करते हैं । विष, मधुविद्या तुम्हें अमृतमें परिणत करती है ।

१३ मैं सारी विष-नाशक विन्यासवे नदियोंके नामोंका कोर्तन करता हूँ । अश्व द्वारा चालित होकर सूर्यदेव दूर-स्थित विषका अपनोदन करते हैं । विष, मधुविद्या तुम्हें अमृत बना देगी ।

१४ जैसे स्त्रियाँ वड़में जल ले जाती हैं, हे देह, वैसे ही २१ मयूरियाँ (पक्षी) और सात नदियाँ तुम्हारा विष दूर करे ।

इयत्तकः कुषुम्भकस्तकं भिनद्म्यश्मना ।

ततो विषं प्र वावृते पराचोरनुसंवतः ॥१५॥

कुषुम्भकस्तद्व्रवीद्गिरेः प्रवर्तमानकः ।

वृश्चिकस्यारसं विपमरसं वृश्चिक ते विषम् ॥१६॥

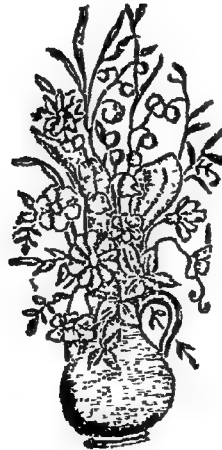
१५ देह, अतोव छोटा नकुल तुम्हारा विष दूर करे । यदि न करे, तो मैं इस कुहिसत जन्तुको लोष्ट्र द्वारा मार डालूँगा । मेरे शरीरसे विष दूर हो और दूर देशमें चला जाय ।

१६ पर्वतसे आकर, उस समय, नकुलने कहा—“वृश्चिकका विष रस-शून्य है ।” हे वृश्चिक, तुम्हारा विष रसशून्य है ।

पञ्चम अध्याय समाप्त



प्रथम मण्डल समाप्त





# द्वितीय मण्डल

२ अष्टक । २ मण्डल । ५ अध्याय । १ अनुवाक । १ सूक्त ।

अग्नि देवता । गृत्समद ऋषि ।\* जगती छन्द ।

त्वमग्ने धुमिस्त्वमाशुशुक्षणिस्त्वमद्रुम्यस्त्वमश्मनरूपरि ।

त्वं वनेभ्यस्त्वमोषधोभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः ॥१॥

तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्विषं तव नेष्टं त्वमग्निद्विषयतः ।

तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरोयसि प्रह्ला वासि गृहपतिश्च नो दमे ॥२॥

१ मनुष्यों के स्थायी अग्निदेव, यज्ञ-दिनमें तुम उत्पन्न होओ। सर्वता दीक्षिणाही होकर उत्पन्न होओ। पवित्र होकर उत्पन्न होओ। जलमें उत्पन्न होओ। पाषाणसे उत्पन्न होओ। वनसे उत्पन्न होओ। ओषधिते उत्पन्न होओ।

२ अग्निदेव, होता, पोता, ऋत्विक् और नेष्टा आदिका कार्य तुम्हारा ही कर्म है। तुम अग्नीध्र हो। जिस समय तुम यज्ञ की इच्छा करते हो, उस समय प्रशास्ता का कर्म भी तुम्हारा ही है। तुम्हीं अध्वर्यु और प्रह्ला नामके ऋषि हो। हमारे घरमें तुम ही गृहपति हो।\*

ॐ ऋग्वेदके प्रथम और द्वयम मण्डलके रचयिता अनेक ऋषि हैं; परन्तु अवशिष्ट मण्डलके एक-एक ऋषि और उनके वंशीय हैं। जिन मण्डलके जो ऋषि रचयिता हैं, उनके नाम ये हैं—२य के गृत्समद, ३य के विश्वामित्र ४ गे के वामदेव, ५मके अत्रि, ६ षके भारद्वाज, ७मके वसिष्ठ, ८ मके कण्व और ९ मके अङ्गिरा ऋषि या इन ऋषियों के वंशोद्भूत रचयिता हैं।

कहा जाता है, अङ्गिरा ऋषि के वंशीयगु नक्षत्र ऋषि के पुत्र का नाम गृत्समद था। एक बार अछर लोग गृत्समद को पकड़ ले गये। पीछे इन्होंने गृत्समद का उद्धार किया और उनको भृगुवंशीय शुनक के पुत्र शौनक कहकर अमिक्षित किया। शौनक की अनुक्रमणिकासे भी यही विदित होता है। इससे मालूम पड़ता है, अङ्गिरा के वंशको छोड़कर गृत्समद ने भृगु वंशोपता प्राप्त की थी। महामारुत (अनुयासन पर्व)से विदित होता है कि, गृत्समद दैत्य क्षत्रियों के राजा और वीतिहव्य के पुत्र थे। एक बार काशीराज प्रतर्दन के भयसे वीतिहव्य भृगु के आश्रममें जा छिपे। भृगु ने उन्हें शरणमें रख लिया। वीतिहव्य को जोड़ते हुए प्रतर्दन भी भृगु के आश्रममें जा घुसके। पृथ्वी पर भृगु ने कहा कि, मेरे आश्रममें क्षत्रिय नहीं रहता। अग्नि-वाक्य असत्य नहीं होता; इसलिये इसी दिनसे वीतिहव्य जायाग हो गये और उन्हीं के पुत्र गृत्समद ऋषि। किसी किसी पुराण के मतसे तो गृत्समद सहोत्र के पुत्र और शुनक या शौनक के पिता हैं। गृत्समद ने ही जाति-विभाग की कृष्टि की—यह भी बख़्शेख है। किसी के मतसे नेमिपारयणों जो द्वादशवर्ष-उपायी यज्ञ हुआ था, उसमें यही गृत्समद (शौनक) प्रधान थे।

\* ये यज्ञ के कई ऋत्विक् के नाम हैं। बड़े यज्ञमें १६ ऋत्विक् रहते थे। इस मण्डलके ३० सूक्तमें इनका विवरण है।



त्वमग्ने इन्द्रो वृषमः सतामसि त्वं विष्णुरुहगायो नमस्यः ।  
 त्वं ब्रह्मा रथिविद्वद्ब्रह्मणस्पते त्वं विधर्तः सवसे पुरण्ड्या ॥३॥  
 त्वमग्ने राजा धरुणो धृतव्रतस्त्वं मित्रो भवसि दक्ष इन्द्रियः ।  
 त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्यं सम्भुजं त्वमंशो विदथे देव भाजयुः ॥४॥  
 त्वमग्ने त्वष्टा विधते सुवीर्यं तव ग्नावो मित्रमहः सजारयम् ।  
 त्वमाशुदेमा ररिषे स्वश्रव्यं त्वं नरां शर्धो असि पुरुवसुः ॥५॥  
 त्वमग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिपे ।  
 त्वं वातैररुणैर्यासि शङ्ख्यस्त्वं पूपाविधतः पालि नु रमना ॥६॥  
 त्वमग्ने द्रविणोवा अरंरुते त्वं देवः सविता रत्नधा असि ।  
 त्वं भगो नृपते वस्व ईशिपे त्वं पायुर्दमे यस्तेविधत् ॥७॥  
 त्वमग्ने दम आविष्पतिं विशस्त्वां राजानं सुविद्वद्भृजते ।  
 त्वं विह्वानि स्वनीक पत्यसे त्वं सहस्राणि शता दश प्रति ॥८॥

३ अग्निदेव, तुम साधुओंका मनोरथ पूर्ण करते हो; इसलिये तुम्ही विष्णु हो, तुम बहुतेक स्तुतिपात्र हो; तुम नमस्कारके योग्य हो। धनवान् स्तुतिके अधिपति, तुम मन्त्रोंके स्वामी हो, तुम विविध पदार्थोंकी खूबि करते और विभिन्न बुद्धियोंमें रहते हो।

४ अग्नि, तुम धृतव्रत हो; इसलिये तुम राजा वरुण हो। तुम शत्रुओंके विनाशक और स्तुति-योग्य हो; इसलिये तुम मित्र हो। तुम साधुओंके रक्षक हो; इसलिये तुम अर्यमा हो। अर्यमाका दान सर्वव्यापी है। तुम अंश (सूर्य) हो। अग्निदेव, तुम हमारे यज्ञमें फलदान करो।

५ अग्निदेव, तुम त्वष्टा हो। तुम अपने तेवरुके वीर्यरूप हो। सारी स्तुतिपाँ तुम्हारी ही हैं। तुम्हारा तेज हितकारी है। तुम हमारे वन्द्य हो। तुम क्षीत्र उत्साहित करते हो और हमें उत्तम अन्न-युक्त धन देते हो। तुम्हारे पास बहुत धन है। तुम मनुष्योंके बल हो।

६ अग्नि, तुम महान् आकाशके अक्षर ऋ हो। तुम मरुतोंके बलस्वरूप हो। तुम अन्नके ईश्वर हो। तुम ध्रुवके आधार-स्वरूप हो। लोहित-वर्ण और वायु-सदृश अन्नपर जाते हो। तुम पूरा हो, तुम स्वयं कृपा करके परिचालक मनुष्योंकी रक्षा करते हो।

७ अग्नि, भर्त्ताकारकारी यजमानकेलिये तुम स्वर्गादाता हो। तुम प्रकाशमान सूर्य और रत्नोंके आधार-स्वरूप हो। नृपति, तुम मन्त्रनीय धनदाता हो। यज्ञ-गृहमें जो यजमान तुम्हारी सेवा करता है, उसकी तुम रक्षा करते हो।

८ अग्नि, लोग अपने-अपने घरमें तुम्हें प्राप्त करते और तुम्हें विभूषित करते हैं। तुम मनुष्योंके पांशुक, दीप्तिमान् और हमारे प्रति अनुग्रह-सम्पन्न हो। तुम्हारी सेवा अत्युत्तम है। तुम सारे इन्द्रोंके ईश्वर हो। तुम इसारो, सैकड़ों और बड़ों फल देते हो।

त्वामग्ने पितरमिष्टिभिर्नरस्त्वां भ्राताय शम्या तनूरुचम् ।  
 त्वं पुत्रो भवसि यस्तेविधत्वं सखा सुशेवः पास्याध्वयः ॥९॥  
 त्वमग्ने अश्वभुराके नमस्यस्त्वं वाजस्य क्षमतो वाय ईक्षिषे ।  
 त्वं विभास्यनुधक्षि दावने त्वं विशिक्षुरसि यज्ञमातनिः ॥१०॥  
 त्वामग्ने अदितिदध दाशुषे त्वं होत्रा भारती वर्धसे गिरा ।  
 त्वमिला शतदिमासि दक्षसे त्वं वृत्रहा वसुपते सरस्वती ॥११॥  
 त्वमग्ने सुभृत उत्तमं धयस्तवरूपाह वर्ण आ सन्दृशि श्रियः ।  
 त्वं वाजः प्रतरणो वृहन्नसि त्वं रयिर्वहुलो विश्वतरुपृथुः ॥१२॥  
 त्वामग्ने आदित्यास आस्यं त्वां जिह्वां शुच्यश्चक्रिरे कवे ।  
 त्वां रातिपाचो अध्वरेषु सश्चिरे त्वं देवा हविरदन्त्याहुतम् ॥१३॥  
 त्वे अग्ने विश्वे अमृतासो अद्रुह आसा देवा हविरदन्त्याहुतम् ।  
 त्वया मर्तासः स्वदन्त आहुतिं त्वं गर्भो वीरुधां अक्षिपे शुचिः ॥१४॥  
 त्वं तानत्सञ्च प्रतिचासि मज्जमानाग्ने सुजात प्रचदैवरिच्यसे ।  
 पूक्षो यवत्र मदिनाविते भुवदन्तु धावापृथिवी रोदसी उभे ॥१५॥

६ अग्नि, यज्ञ द्वारा लोग तुम्हें वृत्त करते हैं, क्योंकि तुम पित्रा हो । तुम्हारा अःवृत्त प्राप्त करनेके लिये लोग कर्म द्वारा तुम्हें वृत्त करते हैं । तुम भी उनका शरीर प्रदीप्त कर देते हो । जो तुम्हारी सेवा करता है, तुम उसके पुत्र हो । तुम सखा, शुभकर्ता और यशु-निवारक होकर रक्षा करो ।

१० अग्नि, तुम अश्व हो । तुम प्रत्यक्ष स्तुति-योग्य हो । तुम सर्वत्र विभुत घन और अन्नके स्वामी हो । तुम अतीव बलवान् हो । अंधकारके विनाशके लिये तुम धीरे-धीरे दाष्ट आदिका वहन करते हो । तुम भली भाँति बलका निर्वाह और उसके फलका विस्तार करते हो ।

११ अग्निदेव, तुम हव्यशक्ताके लिये अदिति हो । तुम होत्रा और भारती हो । स्तुति द्वारा तुम वृद्धि प्राप्त करो । तुम सौ वर्षोंकी भूमि हो । तुम दानमें समर्थ हो । हे घन-पालक, तुम वृत्रहन्ता और सरस्वती हो ।

१२ अग्निदेव, अच्छी तरह पूष्ट होनेपर तुम्हीं उत्तम अन्न हो । तुम्हारे स्पृष्टणीय और उत्तम वर्णमें ऐश्वर्य रहता है । तुम्हीं अन्न, प्राप्ता, वृष्ट, घन, बहुल और सर्वत्र विलीन हो ।

१३ अग्निदेव, आदित्योंने तुम्हें मुख दिया है । हे कवि, पवित्र देवताओंने तुम्हें जीभ दी है । दानके समय एकत्र देवता यज्ञमें तुम्हारी अपेक्षा करते और तुम्हें ही आहुति रूपमें दिया हुआ हव्य भक्षण करते हैं ।

१४ अग्निदेव, सारे अमर और क्षीय-रहित देवगण तुम्हारे मुखमें, आहुतिरूपमें, प्रदत्त हविका भक्षण करते हैं । मर्त्यगण भी तुम्हारे द्वारा अन्नादिका आस्वाद पाते हैं । तुम छता आदिके गर्भ—(उत्ताप)-रूप हो । पवित्र होकर तुमने अन्न ग्रहण किया है ।

१५ अग्निदेव, चल द्वारा तुम प्रसिद्ध देवोंके साथ मिलो और उनसे पृथक् होओ । सुजात देव, तुम सबसे बलिष्ठ बनो, क्योंकि तुम्हारी ही मदिरासे यह यज्ञ-स्थित अन्न शब्दायमान धावापृथिवीके बीच ब्याप्त होता है ।

ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्ने रात्रिमुपसृजन्ति सूर्यः ।  
अस्माञ्च ताँश्च प्रदिनेषु वस्य आवृहद्वक्षेम विदधे सुवीराः ॥१६॥



२ सूक्त । अग्नि देवता । जगती छन्द ।

यज्ञेन वर्धत जातवेदसमग्निं यजध्वं हविषा तना गिरा ।  
समिधानं सुप्रयसं स्वर्णरं यक्षं होतारं घृजनेषु धुर्षदम् ॥१॥  
अग्नि स्वा नक्तोरुषसो ववाशिरेग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः ।  
दिवश्चेदरतिर्मानुषा युगाक्षयो भासि परुवार संयतः ॥२॥  
तं देवा बुध्ने रजसः सुदंससन्दिवस्पृथिव्याररतिं न्येरिरे ।  
रथमिव धैद्यं शुक्रशोचिपमग्निं मित्रं न क्षितिषु प्रशंस्यम् ॥३॥  
तमुक्षमाणं रजसि स्वआदमे चन्द्रमिव सुरुचं ह्यार आदधुः ।  
पृथ्व्याः पतरं चिकन्यतमक्षमिः पाथो न पायुं जनसी उमे अनु ॥४॥  
स होता विश्वं परि भूत्वध्वरं तमु हव्यैर्मनुष ऋजते गिरा ।  
हिरशिप्रो वृधसाक्षासु जभुरघौर्नस्तुभिश्चितयज्ञोदसी अनु ॥५॥

१६ अग्नि, जो मेधावी स्तोताओंको गौ और अश्व आदि दान करते हैं, उन्हें तथा हमें श्रेष्ठ स्थानमें ले चले । हम वीरोंसे युक्त होकर यज्ञमें विशाल मन्त्र पढ़ेंगे ।

१ अग्निदेव दीप्तिमान्, शोभन-अन्न-सम्पन्न, स्वगदात्ता, उदीप्त, होम-निष्पादक और वलप्रदाता हैं । उन सर्व-भूतञ्च अग्निको यज्ञ द्वारा वर्द्धित करो और यज्ञ तथा विस्तृत स्तुति द्वारा पूजा करो ।

२ अग्निदेव, जैसे दिनमें गायें बछड़ोंकी इच्छा करती हैं, वैसे ही तुम्हें यजमान लोग दिन और रात्रिमें चाहते हैं । अनेकोंके माननीय अग्निदेव, तुम संयत होकर अलोकमें व्याप्त हो । मनुष्योंके यज्ञोंमें सदा रहते हो । रातमें प्रदीप्त होते हो ।

३ अग्नि सुदर्शन, द्वावापृथिवीके ईश्वर, धन-पुर्ण रथके सद्यः, दीप्तवर्ण, ज्वाला-स्वरूप, कार्यसाधक और यज्ञ-भूमिमें प्रशंसित हैं । देवता लोग उन्हीं अग्निको संसारके मूल देशमें स्थापित करते हैं ।

४ अग्निदेव अन्तरीक्षमें वृष्टि-जल-दाता, चन्द्रमाकी तरह दीप्ति-विशिष्ट, अन्तरीक्षगामी ज्वाला द्वारा लोगोंको चैतन्य देनेवाले, जलकी तरह रक्षक और सबकी जनयित्री द्वावापृथिवीको व्याप्त करनेवाले हैं । उन्हीं अग्निको उस विज्जन गृहमें स्थापित किया गया है ।

५ होम-निष्पादक होकर अग्निदेव सारे यज्ञोंको व्याप्त करें । मानवोंने हव्य और स्तुति द्वारा उन्हें अलंकृत किया है । दाहक-शिखायुक्त अग्नि वर्द्धमान ओषधियोंके बीच जलकर, जैसे नक्षत्र आकाशमें चमकते हैं, वैसे ही द्वावापृथिवीको प्रकाशित करते हैं ।

स नो रैवत् समिधानः स्वस्तये सन्दस्वानयिमस्मास्तु दीदिहि ।  
 आ नः कृणुष्व सुचिताय रोदसी अग्ने हव्या मनुषो देववीतये ॥६॥  
 दा नो अग्ने वृहतो दाः सहस्रिणो दुरो न वाजं श्रुत्या अपा वृधि ।  
 प्राची धावापृथिवी ब्रह्मणा कृधि स्वर्णं शुक्रमुषसो वि दिद्युतुः ॥७॥  
 स इधान उपसो रम्या अनु स्वर्णं दीदेवोरुपेण भानुना ।  
 होत्रामिरग्निर्मनुषः स्वध्वरो राजा विशामतिथिश्चारुरायवे ॥८॥  
 पयानो अग्ने अमृतेषु पूर्य धीष्णीपाय वृहद्विवेषु मानुषा ।  
 दुहाना धेनुर्वृजनेषु कारवे त्मना शस्तिर्न पुरुषमिषणि ॥९॥  
 यमग्ने अर्वता वा सुवीर्यं ब्रह्मणा वा चितयेमाजनां अति ।  
 अस्माकं धृत्तमधि पञ्च कृष्टिषूचा स्वर्णं शुशुचीत दुष्टरम् ॥१०॥  
 स नो बोधि सहस्य प्रशंस्यो यस्मिन्त् सुजाता इषयन्त सूरयः ।  
 यमग्ने यक्षमुपयन्ति वाजिनो नित्ये तोके दीदिवांसं स्वे दमे ॥११॥

६ अग्निरेव, हमारे मङ्गलके लिये क्रमागत और वर्द्धित धन देते हुए तुम प्रज्वलित होकर प्रकाशित होओ । अग्नि, धावापृथिवीमें हमें फल दो । मनुष्यों द्वारा प्रदत्त हव्य देवोंके भक्षणके लिये लाया जाय ।

७ अग्नि, हमें यथेष्ट गौ, अश्व आदि तथा सहस्र-संख्यक पुत्र, पौत्र आदि दो । कीर्तिके लिये अन्न दो और अन्नका द्वार कोको । उत्कृष्ट यज्ञ द्वारा धावापृथिवीको हमारे अनुकूल करो । आदित्यकी तरह उषाएँ तुम्हें प्रकाशित करती हैं ।

८ रमणीय उषामें अग्नि प्रज्वलित होकर, सूर्यकी तरह, उत्कृष्ट किरणोंमें देदीप्यमान होते हैं । मनुष्योंके होम-साधक, स्तुति द्वारा रत्यूमान, उत्तम यज्ञवाले और प्रजाओंके स्वामी अग्नि यजमानके पास, प्रिय अतिथिकी तरह, आते हैं ।

९ अग्नि, तुम यथेष्ट धुतिवाले हो । देवोंके पूर्ववर्ती मनुष्योंकी स्तुति तुम्हें आप्यायित करती है । दूधवाली गायकी तरह यह स्तुति यज्ञस्थित स्तोताकी तरह स्वयं अपरिमित और विविध प्रकार धन प्रदान करती है ।

१० अग्नि, हम तुम्हारे दिये अन्न और अश्वसे यथेष्ट सामर्थ्य प्राप्त करके सबको लाँच जायेंगे और इससे, हमारी अनन्त और दूसरोंके लिये अप्राप्य धनराशि सूर्यकी तरह, पाँच वर्णों (चार वर्ण और पञ्चम निषाद)के ऊपर दीप्तिमान होगी ।

११ ऋतु-पराजिता अग्नि, तुम हमारी स्तुतिके योग्य हो । हमारा स्तोत्र श्रवण करो । छज्जमा स्तोता कोग तुम्हारे ही उद्देशसे स्तुति करते हैं । अग्नि, रस और पुत्रकी प्राप्तिके लिये हव्य-विशिष्ट यजमानके यागगृहमें दीप्यमान और यजणीय अग्निकी पूजा की जाती है ।

उभयासौ जातवेदः स्वाम ते स्तोतारो अने सूरयश्च शर्मणि ।

वस्वो रायः पुरुश्चन्द्रस्य भूयसः प्रजावतः स्वपत्यस्य शग्धि नः ॥१०॥

ये स्तोतृभ्यो गो अग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः ।

अस्माञ्जपांश्च प्र हि नेपि वस्य आ वृहद्वदेम पिदधे सुविराः ॥११॥



३ सूक्त । आप्री देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

समिद्धो अग्निर्निहितः पृथिव्यां प्रत्यङ् विश्वानि भुवनान्यस्थात् ।

होता पावकः प्रदिघः सुमेधा देवो देवान्यजत्वग्निरर्हन् ॥१॥

नराशंसः प्रति धामान्यजन्तिस्रोः दिवः प्रति महा स्वचिः ।

घृतप्रुषा मनसा हव्यमुन्दन्मूर्धन्यज्ञस्य समनच्छु देवान् ॥२॥

ईलितो अग्नो मनस्वा नो अर्हन् देवान्यक्षि मानुपात्पूर्वो अद्य ।

स आवह मरुतां शर्धो अच्युतमिन्द्रं नरो बर्हिषदं यजध्वम् ॥३॥

देव बर्हिर्वर्धमानं सुवीरं स्तीर्णं राये सुमरं वेद्यस्याम् ।

घृतेनाक्तं वसवः सीदतेदं विश्वे देवा आदित्या यज्ञियासः ॥४॥

१२ सर्वभूतश्च अग्नि, तुम्हारा स्तोता और मेधावी यजमान—हम दोनों सुख-प्राप्तिके लिये तुम्हारे ही होंगे । हमारे निवास-हेतु, अतिथय आह्वाय-प्रद, प्रभूत और पुत्र-पौत्र आदिसे युक्त धन दो ।

१३ अग्नि, जो मेधावी लोग स्तोताओंको गौ और अश्व आदि धन प्रदान करते हैं, उन्हें तथा हमें अष्ट स्थानमें ले चलो । वीर-युक्त होकर हम यज्ञमें बृहत् मन्त्रका उच्चारण करेंगे ।

१ वेदीपर निहित समिद्ध नामक अग्नि सारे गृहके सामने अवस्थित हैं । होम-निष्पादक, विशुद्धताकारी, प्राचीन, प्रजा-संयुक्त, घोरमान और पूजा-योग्य अग्नि देवोंकी पूजा करें ।

२ नराशंस नामक अग्नि, सुन्दर ज्वालासे युक्त होकर, अपनी महिमासे, प्रत्येक आहुति-स्थल और प्रकाशमान चीनों लोकोंको व्यक्त करते हुए, धी बरसानेकी इच्छासे, हव्य स्निग्ध करके, यज्ञके सामने देवोंको प्रकाशित करें ।

३ इलित या इला नामक अग्निदेव, हमपर प्रसन्न चित्तसे, यागकर्मके योग्य होकर, आज, हमारे लिये, मनुष्योंके पूर्ववर्ती होकर देवोंका यज्ञ करो । मरुतों और अच्युत इन्द्रका सम्बोधन करो । ऋत्विगको, कुशपर बैठे हुए इन्द्रका यज्ञ करो ।

४ घोरमान कुश-स्वरूप अग्नि, हमारे धन-लाभके लिये, इस वेदीपर अच्छी तरह विलुप्त हो जाओ । तुम सदा बढ़नेवाले और वीर-प्रदाता हो । वसुओ, विरवदेवो, यज्ञ-योग्य आदित्यो, तुम धी-ऊँगाये कुशपर बैठो ।

विश्रयन्तासुर्विया ह्यमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा नमोभिः ।  
 व्यचस्वतीर्विप्रथन्तामजुर्व्यावर्णं पुनाना यशसं सुवीरम् ॥५॥  
 साध्वपांसि सनता न उक्षिते उपासानका वय्येव रन्विते ।  
 तन्तुं सतं सन्वयन्ती समोक्षी यज्ञस्य पेशः सुदुघे पयस्वती ॥६॥  
 दैव्या होतारा प्रथमा विदुष्टर ऋजुयक्षतः समृचा वपुष्टरा ।  
 देवान्ययजन्तावृतुथा समज्जतो नामा पृथिव्या अधि खानुषु त्रिषु ॥७॥  
 सरस्वती साधयन्ती धियं न इलादेवी भारणी विश्वतूर्तीः ।  
 तिष्ठो देवीः स्वधया बहिरेदमच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य ॥८॥  
 पिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः ।  
 प्रजां त्वष्टा विष्यतु नाभिमरुमे अथादेवानामप्येतु पाथः ॥९॥  
 वनस्पतिरवसृजन्नुपस्थादग्निर्हविः सदयाति प्रधोभिः ।  
 त्रिधा समकं नयतु प्रजानन्देवेभ्यां दैव्यः समितोप हव्यम् ॥१०॥

५ हे योसमान, द्वार-रूप अग्नि, तुम खुल जाओ । तुम महान् हो । लोग नमस्कार करते हुए तुम्हारे लिये हवन करते और सरलतासे तुम्हारे पास जाते हैं । तुम व्यापक, अहिंसनीय, वीर-विशिष्ट, यशोयुक्त और देवनीय रूपके सम्पादक हो । तुम भली भाँति प्रसिद्ध होओ ।

६ हमें अच्छे कर्म-फल देनेवाली अग्नि-रूप उषाएँ रात्रिको वयन-चतुरा दो रमणियोंकी तरह, सहायताके लिये, परस्पर आते-भाते, यज्ञका रूप बनानेके लिये, परस्पर अनुकूल होकर बड़े सन्तुका वयन करती हैं । वे अतीव फलदाता और जल-युक्त हैं ।

७ अग्निरूप दिव्य हो होता पहले ही यज्ञके योग्य हैं । वे सर्वापेक्षा विद्वान् और विद्याल शरीरसे संयुक्त हैं । वे मन्त्र द्वारा अच्छी तरह पूजा करते और यथासमय देवोंके लिये यज्ञ करते हैं । वे पृथिवीकी नाभि-रूपिणी उत्तर-वेदों के गार्हपत्य आदि तीन अग्नियोंके प्रति गमन करते हैं ।

८ हमारे यज्ञकी निष्पादिका अग्निरूप सरस्वती, इला और सर्वव्यापिका भारती, ये तीनों देवियों याग-गृहका आश्रय करके, हव्य-लाभके लिये, निर्दोष रूपसे, हमारे यज्ञका पालन करें ।

९ अग्नि-स्वरूप त्वष्टाकी दयासे हमारे पिशङ्ग वर्ण, यज्ञकर्ता, अन्नदाता, क्षिप्रकर्ता, देवाभिलाषी और वीर पुत्र उत्पन्न हो । त्वष्टा हमें कुल-रक्षक सन्तान दें । देवोंका अन्न हमारे पास आवे ।

१० वनस्पति-रूप अग्नि हमारे कर्म जानकर हमारे पास हैं । विद्योप कर्म द्वारा अग्नि भली भाँति हव्य पकाते हैं । दिव्य अमिता नामके अग्नि तीन प्रकारसे अच्छी तरह सित हव्यको जानकर उसे देवोंके निकट ले जायें ।

घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिघृते श्रितो घृतस्वस्य धाम ।  
अनुष्वधमावह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥११॥

४ सूक्त । अग्नि देवता । भृगुके अपत्य सोमाहुति ऋषि । त्रिष्टुप् छन्द ।

हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृकिं विशामग्निमतिथिं सुप्रयसम् ।  
मित्र ह्य यो दिधिषाद्योभूद्देव आदेवे जने जातधेदाः ॥१॥  
इमं विधन्तो अपां सधस्ये द्विता दधुभृगवो विक्ष्वायोः ।  
एष विश्वान्यभ्यस्तु भूमा देवानामग्निररतिर्जीराश्वः ॥२॥  
अग्नि देवासो मानुषोषु विक्ष प्रियं धुः क्षेप्यन्तो न मित्रम् ।  
सदीदयदुशतीकन्या आदक्षाद्यो यो दास्वते वम आ ॥३॥  
अस्य रत्नवा स्वस्येव पुष्टिः सद्दृष्टिरस्य हियानस्य दक्षोः ।  
वि यो भरिभ्रदोषधीषु जिह्वामत्यो न रथ्यो दोधवीति वारान् ॥४॥  
आयन्मे अम्वं वनवः पनन्तोश्चित्त्यो नामिमीत वर्णम् ।  
स चित्रेण चिकितेरसुभासा जुजुर्वा यो मुहुरा युवा भूव ॥५॥

११ मैं अग्निके जो ढाकता हूँ । घृत हो उनकी जन्मभूमि, आभय-स्थान और दीप्ति है । अभीष्टवर्षी अग्नि, हव्य देनेके समय देवोंको जुलाकर उनकी प्रसन्नता उत्पादन करो और अग्नि-रूप स्वाहाकारमें प्रवृत्त हव्य ले जाओ ।

१ यजमानों, मैं तुम्हारे लिये अतीव दोलियुक्त, निष्पाप, यजमानोंके अतिथि-स्वरूप और हव्य-युक्त अग्निको जुलाता हूँ । वे सर्व-भूत-ज्ञाता और मनुष्योंसे देवोंतकके धारणकर्त्ता हैं ।

२ भृगुअग्नि अग्निकी सेवा करके उन्हें जलके निवासस्थान, अन्तरीक्ष और मानवोंकी सन्तानोंके बीच स्थापित किया था । क्षीप्रगामो अश्ववासे और देवोंके स्वामी अग्नि हमारे समस्त विरोधी प्राणियोंको पराभूत करें ।

३ स्वर्ग जाते समय देवोंने, मित्रकी तरह, अग्निको मनुष्योंके बीच स्थापित किया था । वह अग्नि हव्यदाता यजमानके लिये, उसके योग्य गृहमें स्थापित होकर, अपनी अजिकाषा करनेवाली रात्रियोंमें दीप्त होते हैं ।

४ अपने शरीरकी पुष्टि करनेके सहस्र अग्निके शरीरकी पुष्टि करना भी रमणीय है । जिस समय अग्नि चारों ओर फैलते और काष्ठको भस्म करते हैं, उस समय उनका शरीर अत्यन्त सुन्दर हो जाता है । जैसे रथका अश्व बार-बार पृष्ठ कँपाता है, वैसे ही अग्नि भी काष्ठोंपर अपनी शिखा कँपाते हैं ।

५ मेरे सहयोगी स्तोत्रा लोग अग्निके महत्त्वकी स्तुति करते हैं, वे आजही ऋत्विगोंके पास अपना रूप प्रकाशित करते हैं । अग्नि रमणीय हव्यके लिये विचित्र किरणमाकासे प्रकाशित होते हैं । अग्नि वृद्ध होकर भी बार-बार उसी क्षण युवा हो सकते हैं ।

आ यो घना तातृषाणो न भाति वार्णं पथा रथ्येव स्वानीत् ।  
 कृष्णाध्वा तपू रण्वश्चिकेत द्यौरिव स्मयमानो नभोभिः ॥६॥  
 स यो व्यस्थादमिदक्षतुर्वीं पशुर्नेति स्वयुरगोपाः ।  
 अग्निः शोचिष्मां अतसान्युष्णन्कृष्णव्यधिरस्वद्वयं न भूम् ॥७॥  
 नू ते पूर्वस्यावसो अधोतौ तृतीये विदथे मग्म शंसि ।  
 अस्मे अग्ने संयद्वीरं वृहन्तं क्षुमन्तं वाजंस्वपत्यं रयिं दाः ॥८॥  
 त्वया यथा गृत्समदासो अग्ने गुहा घन्वन्त उपरीं अग्निं ष्युः ।  
 सुवीराशो अभिमातिषाहः स्मत् सूरिभ्यो गृणते तद्वयो धाः ॥९॥

५ सूक्त । अग्नि देवता । सोमाहुति ऋषि । अनुष्टुप् छन्द ।

होताजनिष्ट चेतनः पिता पितृभ्य ऊचये ।  
 प्रयक्षं जेत्यं वल्लु शक्वेम वाजिनो यमम् ॥१॥  
 आ यस्मिन्त्सप्तर्शमपस्तता यक्षस्य नेतरि ।  
 मनुष्वद्वैव्यमष्टमं पोता विश्वं तदिन्वति ॥२॥

६ तृषाणुकी तरह जो अग्नि घनोंको दग्ध करते हैं, जलकी तरह इधर-उधर जाते हैं, रथवाहक अथवाको तरह चरते हैं, वह कृष्ण-सार्ग और सापक होनेपर भी नभोमण्डलवाले धुलोककी तरह शोभन हैं ।

७ जो अग्नि चिरवकी व्याप्त करते हैं, जो अग्नि विलुप्त प्रयवोपर बढ़ते हैं, जो अग्नि रक्षक-रहित पशुकी तरह अपनी इच्छासे गमन कर विचरण करते हैं, वही दोसिमान् अग्नि सूखे वृक्ष आदिको जलाकर, वध्याकारो कण्टक आदिको दूरकर, अन्धो तरह रसास्वदन करते हैं ।

८ अग्निदेव, तुमने पहले, प्रथम सपनमें, जो रक्षा की थी, उसे हम आज भी स्मरण करके तृतीय सपनमें मनोहर स्तोत्रोंका उच्चारण करते हैं । अग्नि, तुम हमें जोर-विशिष्ट करो । तुम हमें महान् कीर्त्तिमान् करो । हमें छन्दस् अपत्य और धन दो ।

९ अग्नि, गृत्समद्व-वंशीय धृषि लोग तुम्हें रक्षक पाकर, छन्दुका पाठ करते हुए, गुहामें अवस्थित उत्कृष्ट स्थान पर वर्त्तमान घन-विशेष प्राप्त करेंगे । वे उत्तम पुत्र आदिको प्राप्त कर शत्रुओंको परास्त करेंगे । मेघावी और स्तुतिकारी वज्रमानोंको बहुत अधिक और प्रसिद्ध धन दो ।

१ होता, चेतन्यदाता और पिता अग्नि पितरोंकी रक्षाके लिये उत्पन्न हुए । हम भी इव्य-युक्त होकर अतीव पूजनीय, जीतने और रक्षा करने योग्य धन प्राप्त करनेमें समर्थ होंगे ।

२ यज्ञ-वेदा अग्निमें सात रश्मियाँ विलुप्त हैं । देवोंके पोताके समान, अग्नि मनुष्योंके पोताकी तरह, वज्रके अष्टम स्तम्भोव होकर उभास होते हैं ।



दधन्वे वा यदीमनु वोचद्ब्रह्माणि वेस्तत् ।  
 परिविश्वानि काव्या नेमिश्रक्रमिवाभवत् ॥३॥  
 साकं हि शुचिना शुचिः प्रशास्ता क्रतुनाजनि ।  
 विद्वाँ अस्य व्रता भुषा वयाश्वानुरोहते ॥४॥  
 ता अस्य वर्णमायुवो नेष्टः सचन्त धेनवः ।  
 कुवित्सुभ्य आवरं स्वसारो या इदं ययुः ॥५॥  
 यदीमातुरपस्वसा घृतं भरन्त्यस्थित ।  
 तासामध्वर्युरागतौ यवो वृष्टीव मोदते ॥६॥  
 स्वः स्वाय धायसे कृणुतामृत्विगृत्विजम् ।  
 स्तोमं यज्ञं चादरं वनेमाररिमा वयम् ॥७॥  
 यथा विद्वाँ अरङ्गद्विश्वेभ्यो यजतेभ्यः ।  
 अयमग्ने त्वे अपि यं यज्ञं चकृमा वयम् ॥८॥



६ सूक्त । अग्नि देवता । सोमाहुति ऋषि । गायत्री छन्द ।  
 इमां मे अग्ने समिधमिमांमुपसदं वनेः । इमा उषं श्रुधी गिरः ॥१॥

३ अथवा इस यज्ञमें ऋत्विक्गण जो हव्यादि धारण करते, जो मंत्र आदि पढ़ते हैं, सो सब अग्निदेव जानते हैं ।

४ पवित्र प्रशास्ता अग्नि पुण्यक्रतुके साथ उत्पन्न हुए हैं । जैसे लोग फल तोड़नेके लिये एक हाकसे दूसरी हाक-पर जाते हैं, वैसे हो यजमान, अग्निके यज्ञको अवश्य फल-दाता समझकर, एकके अनन्तर दूसरा अनुष्ठान करता है ।

५ जो अंशुलियाँ इस कार्यमें लगी रहती हैं, वे इन नेष्टा अग्निके लिये घेनु-स्वरूप हैं और इनकी सेवा करती हैं तथा अश्विरूप होकर इनके गार्हपत्य आदि तीन उत्कृष्ट रूपोंकी सेवा करती हैं ।

६ जिस समय ब्रह्म मातृ-रूपिणी देवीके पास अग्निनीके समान घृत-पूर्ण करके रखा जाता है, उस समय जैसे वृष्टिमें यव पुष्ट होता है, वैसे हो अध्वर्युरूप अग्नि भी दृष्ट होते हैं ।

७ ये ऋत्विक्-रूप अग्नि अपने कर्मके लिये ऋत्विक्का कर्म करते हैं । हम भी, उसके अनन्तर ही, स्तोम, यज्ञ और हव्य प्रदान करेंगे ।

८ अग्नि, तुम्हारी महिमा जाननेवाला यजमान जैसे सारे देवोंकी सकी भाँति वृत्ति कर सके, वैसा करो । हम जिस यज्ञको करेंगे, वह भी, अग्नि, तुम्हारा ही है ।

१ अग्नि, तुम मेरी इस समिधा और आहुतिका उपभोग करो; मेरी यह स्तुति सुनो ।

अयते अग्ने विधेमोर्जोनपादश्वमिष्टे । एना सूक्तेन जुजात ॥२॥  
 एवं त्वा गीर्भिर्गिर्वणसन्ध्रविणस्युं द्रविणोदः । सपयस सपर्यवः ॥३॥  
 स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन् । युयोध्यस्मद्वेषांसि ॥४॥  
 स नो वृष्टिं दिष्टरूपरि स नो वाजमनर्वाणम् । स नः सहस्रिणीरिषः ॥५॥  
 ईलाना यावस्यवे यविष्ठ दूत नो गिरा । यजिष्ठ होतरागहि ॥६॥  
 अन्तर्गच्छ ईयसे विद्वाञ्जन्मोभया कवे । दूतो जन्त्येव मित्र्यः ॥७॥  
 सविद्धां आच पिप्रयो यक्षि चिकित्थ आनुपक् । आचास्मिन्सत्सि बर्हिषि ॥८॥



७ सूक्त । अग्नि देवता । सोमाहुति ऋषि । गायत्री छन्द ।  
 श्रेष्ठं यविष्ठ भारताग्रोद्यु मन्तमाभर । वसो पुरुस्पृहं रयिम् ॥१॥  
 मानो वरातिरीशत देवस्य मर्त्यस्य च । पर्षिष्ठस्या उतद्विषः ॥२॥  
 विष्टवा उत स्वया धर्य धारा उदन्या इव । अति गाधेमहि द्विषः ॥३॥

२ अग्नि, हम इस आहुतिके द्वारा तुम्हारी सेवा करेंगे । बलपुत्र, विस्तीर्ण-यज्ञवाली और सज्जन्मा अग्नि, इस स्तुतिसे तुम्हें हम प्रसन्न करेंगे ।

३ धनद अग्नि, तुम स्तुतिके योग्य और यज्ञके अभिलाषी हो । हम तुम्हारे सेवक हैं । स्तुति द्वारा तुम्हारी सेवा करेंगे ।

४ अग्नि, तुम धनवान्, विद्वान् और धनद हो । वठो और हमारे शत्रुओंको दूर करो ।

५ बही अग्नि, हमारे लिये, अन्तरीक्षसे वृष्टि प्रदान करते हैं । वे हमें महान् बल और अनन्त प्रकारके अन्न दें ।

६ सफलतम देव-दूत, अतिशय यजनीय अग्नि, मैंने तुम्हारी स्तुति की है; इस लिये आओ । मैं तुम्हारा पूजक हूँ और तुम्हारा प्रभु चाहता हूँ ।

७ मेधावी अग्नि, तुम मनुष्योंके हृदयको पृच्छानते हो; तुम उभयरूप जन्म जानते हो । तुम संसार और बन्धुओंके दूत-रूप हो ।

८ अग्नि, तुम विद्वान् हो । हमारी मनःकामना पूर्ण करो । तुम वैतन्यवाले हो । यथाक्रम तुम देवोंका यज्ञ करो और कुशके ऊपर बैठो ।

१ हे सफलतम, अरुणकर्ता और व्याप्त अग्नि, अतिशय प्रशंसनीय, दीप्तिमान् और बहुजन-चाञ्छित धन ले आओ ।

२ अग्नि, मनुष्यों या देवोंकी शत्रुता हमें पराभूत न करे । हमें दोनों प्रकारके शत्रुओंसे बचाओ ।

३ अग्नि, जलकी धाराकी तरह हम सारे शत्रुओंको स्वयं ही लाँच जायेंगे ।

शुचिः पावक वन्धोऽग्ने बृहद्वि रोचसे । त्वं घृतेभिराहुतः ॥४॥  
 त्वं नो अस्ति भारताग्ने वशामिदक्षमिः । अष्टापदीभिराहुतः ॥५॥  
 इ वन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः । सहस्ररूपुन्नो अद्भुतः ॥६॥



८ सूक्त । अग्नि देवता । गृत्समद ऋषि । गायत्री अनुष्टुप् छन्द ।  
 घाजयन्निव नू रथान्योगाँ अग्नेरुपस्तुहि । यशस्तमस्य मीढ पः ॥१॥  
 यः सुनीथोवदाशुषेजुर्यो जयन्नरिम् । चारुप्रतीक आहुतः ॥२॥  
 य उश्रिया दमेष्वादोषोषसि प्रशस्यते । यस्य व्रतं न मीयते ॥३॥  
 आयः स्वर्ण भानुना चित्रो विमात्यर्चिषा । अज्ञानो अजरैरभि ॥४॥  
 अत्रिमनु स्वराज्यमग्निमुक्त्यानि वावृधुः । विश्वा अधिश्रियो दधे ॥५॥  
 अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य देवानामूतिभिर्वयम् ।  
 अरिष्यन्तः सचेमह्यमिष्याम पृतन्यतः ॥६॥

४ अग्नि, तुम शुद्ध, पवित्रकर्ता और वन्दनीय हो । घृत द्वारा आहुत होकर तुम अत्यन्त दीप्त हुए हो ।  
 ५ भरणकर्ता अग्नि, तुम हमारे हो । तुम वन्ध्या गौ, वृष और गर्मिणी गौ द्वारा आहुत हुए हो ।  
 ६ जिनका अन्न समिधा है, जिनमें घृत सिक्त होता है, वही पुरातन, होमनिष्पादक, वरणीय और बलके पुत्र अग्नि असीव रमणीय हैं ।

१ होता, अन्नामिकाधी, पुरुषकी तरह प्रभूत यशवाले और अमीष्टदाता अग्निके अश्वोंकी स्तुति करो ।  
 २ छनेता, अजर और मनोहर गतिवाले अग्नि हविर्दाता यजमानके शत्रु-नाशके लिये आहुत हुए हैं ।  
 ३ सुन्दर ज्वालावाले जो अग्नि गृहमें आते हुए दिन-रात स्तुत होते हैं, उनका व्रत कभी नहीं क्षीण होता ।  
 ४ जैसे किरण-रूप सूर्य प्रकाशित होते हैं, विचित्र अग्नि भी अजर शिखाओं द्वारा चारों ओर प्रकाशित होकर धेसे ही शस्त्रियों द्वारा प्रकाशित होते हैं ।

५ शत्रुओंके विनाशक और स्वयं सुशोभित अग्निके लिये सारे ऋद्धमन्त्र वर्द्धित होते हैं । अग्निने सारी घोमाएँ धारण की हैं ।

६ हमने अग्नि, इन्द्र, सोम और अन्य देवोंका प्रभय प्राप्त किया है । हमारा कोई अनिष्ट नहीं कर सकता । हम शत्रुओंको जीतेंगे ।

पञ्चम अध्याय समाप्त



## षष्ठ अध्याय



९ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

नि होता होतृषदने विद्वानस्त्वेपो दीदिवौ असदत्सुदक्षः ।  
 अदग्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रं मरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥१॥  
 त्वं दूतस्त्वमुनः पररूपास्त्वं वस्य आपृपम प्रणेता ।  
 अग्ने सोकस्यनस्तनेतनूनामप्रयुच्छन्दीद्यद्बोधि गोपाः ॥२॥  
 विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे ।  
 यस्माद्योनेरुदारिथायजे तं प्र त्वे हवींषि जुष्टुरे समिद्धे ॥३॥  
 अग्ने यजस्व हविषा यजीयाऽह्नु ष्टी देष्णमभिगृणीहि राघः ।  
 त्वं ह्यसि रयिपती रयीणां त्वं शुक्रस्य वचसो मनोता ॥४॥  
 वमयन्ते न क्षीयते वसव्यं दिवेदिवे जायमानस्य वस्म ।  
 कृधि क्षुमन्तं जरितारमग्ने कृधि पतिं स्वपत्यस्य रायः ॥५॥  
 सेनानी केन सुविदग्धो अस्मे यथा देवां आयजिष्ठः स्वस्ति ।  
 अदग्धो गोपा उत नः पररूपा अग्ने धुमदुतरेवद्दिदीहि ॥६॥



१ अग्नि देवोंके होता, विद्वान्, प्रज्वलित, दीप्तिमान्, प्रकण्टक-शाली, अग्रतिष्ठत, अनुग्रह-विशिष्ट, निवासदाता, सबके मरणकर्ता और विग्रह शिक्षावाले हैं । होताके भवनमें अग्नि अच्छी तरह बैठे ।

२ अमीष्ट-वर्क अग्नि, तुम हमारे दूत बनो । हमें आपद्से बचाओ । हमारे पास धन हो । प्रसाद-गुण्य और दीक्षिताली होकर हमारे और हमारे पुत्रोंके रक्षक बनो । अग्नि, जानो ।

३ अग्नि, हम तुम्हारे उत्तम जन्मस्थानमें तुम्हारी सेवा करेंगे । जिस स्थानसे तुम उदगल हुए हो, उसकी भी पूजा करेंगे । वहाँ तुम्हारे प्रज्वलित होनेपर आवश्यक कोष तुम्हें लक्ष्य कर इन्ध प्रदान करते हैं ।

४ अग्नि देव, वाशिकोंमें तुम अष्ट हो । इष्ट्य द्वारा तुम यज्ञ करो । तत्पर होकर तुम देवोंके पास हमारे दिये जाने योग्य अन्नकी प्रार्थना करो । तुम धनोंमें उत्कृष्ट धनके अधिपति हो । तुम हमारे प्रदोष स्तोत्रको जानो ।

५ द्वांतीय अग्नि, तुम प्रतिदिन उत्पन्न होते हो । तुम्हारा दिव्य और पार्थिव धन नष्ट नहीं होता । फलतः तुम स्तोत्रकर्ता यजमानको अन्न-युक्त करो । उसे छन्दर अपत्यवाले धनका स्वामी बनाओ ।

६ अग्निदेव, तुम अपने दलके साथ हमारे प्रति अनुग्रह करो । तुम दोनोंके यानक, सर्वोपेक्षा उत्तम यज्ञ-कर्ता, देवोंके रक्षक और हमारे पालक हो । कोई तुम्हारी हिंसा नहीं कर सकता । धन और काम्निसे युक्त होकर तुम चारों ओर देदीप्यमान बनो ।

१० सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

जोहूत्रो अग्निः प्रथमः पितेवैलरूपदे मनुषा यत् समिद्धः ।  
 श्रियं वसानो अमृतो विचेता ममृजेन्यः श्रवण्यः स वाजी ॥१॥  
 श्रूया अग्निश्चित्रमानुर्ह मे विश्वाभिर्गीर्भिरमृतो विचेताः ।  
 श्यावा रथं वहतो रोहिता वोत्तारुषाह चक्रे विभृत्रः ॥२॥  
 उत्तानायामजनयन्तसुपूतं भुवदग्निः पुरुपेशासु गर्भः ।  
 शिरिणायां विदसुना महोभिरपरीवृधो वसति प्रचेताः ॥३॥  
 जिघर्म्यग्निं हविषा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा ।  
 पृथुं तिरश्चा वयसा वृहन्तं व्यचिष्टमन्नै रभसं दृशानम् ॥४॥  
 आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुपेत ।  
 मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्वा जभुराणः ॥५॥  
 द्यौश्चा भागं सहस्रानो वरेण त्वा दूतासो मनुवद्वदम् ।  
 अनूनमग्निं जुहुवा वक्षस्या मधुपृचं धनसा जोहवीमि ॥६॥

१ अग्नि सबसे प्रथम होतव्य और पिताके समान हैं। अग्नि मनुष्यों द्वारा यज्ञ-स्नानमें प्रज्वलित हुए हैं। वह द्यौ-पूण, मरण-रहित, विभिन्न-प्रज्ञा-युक्त, अन्नवान्, बलवान् और सबके सेवनीय हैं।

२ अमर, विशिष्ट प्रज्ञावाले, विविध द्यौ-युक्त अग्नि मेरे सब स्तुति-युक्त आह्वान पुनें। दो साल जोड़े अग्निका रथ चढ़ाने करते हैं। वह विविध स्थानोंमें जाते हैं।

३-५-युं लोगोंने ऊद्वर्धमुक्त अरणि या काण्डमें प्रेरित अग्निको उत्पन्न किया है। अग्नि विविध ओषधियोंमें, गर्भरूपसे, प्रविष्ट है। रातमें उत्तम-ज्ञातवान् अग्नि, महाद्यौ-युक्त होकर, वास करते हैं। उन्हें अन्वकार नहीं छिपा सकता।

४ द्यौ भुवनोंके अविष्टाता, महान्, सर्वप्रणामी, शरीरवान्, प्रचक्षु हव्य द्वारा व्याप्ता, बलवान् और सबके हर्यमान अग्निको द्यौ हव्य-घृतके द्वारा पूजा करते हैं।

५ सर्वव्यापी और सबके अग्निसुख आनेकी इच्छा करते हुए अग्निको घृत द्वारा दक्ष-सिक्त करते हैं। वह, शान्त चित्तसे, इन घृतको ग्रहण करें। मनुष्योंके सजनीय और श्लाघनीय धर्मवाले अग्निके पूण प्रज्वलित होनेपर उन्हें कोई छू नहीं सकता।

६ अपने तेजोबलसे प्राणियोंको पराजित करनेके समय, हे अग्नि, तुम हमारी सम्मोग-योग्य स्तुतिको जानो। तुम्हारा आश्रय पाकर हम मनुकी तरह स्तोत्र करते हैं। उन बहुल-मधुरूपी और धन-प्रद अग्निका जुहु और स्तुति द्वारा मैं आह्वान करता हूँ।

११ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

श्रुधोऽक्षमिन्द्र मा रिपयः स्थाम ते दावने वसूनाम् ।  
 इमा हि त्वामूर्जो वर्धयन्ति वसूयवः सिन्धवो न ह्यरन्तः ॥१॥  
 सूजो मदोरिन्द्र या अयिन्वः परिष्ठिता अहिना शूर धूर्वाः ।  
 अमर्त्यं चिह्नं मन्यमानमवाभिन्नुकथेर्वावृधानः ॥२॥  
 उकथेष्मिन्नु शूर येषु चाकन्तस्तोमेष्विन्द्र रुद्रियेषु च ।  
 तुभ्येदेता यासु मन्दसानः प्रवायवे सिञ्चते न शुभ्राः ॥३॥  
 शुभ्रं तु ते शुष्मं वर्धयन्तः शुभ्रं वज्रं वाहोर्दधानाः ।  
 शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मेदासोर्विशः सूर्येण सहाः ॥४॥  
 गुहाहितं गुह्यं गूह्यमस्त्वपीवृतं मायिनं क्षियन्तम् ।  
 उतो अपो द्यां तस्तस्त्वांसमहन्नहिं शूर वीर्येण ॥५॥  
 स्तवानुत इन्द्र पूर्व्या महान्युत स्तवाम नूतना कृतानि ।  
 स्तवावज्रं वाहोरुशन्तं स्तवाहरी सूर्यस्य केतू ॥६॥  
 हरो नु त इन्द्र वाजयन्ता घृतश्च तं स्वारमस्वाण्डाम् ।  
 वि समता भूमिरप्रधिष्ठारंस्त पर्वतश्चित् सरिच्यन् ॥७॥

१ इन्द्र, तुम मेरी स्तुति सुनो । तिरस्कार नहीं करना । हम तुम्हारे धन-दानके पात्र हैं । नदीकी तरह प्रवाहशाली वह हव्य यजमानके लिये धनेच्छा करता है । यह तुम्हें वर्द्धित करे ।

२ शूर इन्द्र, तुमने जो जल वासाया था, वृषने उसी प्रभूत जलपर आक्रमण किया था । तुमने उस जलको छोड़ दिया था । उस वसु या दास ( वृष ) ने अपनेको अमर समझा था । स्तुति द्वारा वर्द्धित होकर उसको तुमने नीचे पटक दिया ।

३ शूर इन्द्र, जिस छलकर या रुद्रकृत्र श्रद्धमंश और स्तोत्रकी तुम इच्छा करते हो और जिसमें तुम्हें आनन्द मिलता है, वह सब शुभ्र और दीप्यमान स्तुति, यज्ञके प्रति, तुम्हारे लिये प्रसूत होती है ।

४ इन्द्र, स्तोत्र द्वारा हम तुम्हारा छलकर बल वर्द्धित करते तथा तुम्हारे हाथोंमें दोल वज्र अर्पण करते हैं । वर्द्धित और तेजोयुक्त होकर तुम दास लोगोंको, सूर्य-रूप आयुष द्वारा, पराभूत करते हो ।

५ शूर इन्द्र, गुह्यमें अवस्थित, अप्रकाश्य, लुकाविरा, विरोहित और जलमें अवस्थित जिस घृत्र (अहि)ने अपनी शक्ति अन्तरीक्ष और ध्रुलोकको विस्मृत किया था, उसको वज्र द्वारा तुमने विनष्ट किया था ।

६ इन्द्र, हम तुम्हारी प्राचीन महारकीर्तियोंकी स्तुति करते हैं तथा तुम्हारे आधुनिक कृतकर्मोंकी स्तुति करते हैं । तुम्हारे दोनों हाथोंमें दीप्यमान वज्रकी स्तुति करते हैं । तुम सूर्यात्मा हो । तुम्हारे पलाका-रुवरूप हरि नामके अश्वोंकी हम स्तुति करते हैं ।

७ इन्द्र, तुम्हारे शीघ्रगामी दोनों घोड़े जलवर्षी मेघरश्मि करते हैं । समजल पृथिवी मेघ-गर्जन छनकर प्रसन्न हुई । मेघने भी, इषर-हवर, वरुण बोसा प्राप्त की ।

नि पर्वतः साधप्रयुच्छन्तस् मातृभिर्वावशानो अक्रान् ।  
 दूरे पारेवाणीं वर्धयन्त इन्द्रे पितां धमनिं पप्रथन्नि ॥८॥  
 इन्द्रो मह्यं सिन्धुमाशयानं मायाचिर्न वृत्रमस्फुरन्निः ।  
 अरेजेतां रोवसी भियानेकनिकदतो वृष्णो अस्य घज्रात् ॥९॥  
 अरोरवीद्वृष्णो अस्य वज्रो मानुषं यन्मानुषो निजूर्वात् ।  
 नि मायिनो दानवस्य माया अपादयत्पपिवान्तस्रुतस्य ॥१०॥  
 पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मन्दन्तु त्वा मन्दिनः सुतासः ।  
 पृणन्तस्ते कुक्षी वर्धयन्त्वित्था सुतः पौर इन्द्रमाव ॥११॥  
 त्वे इन्द्राप्यभूम विप्रा धियं वनेम ऋतया सपन्तः ।  
 अवस्यवो धीमहि प्रशस्तिं सद्यस्ते रायो दावने स्याम ॥१२॥  
 स्यामतेत इन्द्र येत ऊती अवस्यव ऊर्जं वर्धयन्तः ।  
 शुष्मिन्तमं यं चाकनाम देवास्मे रयिं रासि वीरवन्तम् ॥१३॥  
 रासि क्षयं रासि मित्रमस्मे रासिशर्ध इन्द्र मास्तं नः ।  
 सजोषसो ये च मन्दसानाः प्र वायवः पान्त्यप्रणीतिम् ॥१४॥

८ प्रमाद-शून्य मेघ अन्तरोक्षमें आवा और मातृ-भूत जलके साथ इधर-उधर घूमने लगा । मस्तोंने अत्यन्त दूर अन्तरोक्षमें अवस्थित शब्दको वर्द्धित करते हुए, इन्द्र द्वारा प्रेषित उस शब्दको चारों ओर फैला दिया ।

९ बली इन्द्रने इधर-उधर संचारी मेघमें अवस्थित मायावी वृत्रको मार गिराया । जलवर्षक इन्द्रके वज्रके व्यापक शब्दसे भय पाकर आवापृथिवी कम्पित हुई ।

१० जिस समय मनुष्योंके हितकारी इन्द्रने मनुष्योंके वृत्र वृत्रके विनाशकी इच्छा की थी, उस समय अभीष्ट-वर्षक इन्द्रका वज्र बार-बार गर्जन करने लगा । इन्द्रने अभिषुत सोमपान करके मायावी दानवकी सारी मायाको निपातित कर दिया था ।

११ इन्द्र, तुम अभिषुत सोमपान करो । मन्दाता सोमरस तुम्हें आमोदित करे । सोमरस तुम्हारे उदरकी पूर्ति करके तुम्हें प्रसन्न करे । इस प्रकार उदर-पूरक सोमरस इन्द्रको पृप्त करे ।

१२ इन्द्र हम मेघावी हैं । हम तुम्हारे अन्दर स्थान पावेंगे । कर्मफलकी कामनासे हम तुम्हारी सेवा करके यज्ञ करेंगे । तुम्हारा आश्रय पानेकी इच्छासे हम तुम्हारी प्रशंसाका ध्यान करते हैं, ताकि हम इसी क्षण तुम्हारे धन-दानका पात्र हो सकें ।

१३ इन्द्र, तुम्हारे आश्रय-लाभकी इच्छासे जो तुम्हारा हृदय वर्द्धित करते हैं, हम भी उन्हींकी तरह तुम्हारे आश्रित हो जायें । युतिमान् इन्द्र, हम जिस धनकी इच्छा करते हैं, तुम हमें सर्वोपेक्षा बलवान् और वीर-पुत्र-युक्त नही धन दो ।

१४ इन्द्र तुम हमें गृह दो, वन्धु दो और महापुरुषोंकी तरह वीर्य दो, प्रसन्न-वित्त वायुगण अभीष्ट आनन्दित होकर आगे लाया हुआ सोम पान करें ।

व्यन्तिवन्तु येषु मन्द्सानस्तृप्तसोमं पाहि द्रव्यदिन्द्र ।  
 अस्मान्स्तु पृत्स्वातरुत्रावर्धयो धां बृहद्भिरकैः ॥१५॥  
 बृहन्त इन्तु ये ते तदत्रोक्थेमिवा सुम्नमाविवासान् ।  
 स्तृणानासो बर्हिः पस्त्यावरवोता इदिन्द्र वाजमग्मन् ॥१६॥  
 उग्रेष्विन्तु शूर मन्द्सानस्त्रिकद्रुकेषु पाहि सोममिन्द्र ।  
 प्रबोधुवच्छ्रम श्रूषु प्रीणानो याहि हरिस्त्यां सुतस्य पीतिम् ॥१७॥  
 चिष्वाशवः शूर येन वृत्रमवाभिनदातुमौणंवाभम् ।  
 अपावृणोऽर्थोतिरायाय निसव्यतः सावि दस्युरिन्द्र ॥१८॥  
 सनेम येत ऊतिमिस्तरन्तो विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून् ।  
 अस्मभ्यं तस्वाष्ट्रं विश्वरूपमरन्धवः साख्यस्य त्रिताय ॥१९॥  
 अस्यसुवानस्य मन्दिनस्त्रितस्य न्यवुर्दं वावृधानो अहतः ।  
 अधर्तयत् सूर्यो न चक्रां भिनद्वलभिन्द्रो अङ्गिरस्वान् ॥२०॥  
 नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रो दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।  
 शिक्षास्तोतुम्यो मातिघग्मगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥२१॥



१५ इन्द्र, जिन मरुतोंके सहायक होनेपर तुम हस्त होते हो, वे शीघ्र सोम पान करें। तुम भी अपनेको हड़ करके सुक्षिप्तर सोम पान करो। बधुनायक इन्द्र, बलवान् और पूजनीय मरुतोंके साथ तुम युद्धमें हमें वर्द्धित करो—बुलोकको भी वर्द्धित करो।

१६ अनिष्ट-निवारक इन्द्र, तुम सुख-प्रद हो। जो पुत्र उरुध्व द्वारा तुम्हारी सेवा करता है, वह शीघ्र ही महान् हो जाता है। जो कुप विद्वक्तर तुम्हारी सेवा करते हैं, वह तुम्हारा आश्रय प्राप्त कर गृहके साथ अन्न प्राप्त करते हैं।

१७ शूर इन्द्र, तुम उग्र त्रिकद्रु दिन-विशेषोंमें अत्यन्त हृष्ट होकर सोमपान करो। अनन्तर प्रसन्न होकर और अपनी दाढ़ी-भूँछमें कगो सोमको भाड़कर सोम पानके लिये हरि नामक घोड़ेपर चढ़कर आओ।

१८ इन्द्र, जिस बलके द्वारा तुमने द्रुके पुत्र धृत्रको ऊर्णनाभि कीटक की तरह विनष्ट किया था, वही बल धारण करो। आर्यके लिये तुमने ज्योति दी है। दस्यु तुम्हारे बाधे हैं।

१९ इन्द्र, जिन लोगोंने तुम्हारा आश्रय प्राप्त करके सारे गवैकारी मनुष्योंको अतिक्रम किया है और आर्य-भाव द्वारा दस्युका अतिक्रम किया है, हम उनको भजते हैं। तुमने त्रितके बन्धुत्वके लिये त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपका वध किया है। हमारे लिये भी वैसा ही करो।

२० इन हृष्ट और सुतवान् त्रित द्वारा वर्द्धित होकर इन्द्रने अर्बुदका विनाश किया था। जैसे सूर्य रथ-चक्र चलाते हैं, वैसे ही इन्द्रने अङ्गिरा लोगोंकी सहायता प्राप्त करके वज्रको घुमाया था और बलको विनष्ट किया था।

२१ इन्द्र, तुम्हारी जो घनवती दक्षिणा स्तोत्राका मगोरथ परा करती है, उसे हमें दो। तुम भजनीय हो। हमें जोड़कर और किसीको भी नहीं देना। हम पुत्र-पौत्र-युक्त होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे।



१२ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।  
 यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृमणस्य महा स जनास इन्द्रः ॥१॥  
 यः पृथिवीं व्यथमानामद्वह्यः पर्वतान् प्रकुपितान् अरम्णात् ।  
 यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो घामस्तम्नात् स जनास इन्द्रः ॥२॥  
 यो हत्वा हिमरिणात् सप्तसिन्धून् यो गा उदाजदपधा बलस्य ।  
 यो अश्मनोरन्तरशिं जजान सवृक्षसमत्सु स जनास इन्द्रः ॥३॥  
 येनेमा विश्वा क्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं शुहाकः ।  
 श्वज्ञोव यो जिगीर्वाँलक्षमाद्वर्यः पुष्टानि स जानस इन्द्रः ॥४॥  
 यं रुमा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमहुर्नपो अस्तीत्येनम् ।  
 सो अर्यः पुष्टीर्विज्जवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥५॥  
 यो रघस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः ।  
 युक्त प्राणो योविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥६॥

१-मनुष्यो या असुरो, जो प्रकाशित हैं, जिन्होंने जन्मके साथ ही देवोंमें प्रधान और मनुष्योंमें अग्रणी होकर वीरकर्म द्वारा सारे देवोंको विभूषित किया था, जिनके शरीर-बलसे आवापृथिवी जीत हुई थी और जो महती सेनाके नायक थे, वही इन्द्र हैं ।

२ मनुष्यो या असुरो, जिन्होंने व्यथित पृथिवीको हड़ किया है, जिन्होंने प्रकुपित पर्वतोंको निवर्तित किया है जिन्होंने प्रकाश अन्तरीक्षको बनाया है और जिन्होंने धुलोकको स्वस्थ किया है, वही इन्द्र हैं ।

३ मनुष्यो या असुरो, जिन्होंने वृत्रका विनाश करके खात नदियोंको प्रवाहित किया है, जिन्होंने बल असुर द्वारा रोकी हुई गायोंका उद्धार किया था, जो दो मेघोंके बीचसे अग्निको उत्पन्न करते हैं और जो समर-भूमिमें शत्रुओंका नाश करते हैं, वही इन्द्र हैं ।

४ मनुष्यो या असुरो, जिन्होंने समस्त विरवका निर्माण किया है, जिन्होंने दासोंको निकुष्ट और गूढ़ स्थानमें स्थापित किया है, जो लक्ष्य जीत कर व्याघ्रकी तरह शत्रुके सारे घनको ग्रहण करते हैं, वही इन्द्र हैं ।

५ मनुष्यो या असुरो, जिन अर्थकर देवके सम्बन्धमें लोग जिज्ञासा करते हैं, वह कहाँ हैं ? जिनके विषयमें लोग बोलते हैं कि, वह नहीं हैं और जो शासककी तरह शत्रुओंका सारा घन, चिन्तित करते हैं, विश्वास करो, वही इन्द्र हैं ।

६ मनुष्यो या असुरो, जो समृद्ध धन प्रदान करते हैं, जो दरिद्र याचक और स्त्रोताको धन देते हैं और जो शोभन हस्त या केतुनीवाले होकर सोमाभिषेक-कर्ता और दायोंमें पत्थरवाले यजमानके रक्षक हैं, वही इन्द्र हैं ।

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।  
 यः सूर्यं य उपसं जजान यो अपां नेता स जाता स जनास इन्द्रः ॥७॥  
 यं क्रन्दसी संयती विहृयेते परेश उभया अमित्राः ।  
 समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥८॥  
 यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं शुध्यमाना अवसे हवन्ते ।  
 यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ॥९॥  
 यः शश्वतो महो नो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान ।  
 यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो वस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥१०॥  
 यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन् चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत् ।  
 ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥११॥  
 यः सप्तरश्मिर्धृपभस्तुविष्मानवास्तुजात् सतवे सप्तसिन्धून् ।  
 यो रीहिणमस्फुरद्वज्रबाहुर्द्यामरोदन्तं स जनास इन्द्रः ॥१२॥  
 द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।  
 यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥१३॥

७ मनुष्यो या असुरो, घोड़े, गायें, गाँव और रथ जिनकी आज्ञाके आधीन हैं, जो सूर्य और अपाको उत्पन्न करते हैं और जो जल प्रेरित करते हैं, वही इन्द्र हैं ।

८ मनुष्यो या असुरो, दो सेनाबल, परस्पर मिलनेपर, जिन्हें बुलाते हैं, उत्तम-अवम दोनों प्रकारके शत्रु जिन्हें बुलाते हैं और एक ही तरहके रथोंपर बैठे हुए दो मनुष्य जिन्हें नाना प्रकारसे बुलाते हैं, वही इन्द्र हैं ।

९ मनुष्यो या असुरो जिनके न रहनेसे कोई विजयी नहीं हो सकता, युद्धकालमें, रक्षाके लिये, जिन्हें लोग बुलाते हैं, जो सारे संसारके प्रतिनिधि हैं और जो क्षयरहित पर्वतादिको भी नष्ट करते हैं, वही इन्द्र हैं ।

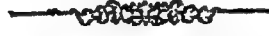
१० मनुष्यो या असुरो, जिन्होंने वज्र द्वारा अनेक महापापी अपूजकोंका विनाश किया है, जो गर्वकारी मनुष्य को सिद्धि प्रदान करते हैं और जो दस्युओंके हन्ता हैं, वही इन्द्र हैं ।

११ मनुष्यो या असुरो, जिन्होंने पर्वतमें जिये शम्बर असुरको चालीस वर्ष खोजकर प्राप्त किया था और जिन्होंने बल-प्रकाशक सहि नामके सोये हुए दैत्यका विनाश किया था, वही इन्द्र हैं ।

१२ मनुष्यो या असुरो, जो सप्त वर्ण या बराह, स्वपल, विश्वत्, महः, धूपि, स्वापि, गृहमेघ आदि सात रश्मियों वाले, अमीष्टवर्षी और बलवान् हैं, जिन्होंने सात नदियोंको प्रवाहित किया है और जिन्होंने वज्र-बाहु होकर स्वर्ग जानेको रोषार रीहिणको विनष्ट किया था, वही इन्द्र हैं ।

१३ मनुष्यो या असुरो, द्यावापृथिवी उन्हें प्रणाम करती हैं । उनके बलके सामने पर्वत कांपते हैं और जो सोमपान-कर्ता, दृढाङ्ग, वज्र-बाहु और वज्रयुक्त हैं, वही इन्द्र हैं ।

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शसमानमूती ।  
 यस्य ब्रह्मवर्धनं यस्य सामो यस्येदं राघः स जनास इन्द्रः ॥१४॥  
 यः सुन्वते पचसे दुध्न आचिद्वाजं दर्दपि स किलासि सत्यः ।  
 वयन्त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमावदेम ॥१५॥



१३ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।  
 ऋतुर्जनित्री तस्या अपस्परि मक्षू जात आचिशद्यासु वर्धते ।  
 तदाहना अभवत् पिप्पुपी पयोशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम् ॥१॥  
 सध्रीमायन्ति परि विभ्रतीः पयो विश्वप्सुन्याय प्रभरन्त भोजनम् ।  
 समानो ऋद्धा प्रवता मनुष्यदे यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥२॥  
 अन्वेको वर्धति यद्दाति तद्रूपा मिनन्तदपा एक ईयते ।  
 विश्वा एकस्य विबुधस्तिक्षते यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥३॥  
 प्रजाभ्यः पुष्टि विभजन्त आसते रयिमिव पृष्टं प्रभवन्तमायते ।  
 असिन्वन्दंः पितुरस्ति भोजनं यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥४॥

१४ मनुष्यो, जो सोमामिषव-वर्त्ता यजमानकी रक्षा करते हैं, जो पुरोडाश आदि पकानेवाले, स्तोता और स्तुति-पाठक यजमानकी रक्षा करते हैं और जिनके यद्दक स्तोत्र, सोम और हमारा अन्न है, वधो इन्द्र है ।

१५ इन्द्र, दुर्घर्ष होकर सोमामिषवकर्त्ता और पाककारी यजमानको अन्न प्रदान करते हो, इसलिये तुम्हीं सत्व हो । हम प्रिय और वीर दुध्न, पौत्र आदिसे युक्त होकर चिरकालतक तुम्हारे स्तोत्रका पाठ करेंगे ।

१ वर्षा ऋतु सोमकी माता है । उत्पन्न होकर सोम जलमें वदता है, इसलिये उसीमें प्रवेश करता है । जो सोम-लता जलकी सार-भूत होकर वृद्धि प्राप्त होती है, वह अमिषवके उपयुक्त है । उसी सोमलताका पीयूष इन्द्रका हव्य है ।

२ परस्पर मिली हुई उदक-वाहिनी नदियाँ चारो ओर बह रही हैं और सारे जल्लोके आश्रयमूल समुद्रको भोजन प्रदान करती हैं । निम्नगामी जलका गन्तव्य मार्ग एक ही है । इन्द्र, तुमने पहले ये सब काम किये हैं, इसलिये तुम स्तुति-योग्य हो ।

३ एक यजमान जो दान करता है, दूसरा उसका अनुवाद करता है । एक जल पशुहिंसा करके, हिंसाकर्त्ता बनकर, जाता है, दूसरा सारे घुरे कर्मोंका शोधन करता है । इन्द्र, तुमने पहले ये सब कर्म किये हैं, इसलिये तुम स्तुति-पात्र हो ।

४ इन्द्र, जैसे गृहस्थ लोग अभ्यागत अतिथिको प्रचुर धन देते हैं, वैसे ही तुम्हारा दिया धन प्रजाओंमें विभक्त होकर रहता है । लोग पिता द्वारा दिया भोजन दाँतोंसे खाते हैं । इन्द्र, तुमने पहले ये सब कार्य किये हैं, इसलिये स्तुति-योग्य हो ।

अधाकृणोः पृथिवीं सन्दूशे दिवे यो धौतीनामहिहन्नारिणक् पथः ।

तं स्वा स्तोमेमिरुद्मिर्न वाजिनं देवं देवा अजनन्त्सास्युक्थयः ॥५॥

यो भोजनं च दयसे च वर्धनमाद्रावाशुष्कं मधुमदुबोहिथ ।

सशेवधि नि दधिपे विवस्वति विश्वस्यैक ईशिपे सास्युक्थयः ॥६॥

यः पुष्पिणीश्च प्रस्वश्च धर्मणाधिदाने व्यवनीरधारयः ।

यश्चासमा अजनो दिद्यु तो दिव उरुर्ध्वीं अमिताः सास्युक्थयः ॥७॥

यो माम्मरं सहवसुं निहन्तवे पृक्षाय च दासवेक्षाय चावहः ।

ऊर्जर्यस्या अपरिविष्टमास्यमुतैवाद्य पुरुकृत् सास्युक्थयः ॥८॥

शतं वा यस्य दशसाकमाद्य एकस्य श्रुष्टौ यद्ध चोदमाविथ ।

अरजौ दस्यून्त्समुनव्वमीतये सुप्राज्यो अभवः सास्युक्थयः ॥९॥

विश्वेदन्तु रोधना अस्य पौंस्यं ददुरस्मै दधिरे कृत्तवे धनम् ।

पलस्तम्ना चिष्टिरः पञ्जसन्दूशः परि परो अभवः सास्युक्थयः ॥१०॥

सुप्रवाचनं तव वीर वीर्यं यदेकेन क्रतुना विन्दसे वसु ।

जातृष्टिरस्य प्र वयः सहस्वतो या चकर्थ सेन्द्र विश्वास्युक्थयः ॥११॥

५ इन्द्र, तुमने आकाशके लिये पृथिवीको वर्धनीय किया है। तुमने प्रवाहित नदियोंका मार्ग गमन-योग्य किया है। वृत्र-हन्ता इन्द्र, वैसे जलके द्वारा अश्वको वृत्र करते हो, वैसे ही स्तोत्रा लोग स्तोत्र द्वारा तुम्हें वृत्त करते हैं।

६ इन्द्र, तुम भोजन और वर्द्धमान घन देते हो और आर्द्र काण्डसे शुष्क और मधुर रसवाले गन्ध सादिका रोहण करते हो। तेवक यजमानको तुम घन देते हो। संसारमें तुम अद्वितीय हो। इन्द्र, तुम स्तुति-योग्य हो।

७ इन्द्र, कर्म द्वारा तुमने छेदमें फूल और फलवाली औषधिकी रक्षा की है। प्रकाशमान सूर्यकी नावा प्रकारकी कपोति उत्पन्न की है। तुमने सहान् होकर चारो ओर महान् प्राणियोंको उत्पन्न किया है। तुम स्तुति-पात्र हो।

८ वसु-कर्म-कर्ता इन्द्र, तुमने हव्यप्राप्ति और दासोंके विनाशके उद्देशसे वृत्रके पुत्र सहवसुका विनाश करने के लिये बलवती वज्रधाराका निर्मल मुख-प्रदेश इसको दिया था। तुम स्तुति-योग्य हो।

९ इन्द्र, तुम एक हो। तुम्हारे मुखके लिये दस सौ घोड़े हैं। तुमने दधीति श्रुषिपे लिये रणरहित दस्युओंका विनाश किया था। तुम सबके प्राप्य हो; इसलिये स्तुति-योग्य हो।

१० सारी नदियाँ इन्द्रकी शक्तिका अनुवर्णन करती हैं। वज्रमान लोग इन्द्रको अन्न प्रदान करते हैं और सब लोग कर्मकर्ता इन्द्रके लिये घन धारण करते हैं। तुमने विशाल वृ, पृथ्वी, विन-रात्रि, जल और ओषधि नामके च स्थानोंको निरिक्त किया है। पंचजनके पालक हो। इन्द्र, तुम सबके स्तुति-पात्र हो।

११ तुम्हारा वीर्य सबके लिये श्लाघनीय है। तुमने एक कर्म द्वारा वसुओंका घन प्राप्त किया है। तुमने बलिष्ठ जातृष्टिरको अन्न दिया है। चूँकि यह सब कार्य तुमने किये हैं; इसलिये तुम सबके स्तुति-पात्र हो।

अरमयः सरपसस्तराय कं तुर्वीतये च वयथाय च श्रुतिम् ।  
 नीचा सन्तमुदनयः परावृजं प्रान्धं श्रोणं श्रवयन्त सास्युवध्यः ॥१२॥  
 असमन्धं तद्वसो दानाय राघः समर्थयस्व बहु ते वलव्यम् ।  
 इन्द्र यच्चित्रं श्रवत्या अनुद्यन्वृहद्वदेम विदधे सुवीराः ॥१३॥

१४ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

अध्वर्यवो भरतेन्द्राय सोममामत्रेमिः सिध्वतामद्यमन्धः ।  
 कामी हि वीरः सदमस्य पीतिं जुहोत वृष्णे तदिदेष वष्टि ॥१॥  
 अध्वर्यवो यो व्यो वन्निवांसं वृत्रं जघानाशन्येव वृक्षम् ।  
 तस्मा एतं भरत तद्वशायं एष इन्द्रो अर्हति पीतिमस्य ॥२॥  
 अध्वर्यवो यो वृषीकं जघान यो गा उदाजदप हि बलं वः ।  
 तस्मा एतमन्तरिक्षे न वातमिन्द्रं सोमैरोर्णुत जूर्न वस्त्रैः ॥३॥  
 अध्वर्यवो य उरणं जघान नव चरत्वांसं नवतिं च बाहून् ।  
 यो अबुधमवनीचा ववाधे तमिन्द्रं सोमस्य भृथे हिनोत ॥४॥

१२ इन्द्र, सरलतासे। प्रवाहशूल जलके पार जानेके लिये तुमने तुर्वीति और वय्यको मार्ग दे दिया था । तुमने अग्ने और पञ्च, परावृजको सलसे उदार करके अपनेको कीर्तिशाली बनाया है; इसलिये तुम स्तुति-योग्य हो ।

१३ निवास-दाता इन्द्र, हमें भोगके लिये धन दो । तुम्हारा वह धन प्रभूत, वासयोग्य और विचित्र है । हम प्रतिदिन उस धनके भोगकी इच्छा करते हैं । हम उत्तम पुत्र-पौत्र प्राप्त करके इस यज्ञमें प्रभूत स्तोत्र-का पाठ करेंगे ।

१ अध्वर्युगण, इन्द्रके लिये सोम ले आओ । वमसके १२ मादक अन्न अग्निमें फेंको । वीर इन्द्र सदा सोमपानके अभिलाषी रहते हैं । असौष्टवर्षी इन्द्रके लिये सोम प्रदान करो । इन्द्र उसे चाहते हैं ।

२ अध्वर्युगण, जिन इन्द्रने जलछो आच्छादित करनेवाले वृषका, वज्रद्वारा वृक्षकी तरह, विनाश किया है, उन्हीं सोमाभिलाषी इन्द्रके लिये सोम ले आओ । इन्द्रदेव सोमपानके अपयुक्त पात्र हैं ।

३ अध्वर्युगण, जिन इन्द्रने वृषीकका विनाश किया था, जिन्होंने बल अथवा वृषावारा अवस्त्र गायोंका उदार करके उसे विनष्ट किया था, उन्हीं इन्द्रके लिये, जैसे वायु अन्तरिक्षमें व्याप्त है, वैसे ही, सोमको सर्वत्र व्याप्त करो । जैसे जीर्णको वस्त्रके द्वारा आच्छादित किया जाता है, वैसे ही सोम द्वारा इन्द्रको आच्छादित करो ।

४ अध्वर्युगण, जिन इन्द्रने निम्बानवे बाहुं दिखानेवाले उरणका विनाश किया था तथा अबुधको अधोमुख करके विनष्ट किया था, सोम तैयार होनेपर उन्हीं इन्द्रको प्रसन्न करो ।

अध्वर्यवो यः स्वश्वं जघान यः शुष्णमशुषं यो ज्यंसम् ।  
 यः पिप्पुं नमुचिं यो रुधिकां तरुमा इन्द्रायान्वसो जुहोत ॥५॥  
 अध्वर्यवो यः शतं शंवरस्य पुरो विभेदाश्मनेव पूर्वीः ।  
 यो धर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रमपावपद्भरता सोममस्मै ॥६॥  
 अध्वर्यवो यः शतमालहस्त्रं भूम्या उपस्थे वपजघन्वान् ।  
 कुत्सस्यायोरतिथिगवस्य वीरान्यवृणाम्भरता सोममस्मै ॥७॥  
 अध्वर्यवो यन्वरः कामयाध्वे श्रुष्टी वहन्तो नशथातमिन्द्रे ।  
 गमस्तिपूतं भरत श्रुतायेन्द्राय सोमं यज्यवो जुहोत ॥८॥  
 अध्वर्यवः कर्तना श्रुष्टिमस्मै वने निपूतं वन उन्नयधश्मम् ।  
 जुषाणो हस्त्यममिवावशे व इन्द्राय सोमं मदिरं जुहोत ।  
 अध्वर्यवः पयसो धर्यधागोः सोमेभिरिं पृणता भोजमिन्द्रम् ।  
 वेदात्मस्य निभृतं म एतद्विस्तन्तं भूयो यजतश्चिकेत ॥९॥  
 अध्वर्यवो यो दिव्यस्य वस्यो यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा ।  
 तमुर्वरं नपृणता यवेनेन्द्रं सोमेमिस्तदपो वो अस्तु ॥१०॥

५ अध्वर्युगण, जिन इन्द्रने सरलतासे अश्वका विनाश किया था, जिन्होंने अशोषणीय शुष्णको स्कन्धहीन करके मार डाला था, जिन्होंने पिप्पु, नमुचि और रुधिकाका विनाश किया था, उन्हीं इन्द्रके लिये अन्न प्रदान करो ।

६ अध्वर्युगण, जिन इन्द्रने प्रस्तरके सहस्र वज्र द्वारा शम्बरकी असीव प्राचीन नगरियोंको द्विन्न-मिन्न किया था, जिन्होंने पर्वीके सौ हजार पुत्रोंको भूमिधायी किया था, उन्हीं इन्द्रके लिये सोम ले आओ ।

७ अध्वर्युगण, जिन शत्रु-हन्ता इन्द्रने भूमिकी गोदमें सौ हजार अश्वोंको मार गिराया था, जिन इन्द्र ने कुत्स, आयु और अतिथिगवके प्रतिद्वन्द्वियोंका वध किया था, उनके लिये सोम ले आओ ।

८ नेता अध्वर्युगण, तुम जो चाहते हो, वह इन्द्रको सोम प्रदान करनेपर सुरत मिल जायगा । प्रसिद्ध इन्द्रके लिये हस्त द्वारा शोधित सोम ले आओ । हे याज्ञिकगण, इन्द्रके लिये वह प्रदान करो ।

९ अध्वर्युगण, इन्द्रके लिये छलकर सोम तैयार करो । संभोग-योग्य जलमें शोधित सोम ऊपर ले आओ । इन्द्र प्रसन्न होकर तुम्हारे हाथोंसे तैयार किया हुआ सोम चाहते हैं । इन्द्रके लिये तुम लोग मदकारक सोम प्रदान करो ।

१० अध्वर्युगण, गायका अशोदेश जैसे दुग्धसे पूर्ण रहता है, वैसे ही इन फल-प्रदाता इन्द्रको सोम द्वारा पूर्ण करो । सोमका गुड़ स्वभाव में जानता हूँ । यजनीय इन्द्र सोमप्रद यजमानको अच्छी तरह जानते हैं ।

११ अध्वर्युगण, इन्द्रदेव, स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरीक्षके धनके राजा हैं । जैसे यव ( जौ ) से घान्य रखनेका स्वाभाव पूर्ण किया जाता है, वैसे ही सोम द्वारा इन्द्रको पूर्ण करो । वह कार्य तुम लोगोंके द्वारा पूर्ण हो ।

अस्मभ्यं तदसौ दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसन्त्यम् ।  
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनुद्यन्वृहद्वदेम विदधे सुधीराः ॥१५॥

१५ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्रधान्वस्य महतो महानि सत्या सत्यस्य करणानि वोचम् ।  
त्रिकद्र केष्वपिवत् सुतस्यास्य मदे अहिमिन्द्रो जघान ॥१॥  
अर्घंशे द्यामस्य भायद्वहन्तमा रोदसी अपृणदन्तरिक्षम् ।  
स धारयत् पृथिवीं पप्रथञ्च स्वामस्य ता मद् इन्द्रश्चकार ॥२॥  
सदमेव प्राचो वि मिमाय मानैर्वज्रेण खान्यतृणानदीनाम् ।  
वृथासृजत् पथिभिर्दीर्घयाथैः सोमस्य ता मद् इन्द्रश्चकार ॥३॥  
स प्रवोह्लून् परिगत्या दभीतेर्विश्वमधत्तायुधमिद्धे अग्नौ ।  
सङ्गोभिरश्वैरसृजद्रथेभिः सोमस्य ता मद् इन्द्रश्चकार ॥४॥

१२ निवास-प्रद इन्द्र, हमें भोगके लिये धन प्रदान करो । तुम्हारा यह धन प्रभूत, वांछ-योग्य और विविध है । हम प्रतिदिन उसी धनको भोग करनेकी इच्छा करते हैं । हम उत्तम पुत्र-पौत्र प्राप्त करके इस यज्ञमें प्रभूत स्तोत्रका पाठ करेंगे ।

१ मैं बलवान् हूँ । सत्य-संकल्प इन्द्रकी यथार्थ और महती कीर्तियोंका वर्णन करता हूँ । इन्द्रने त्रिकद्र यज्ञमें सोम पान किया है । सोमजन्य प्रसन्नता होनेपर इन्द्रने अहिका वध किया ।

२ आकाशमें इन्द्रने यह लोकको रोक रखा है । आवापृथिवी और अन्तरीक्षको अपने तेजसे पूर्ण किया है । विस्तीर्ण पृथिवीको धारण किया है और उसे प्रसिद्ध किया है । सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था ।

३ यज्ञ-गुरुकी तरह इन्द्रने माप करके, सारे संसारको पूर्वामुख करके बनाया है । उन्होंने वज्र द्वारा नदीके निकलनेवाले द्रव्यजोंको खोल दिया । उन्होंने अनायास ही दीर्घकालतक जाने योग्य मार्गोंसे नदियोंको प्रेरित किया था । सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था ।

४ जो अश्व दभीति ऋषिको उनके नगरके बाहर ले जा रहे थे, मार्गमें उपस्थित होकर इन्द्रने उनके सारे आयुषोंको दीप्यमान अग्निमें दहन कर डाला । अनन्तर दभीतिको अनेक गायें, घोड़े और रथ दिये । सोमजन्य हर्षके उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था ।

स ईं महीं धुनिमेतोररम्णात् सो अस्नातू नपारयत् स्वस्ति ।  
 त उत्ताय रयिममि प्रतस्तुः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥५॥  
 सोदध्वं सिन्धुमरिणान् महित्वा वज्रेणान उपसः सम्पिपेष ।  
 भजवसो जविनीभिर्विवृश्चन्तसोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥६॥  
 स विद्वाँ अपगोहं फनोनामाविर्भवन्नुदतिष्ठत् परावृक् ।  
 प्रति श्रोणः स्थाव्रघनगचष्ट सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥७॥  
 भिनव्रलमङ्गिरोभिर्गृणानो वि पर्वतस्य द्वाहितान्यैरत् ।  
 रिणप्रोधांसि कृत्रिमाण्येषां सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥८॥  
 स्वप्नेनाभ्युप्या सुसुरिं धुनिं च जघन्य दस्युं प्र दभीतिमावः ।  
 रम्भी चिदत् चिविवे हिरण्यं सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥९॥  
 नूनं सा ते प्रतिवरं जरित्रे दुह्यीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।  
 क्षिक्षास्तोतृभ्यो मतिधग्मगो नो बृहद्वदेम वि३थे सुवीराः ॥१०॥



५ उन इन्द्रने धुति, इरावती या पङ्कणी नामक महागदीको, पार जानेके लिये, शान्त किया था। नदीके पार जानेमें असमर्थ लोगोंको निरापद पार दिया था। वे नदी पार होकर घनको उत्पन्न करके गये थे। सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था।

६ अपनी महिमासे इन्द्रने सिन्धुको उत्तर-वाहिनी किया है। वे नदी सेनाके द्वारा, दुर्बल सेनाको भिन्न करके वज्र द्वारा उपाके रयको धूर्ण किया था। सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था।

७ अपने व्याहके लिये आयी हुई कन्याओंका भागना जानकर परावृज क्षत्रि सवके सामने ही रुठकर खड़े हो गये। पशु होनेपर भी कन्याओंके प्रति दौड़; चतुर्हीन होनेपर भी उन्हें देखा; क्योंकि स्तुतिसे प्रसन्न होकर इन्द्रने उन्हें पैर-भालें दे दी थीं। सोमजन्य हर्ष होनेपर इन्द्रने यह सब किया था।

८ अङ्गिरा लोगोंको स्तुति करनेपर इन्द्रने बलको विद्वान् किया था। पर्वतके छहद्वारको खोला था। इनकी कृत्रिम क्वावटको भी हटाया था। सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था।

९ इन्द्र, तुमने सुसुरि और धुनि नामके अहुरोंको, दोष विद्वाँमें प्रसिद्ध करके, चिन्तित किया था। दभीति नामक राजर्षिकी रक्षा की थी। उनके वेत्रधारी दौवारिकने भी शत्रुका हिरण्य प्राप्त किया था। सोमजन्य हर्ष उत्पन्न होनेपर इन्द्रने यह सब काम किया था।

१० इन्द्र, तुमने जो घनवती दक्षिणा स्तुतिकारीका मनोरथ पूरा करती है, वही दक्षिणा तुम हमें प्रदान करो। तुम भजनीय हो, हमें छोड़कर और किसीको नहीं देना। हम पुत्र-पौत्रोंसे युक्त होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे।





१६ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

प्र वः सतां ज्येष्ठतमाय सुष्टुतिमग्नाविव समिधाने हविर्भरे ।  
 इन्द्रमजुर्थं जरयन्तमुक्षितं सनाद्युवानमवसे हवामहे ॥१॥  
 यस्मादिन्द्राद्बृहत्तः किञ्चनेमृते विश्वान्यस्मिन्त्सम्भृताधिवीर्या ।  
 जठरे सोमं तन्वी सहो महो हस्ते वज्रं भरति शीर्षेणि क्रतुम् ॥२॥  
 न क्षोणीभ्यां परिभवे त इन्द्रियं न समुद्रैः पर्वतैरिन्द्र ते रथः ।  
 न ते वज्रमन्वश्रोति कश्चन यदाशुभिः पतसि योजना पुर ॥३॥  
 विश्वेहास्मै यजताय धृष्णवे क्रतुं भरन्ति वृषभाय सश्वते ।  
 वृषा यजस्व हविषा विदुष्टरः पिबेन्द्र सोमं वृषभेण भानुना ॥४॥  
 वृष्णाः कोशः पवते मध्व ऊर्मिवृषमान्नाय वृषभाय पातवे ।  
 वृषणाध्वयू वृषभासो अद्रयो वृषणं सोमं वृषभाय सुव्रति ॥५॥  
 वृषां ते वज्र उत ते वृषा रथो वृषणा हरी वृषभान्यायुधा ।  
 वृष्णो मदस्य वृषभत्वमीशिष इन्द्र सोमस्य तृष्णहि ॥६॥

१ तुम्हारे उपकारके लिये देवोंमें ज्येष्ठतम इन्द्रके लिये दीप्यमान अग्निमें हम हव्य प्रदान करते हैं । अनन्तर उनकी मनोहर स्तुति करते हैं । अपनी रक्षाके लिये स्वयं जरा-रहित, सारे संसारको जरा देनेवाले, सोमसिक्त, सनातन और तरुण-वयस्क इन्द्रको हम बुलाते हैं ।

२ विराट् इन्द्रके बिना संसार नहीं है । जिन इन्द्रमें सारी शक्तियाँ हैं, वही इन्द्र उदरमें सोमरस चारण करते हैं । उनके शरीरमें बल और तेज है । उनके हाथमें वज्र और मस्तकमें ज्ञान है ।

३ इन्द्र, जब कि तुम क्षीप्रगामी अश्वपर चढ़कर अनेक योजन जाते हो, सब धावापृथ्वी तुम्हारे बलको पराजित नहीं कर सकती । समुद्र और पर्वत तुम्हारे रथका परिभव नहीं कर सकते । कोई भी व्यक्ति तुम्हारे बलका परिभव नहीं कर सकता ।

४ सब लोग यजनीय, शत्रुनाशक, अभीष्टवर्षी और सदा सज्जित इन्द्रका यज्ञ करते हैं । तुम सोम-दाता और विदुवान हो । इन्द्रके लिये तुम भी यज्ञ करो । इन्द्र, अभीष्टवर्षी और दीप्यमान अग्निके साथ सोम पान करो ।

५ अभीष्टवर्षी और मादक सोमरस अनुष्ठातानोंके लिये उत्तेजक होकर बलप्रद, अन्न-विशिष्ट और अभीष्टवर्षी इन्द्रके पानके लिये जाता है । सोमरसप्रद अर्घ्यद्वय और अभीष्टवर्षी अभिषव-प्रस्तर अभीष्टवर्षी सोमका, तुम्हारे लिये अभिषवण करते हैं । तुम भी अभीष्टवर्षी हो ।

६ अभीष्टवर्षी इन्द्र, तुम्हारे वज्र, रथ हस्तिनामके अश्व और तुम्हारे सारे हथियार अभीष्टवर्षी हैं । तुम भी मादक और अभीष्टवर्षी सोमके अधिकारी हो । इन्द्र, अभीष्टवर्षी सोमसे तुम भी वृष्ट बनो ।

प्र ते नावं न समने वचस्युर्वं ब्रह्मणा यामि सवनेषु दाधृषिः ॥  
 कुविन्नो अस्य वचसो निवोधिषदिन्द्रमुत्सं न धसुनः सिचामहे ॥७॥  
 पुरा संवाधादभ्याववृत्स्व नो धेनुं वत्सं यवसस्य पिप्युपी ।  
 सकृत्सुते सुमतिभिः शतक्रतो सम्पत्नीभिर्न वृषणो नसीमहि ॥८॥  
 नूनं सा ते प्रति परं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।  
 शिक्षास्तोतृभ्यो मातिधग् भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९॥



१० सूक्त । इन्द्र देवता । । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।  
 तदस्मै नव्यमङ्गिरस्वदर्चत शुष्मा यदस्य प्रत्नयो दीरते ।  
 विश्वा यदुगोता सहसा परोवृता मदे सोमस्य दृंहितान्यैरयत् ॥१॥  
 स भूत यो ह प्रथमाय धायस ओजो मिमानो महिमानमातिरत् ।  
 शूरो यो युदस तन्वं परिच्यत शीर्षणि द्यां महिना प्रत्यमुञ्चत ॥२॥  
 अघातुणोः प्रथा वीर्यं महद्यदस्याग्रे ब्रह्मणा शुष्ममैरयः ।  
 रथेष्टेन हुर्यश्वेन विच्युताः प्रजीरयः सिस्त्रते सध्रयकपृथक् ॥३॥

७ तुम शत्रुनाशक हो । तुम संग्राममें स्तोत्राभिलाषी और नौकाकी तरह उद्धारक हो । यज्ञ-कालमें मैं स्तोत्र करते-करते तुम्हारे पास जाता हूँ । इन्द्र, हमारे इस स्तुतिवाक्यको अच्छी तरह जानो, हम कृपकी तरह दानाधार इन्द्रको सिक्त करेंगे ।

८ जैसे तृण खाकर तृप्त गाय घसको लौटाती है, वैसे ही हे इन्द्र, हमें अनिच्छते पहले ही लौटा दो । शतक्रतु, जैसे पतिर्वा युवाको व्याप्त करती हैं, वैसे ही हम सन्दर स्तोत्र द्वारा एक बार तुम्हें व्याप्त करेंगे ।

९ इन्द्र, तुम्हारी जो धनवती दक्षिणा स्तोत्राको सारे मनोरथ प्रदान करती है, वह दक्षिणा तुम हमें प्रदान करो । तुम भजनीय हो । हमें छोड़कर अन्यको नहीं देना । हम पुत्र-पौत्र-युक्त होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे ।

१ स्तोत्राओ, तुम लोग अङ्गिरा लोगोकी तरह, नयी स्तुति द्वारा, इन्द्रकी शपासना करो, क्योंकि इन्द्रका शोपक तेज, पूर्वकालकी तरह, उदित होता है । सोमजनित हर्षके उत्पन्न होनेपर इन्द्रने वृष द्वारा आक्रान्त सारी मेघ-राशिको उद्वेगित किया था ।

२ जिन इन्द्रने बलका प्रकाश करके प्रथम सोमपानके लिये अपनी महिमाको बढ़ाया है और जिन शत्रुइन्ता इन्द्रने युद्धकालमें अपने शरीरको सुरक्षित रखा था, वे ही इन्द्र प्रसन्न हों । उन्होंने अपनी महिमासे अपने मस्तकपर शूकोकको धारण किया था ।

३ इन्द्र, तुमने अपना महावीर्य प्रकट किया है, क्योंकि स्तोत्र द्वारा प्रसन्न होकर तुमने शत्रु-विनाशक बल प्रकट किया है । तुम्हारे रथस्थित हरि नामक अश्वोंके द्वारा स्वस्थानसे विच्युत होकर अनिच्छकारी लोगोंमेंसे कुछ बल बाँचकर और कुछ अलग-अलग होकर भाग गये हैं ।

अथा यो विश्वा भुवनाभिमज्जनेशानकृत् प्रयया अभ्यवर्धत ।  
 आद्रोदसी ज्योतिषा वह्निरातनोत्सीव्यं तमांसि दुधिता समव्ययत् ॥४॥  
 सः प्राचीनान् पर्वतान् दूहदोजसाधराचीनमरुणोदपामपः ।  
 अधारयत् पृथिवीं विश्वधायसमस्तम्नान् मायया द्यामवस्रसः ॥५॥  
 सास्मा अरं बाहुभ्यां यं पिताकृणोद्विश्वस्मादाजनुषो वेदसस्परि ।  
 येना पृथिव्यां नि क्रिविं शयध्यै वज्रेण हृत्स्यवृणक्तु विष्वणिः ॥६॥  
 अमाजूरिव पित्रोः सत्वा सती समानादासदसस्त्वामिये भगम् ।  
 रुधि प्रकृतमुप मास्याभर दग्धि भागं तन्वोयेन मामहः ॥७॥  
 भोजं त्वामिन्द्र वयं हुवेम दक्षिण्वमिन्द्रापांसि वाजान् ।  
 अविद्धोन्द्र चित्रया न ऊती रुधि वृषन्निन्द्र वस्यसो नः ॥८॥  
 नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहोयदिन्द्र दक्षिणा मघोनो ।  
 शिक्षा स्तोतृभ्यो माति वग् भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९॥



४ बहुत अन्नवाले इन्द्र अपने बलसे सारे भुवनोको अभिभूत करके और अपनेको सबका अधिपति करके वर्द्धित हुए हैं । अनन्तर संसारके बाहक इन्द्रने याव पृथिवीको व्याप्त किया है । इन्द्रने दुःस्थित तमोरागिको चारो ओर फेंकते हुए संसारको व्याप्त किया है ।

५ इन्द्रने इधर-उधर घूमनेवाले पर्वतोंको, अपने बलसे, अचल किया है । मेघ-स्थित जलरागिको नीचे गिराया है । उन्होंने संसार-धारवित्री पृथिवीको अपने बलसे धारण किया है । और बुद्धि-बलसे घुलोकको पतनसे बचाया है ।

६ इन्द्र, इस संसारके लिये पर्याप्त हुए हैं । वे सबके रक्षक हैं । उन्होंने सारे जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट ज्ञान-बलसे अपने हाथों संसारको निर्माण किया है । विविध-कीर्तिमान् इन्द्रने इस ज्ञानसे क्रिविको वज्र द्वारा मारते हुए, पृथिवीपर सेटकर रहनेके लिये, विनष्ट किया था ।

७ इन्द्र, जैसे आभरण पिता-माताके साथ रहनेवाली पुत्री अपने पिता-कुलसे ही अंशके लिये प्रार्थना करती हैं, वैसे ही मैं तुम्हारे पास धनकी याचना करता हूँ । उस धनको तुम सबके पास प्रकट करो, उस धनको मापो और उसे सम्पादित करो । मेरे शरीरके भोगने योग्य धन दो । इस धनसे स्तोताओंको सम्मानित करो ।

८ इन्द्र, तुम पालक हो । हम तुम्हें छुलाते हैं । तुम कर्म और अन्नके दाता हो । नाना प्रकारसे आश्रय प्रदान कर तुम हमें बचाओ । अमीष्टवर्षी इन्द्र, तुम हमें अत्यन्त धनशाली करो ।

९ इन्द्र, तुम्हारी जो धनवती दक्षिणा स्तोताको सारे मनोरथ प्रदान करती है, वही दक्षिणा तुम हमें दो । तुम मजनीब हो । हमें छोड़कर अन्य किलीको नहीं देना । हम पुत्र-पौत्रसे संयुक्त होकर इस यज्ञमें प्रसूत स्तुति करेंगे ।

१८ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्रातारथो नवो योजि सस्निश्चतुर्गुणस्त्रिकशः सत्तरश्मिः ।  
 दशारित्रो मनुष्यः स्वर्गः स इष्टिमिर्मतिभो रंहो भूत् ॥१॥  
 सास्मा अरं प्रथमं स द्वितीयमुतो तृतीयं मनुपः स होता ।  
 अन्यस्या गर्भमन्य ऊजनन्त सो अन्येभिः सचते जेन्यो ध्रुवा ॥२॥  
 हरी नुकां रथ इन्द्रस्य योजमायै सूक्तेन वचसा नवेन ।  
 मोषु त्वामत्र बहवो हि विप्रा निरीरमन् यजमानासो अन्ये ॥३॥  
 आ ह्यास्यां हरिण्यामिन्द्र याह्या चतुर्भिराषड्भिर्ह्वयमानः ।  
 अष्टाभिर्दशभिः सोमपेयमयं सुतः सुमस्र मा मृधस्कः ॥४॥  
 आ विंशत्या त्रिंशता याह्यर्वाङ्गा चत्वारिंशतो हरिभिर्गुजानः ।  
 आ पञ्चाशता सूरथेभिरिन्द्रा पट्वा सप्तत्या सोमपेयम् ॥५॥  
 आशीत्या नवरया याह्यर्वाङ्गाशतेन हरिभिरुह्यमानः ।  
 अयं हि ते शुनहोत्रेषु सोम इन्द्र त्वाया परिषिक्तो मदाय ॥६॥

१ स्तुतियों और विशुद्ध यज्ञ प्रातःकाल प्रारम्भ हुआ है । इस यज्ञमें चार पत्थर, तीन प्रकारके स्वर, साठ प्रकारके इन्द्र और दस प्रकारके पात्र हैं । यह मनुष्योंके लिये हितकर और स्वर्ग-प्रदाता है । यह रनोद् स्तुति और होम आदिके द्वारा प्रसिद्ध होगा ।

२ यह यज्ञ हन इन्द्रके लिये प्रथम, द्वितीय और तृतीय सवनमें यथेष्ट हुआ । वह मानवोंके लिये शुभ फल ले आता है । दूसरे ऋत्विक् लोग भी दूसरे सिद्ध वाक्योंका गर्भ उत्पन्न करते हैं । असीष्टवर्षी और जगदीश इन्द्र अन्य देवोंके साथ मिलित होता है ।

३ इन्द्रके रथमें नये स्तोत्रोंके द्वारा, शीघ्र जानेके लिये, हरिनामके अश्वोंको जोड़ा जाता है । इस यज्ञमें अनेक भेषावो स्तोता हैं । दूसरे यजमान लोग दुर्हो अफ़्सी तरह धृष्ट नहीं कर सकते ।

४ इन्द्र, तुम बुलाये जाकर दो, चार, छः, आठ अथवा दस हरि नामक घोड़ोंके द्वारा सोमपानके लिये आओ । सोमन घनवाले इन्द्र, यह सोम तुम्हारे लिये प्रस्तुत हुआ है । तुम उसे हिसित नहीं करना ।

५ इन्द्र, तुम उत्तम गतिवाले घीस, तीस, चालीस, पचास, साठ अथवा सत्तर घोड़ोंके द्वारा हमारे सामने, सोमपानके लिये, आओ ।

६ इन्द्र, अस्सी, दस्ये अथवा सौ अश्वोंके द्वारा ढोये जाकर हमारे सामने आओ; क्योंकि इन्द्र, तुम्हारे लिये, तुम्हारे आनन्दके लिये, पात्रमें सोम रखा हुआ है ।

मम ब्रह्मेन्द्रयाह्यच्छा विज्ञवा हरी भुरि धिष्वा रणस्य ।  
 पुरुजा हि विह्वयो वभूधास्मिञ्छूर सवने मातृयस्व ॥७॥  
 न म इन्द्रेण सख्यं वि योद्धस्मभ्यमस्य दक्षिणा दुक्षीत ।  
 उपज्येष्ठे वरुथे जयस्तौ प्रायेप्राये जिगीवांसः सास ॥८॥  
 नूनं सा ते प्रतिवरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।  
 शिक्षा स्तोतृभ्यो मतिभग् भगो नो वृहद्वदेम त्रिदथे सुवीराः ॥९॥

१९ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

अपात्यस्यान्धसो मदाय मनीषिणः सुवानस्य प्रवसः ।  
 यस्मिन्निन्द्रः प्रदिवि वावृधान ओको दधे ब्रह्मण्यन्तश्च नरः ॥१॥  
 अल्य मन्दानो यध्वो वज्रहस्तोहिमिन्द्रो अर्णोवृतं विवृश्चत् ।  
 प्र यद्धयो न स्वस्तराज्यच्छाप्रयांसि च नदीनां चक्रमन्त ॥२॥  
 स माहिन इन्द्रो अर्णो अपां प्रैर्यद्विहाच्छा समुद्रम् ।  
 अजनयत् सूर्यं विवृद्गा अक्तुनाह्नां वयुनां निसाधत् ॥३॥

७ इन्द्र, मेरी स्तुतिके सामने आओ । जगद्ग्यापी दोनों अरवोंको रथके अग्र भागमें संयोजित करो । बहु-  
 संख्यक यजमान तुम्हें बुकाते हैं । शूर, व्रम इस यज्ञमें हृष्ट होओ ।

८ इन्द्रके साथ मेरी मैत्री विमुक्त न हो । इन्द्रकी यह दक्षिणा हमें अभिमत फल प्रदान करे । हम इन्द्रके  
 प्रशंसनीय और आपदको हटानेवाले दोनों हाथोंके पाल अवस्थिति करते हैं । प्रत्येक युद्धमें हम विजयी बनें ।

९ इन्द्र, तुम्हारी जो धनवती दक्षिणा स्तोताके मनोरथ पूर्ण करती है, वही दक्षिणा हमें प्रदान करो ।  
 तुम भजनीय हो । हमें ओदर वूसरेकी दक्षिणा नहीं देना । हम पुत्र-पौत्र-युक्त होकर इस यज्ञमें प्रसूत स्तुति करेंगे ।

१ सोमामिषवक्ता मनीषी धनमानका भावक अन्न, आनन्दके लिये, इन्द्र भक्षण करें । इस प्राचीन अन्नमें  
 वर्द्धमान होकर इन्द्र इसमें निवास करते हैं । इन्द्रके स्तोत्रामिकापी ऋत्विक् भी इसमें निवास कर चुके हैं ।

२ इस मङ्कर लोमसे आनन्द-विमग्ण होकर, इन्द्रने हाथोंमें वज्र धारण करके, जलके आवरण अहिका  
 छेदन किया था । उस समय प्रसन्नता-दायक जल-राशि, जैसे पक्षिगण पुष्करिणीके सामने जाते हैं, वैसे हो,  
 समुद्रके सामने जाने लगी ।

३ अहिहन्ता और पूजनीय इन्द्रने जल-प्रवाहको समुद्रके सामने प्रेरित किया । उन्होंने समुद्रको उत्पन्न  
 करके शायें प्राद की तथा तेजोबलसे दिवसोंको प्रकाशित किया ।

नो अप्रसीति मनवे पुरुणीन्द्रो दाशहाशुपे हन्ति वृत्रम् ।  
 सद्यो यो नृभ्यो अतसाद्योभूत् पस्पृधानेभ्यः सूर्यस्य साती ॥४॥  
 स सुन्वत इन्द्रः सूर्यमा देवो रिणद्धमर्त्याय सतवान् ।  
 वा यद्रयि गुहदधमस्मै भरदंशं नैतक्षो वशस्यन् ॥५॥  
 सारधयत् सधिवः सारधये शुष्णमशुषं कुयर्षं कुत्साय ।  
 दिवोदासाय नयति च नवेन्द्रः पुरो व्यैरच्छन्वरस्य ॥६॥  
 एवा त इन्द्रोच्चमहेम श्रवस्या नमना साजयन्तः ।  
 अश्वाम सत् सातमाशुषाणा ननमो ववरदेवस्य पीयोः ॥७॥  
 एवा ते गृत्समदाः शूर मग्मावस्सवो न वयुनानि तक्षुः ।  
 ग्रत्समन्त इन्द्र ते नवीय ष्वमूर्जं सुक्षितिं सुस्रमस्युः ॥८॥  
 नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनो ।  
 शिक्षास्जोतुभ्यो मातिघ्नं भगो नो वृहद्वधेम विदधे सुवीराः ॥९॥



४ इन्द्रने दण्यदाता मनुष्यको यजमानके लिये बहुसंख्यक उत्कृष्ट धन दान किया । वृत्रका विनाश किया । सूर्यको प्राप्तिके लिये स्तोताओंमें विरोध उपस्थित होनेपर इन्द्र आश्रयदाता हुए थे ।

५ इन्द्रकी स्तुति करनेपर दण्यमान इन्द्र सोमाभिषेककर्ता मनुष्य पृथक्के लिये सूर्यको लाये थे, क्योंकि ऐसे पिता पुत्रको धन प्रदान करता है, वैसे ही यज्ञकालमें पृथग्ने इन्द्रको प्रब्रह्म और अमृत्य सोम प्रदान किया था ।

६ आपने सारयि राजर्षि कुत्सके लिये दीप्तियुक्त इन्द्रने शुष्ण, अशुष और कुयवको वशीभूत किया था और दिवोदासके लिये शम्बरकी निन्धानवे नगरोंको भग्न किया था ।

७ इन्द्र, अग्निकी अभिलाषासे हम तुम्हें बलवान् करके तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम्हें प्राप्त करके हम सस्रपदी सम्पत्ताका लाभ करें । देवस्य पीयुके विरोधमें तुम वज्र फेंको ।

८ बलिष्ठ इन्द्र, जैसे गमनाभिलाषी पथिक मार्ग साफ करता है, वैसे ही गृत्समदगण तुम्हारे लिये मनोरम स्तुतिकी रचना करते हैं । तुम सर्वापेक्षा नृपण हो । तुम्हारे रोज्ञादिप्राप्ती गृत्समदगण अन्न, बल, गृह और सुख प्राप्त करें ।

९ इन्द्र, तुम्हारी जो धनवती दक्षिणा स्तोताके सारे मनोरथ पूर्ण करती है, वही दक्षिणा हमें दो । तुम मजनीय हो । हमें छोड़कर अन्य किसीको नहीं देना । हम पुत्र और पौत्रसे युक्त होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे ।

२० सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

वयं ते वय इन्द्र विद्धिषुणः प्रमरामहे वाजयुनं रथम् ।  
 विपन्यवो दीध्यतो मनीषा सुस्रमिथक्षन्तस्त्वावतो नृन् ॥१॥  
 त्वं न इन्द्र त्वाभिरूतीस्त्वायतो अमिष्टिपासि जनान् ।  
 त्वमिनो दाशुपो वरुतेत्याधीरभि यो नक्षात त्वा ॥२॥  
 स नो युवेन्द्रो जोह्वत्रः सखा शिवो नरामस्तु पाता ।  
 यः संसन्तं यः शशमानमूता पवन्तं च स्तुवन्तं च प्रणेपत् ॥३॥  
 तमुस्तुव इन्द्र तं गृणीषे यस्मिन् पुत्रा वावृधुः शाशुधुम् ।  
 स वरुत्रः कामं पोपरदियानो ब्रह्मण्यतो नूतनस्थायोः ॥४॥  
 सो अङ्गिरसामुचथा जुजुष्वान् ब्रह्मातूतोदिन्द्रो गातुमिष्णन् ।  
 मुष्णन्नुषसः सूर्येण स्तवानश्नस्य चिच्छिश्नथत् पूर्व्याणि ॥ ५ ॥

१ इन्द्र, जिस प्रकार अन्नाभिलाषी व्यक्ति रथ तैयार करता है, उसी प्रकार हम भी तुम्हारे लिये अन्न तैयार करते हैं । तुम हमें अच्छी तरह जानते हो । हम स्तुति द्वारा तुम्हें दीप्यमान करते हैं । हम तुम्हारे जैसे पुरुषसे सुख मांगते हैं ।

२ इन्द्र, तुम हमारा पालन करते हुए हमारी रक्षा करो । जो तुम्हें चाहते हैं, उनको, तुम शत्रुओंसे, रक्षा करते हो । तुम हव्यदाता यजमानके ईश्वर और उसके शत्रु को दूर करनेवाले हो । हव्य द्वारा जो तुम्हारी सेवा करता है, उसके लिये तुम यह सब कर्म करते हो ।

३ हम यज्ञ-कार्य करते हैं । तदण वयसः, आहुवान-योग्य, मित्र-तुल्य और छलदाता इन्द्र, हमारी रक्षा करें । जो स्तोत्रका उच्चारण करता है, क्रियाका समाधान करता है, हव्यका पाक करता है और स्तुति करता है, उसे आश्रय देकर इन्द्र कर्मके पार ले जाते हैं ।

४ मैं उन्हीं इन्द्रकी स्तुति करता हूँ, उन्हींकी प्रशंसा करता हूँ । उनके स्तोत्रा पहले वर्द्धित हुए थे और उन्हींने शत्रुओंका विनाश किया था । इन्द्रके निकट प्रार्थना करनेपर इन्द्र स्तोत्राभिलाषी नये यजमानकी धनेच्छाको पूरण करते हैं ।

५ अङ्गिरा लोगोंके संश्रों द्वारा प्रसन्न होकर इन्द्रने उन्हीं गाथें लानेका मार्ग दिखा दिया था और उनकी स्तुति भी पूर्ण की थी । स्तोत्रार्थकी स्तुति करनेपर इन्द्रने, सूर्यके द्वारा उषाका अपहरण करके, अश्वके प्राचीन नगरों-को विनष्ट किया था ।

सद्यश्चुत इन्द्रो नाम देव ऊर्ध्वो भुवन्मनुषे दमस्तमः ।  
 अथ प्रियमर्शसानस्य साहाजिष्ठरो भरद्वासस्य स्वधावान् ॥ ६ ॥  
 स वृत्रहेन्द्रः कृष्णयोनीः पुरन्दरो दासीरैर्यद्वि ।  
 अजनयन्मनवे क्षामपश्च सत्रा शंसं यजमानस्य तूतोत् ॥ ७ ॥  
 तस्मै तवस्पमनुदापि सत्रेन्द्राय देवेभिरणंसातौ ।  
 प्रति यदस्य वज्रं धाहोर्ध्वं हवीं दस्यून् पुर आयसीर्नितारीत् ॥ ८ ॥  
 नूनं सा ते प्रतिवरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।  
 शिक्षा स्तोतृभ्यो मातिधन् भगो नो बृहद्वदेम विदधे सुवीराः ॥ ९ ॥



२१ सूक्त । इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।  
 यिष्वजिते धनजिते एवजिते सत्राजिते नृजित उर्वराजिते ।  
 अश्वजिते गोजिते अग्निजिते अरेन्द्राय सोमं यजताय हर्ययतम् ॥ १ ॥  
 अभिभुवेभिभङ्गाय घन्वतेपाद्याय सहमाना य वेधसे ।  
 दुविप्रये वहये दुष्टरीतवे सत्रा साहेनम इन्द्राय वोचत ॥ २ ॥

६ योतिमान्, कीर्तिमान् और अतोव दशंगीय इन्द्र मनुष्यके लिये सहा तैयार रहते हैं । ब्रह्महन्ता और बलवान् इन्द्र संसारके अनिष्टकर्ता दासका प्रिय मस्तक जीवे फेंकते हैं ।

७ ब्रह्महन्ता और पुरनाशन इन्द्रने कृष्णजन्मा दास-सेनाका विनाश किया है । मनुके लिये पृथिवी और जलको सृष्टि की है । वह यजमानका उष्णमिक्षाप पूरण करे ।

८ स्तोत्रार्चने, जल-प्राप्तिके लिये, उन इन्द्रके लिये सहा बल-वर्द्धक अन्न प्रदान किया है । जिस समय इन्द्रके हाथमें वज्र दिया गया, उस समय उन्होंने उसके द्वारा दस्युओंका हनन करके उनकी कौहमयी पुरीको ध्वस्त किया था ।

९ इन्द्र, तुम्हारी घनघटी दक्षिणा स्तोत्राके सारे मनोरथ पूर्ण करती है । उसी दक्षिणाको हमें दो । तुम भजनीय हो । हमें अतिश्रम करके अन्य किसीको नहीं देना । पुत्र और पौत्रसे युक्त होकर हम इस यज्ञमें प्रभूत्व स्तुति करेंगे ।

१ घनजयी, स्वर्गजयी, सदाजयी, मनुष्यजयी, उर्वरामृमिजयी, अश्वजयी, गोजयी, जलजयी—अतएव सर्वजयी और यजनीय इन्द्रको लक्ष्य करके चाण्डालनीय सोम ले आओ ।

२ सबके पराजय-कर्ता, विमर्दक, भोक्ता, भजोप, सर्वसह, पूर्णशील, सर्वविधाता, सर्वबोद्धा, दूसरोंके दुर्बल और सर्वदा जयशील इन्द्रको लक्ष्य करके, नमः शब्दका उच्चारण करते हुए, स्तुति करो ।



सज्जासाहो जनमक्षो जनं सहस्रचक्षने शुद्धमो अनुजोपमुक्षिनः ।

वृत्तञ्चयः सष्टुरिषिश्चारित इन्द्रस्य वोचं प्रकृतानि वीर्या ॥ ३ ॥

अन्नानुदो वृषभो दोधतो वधोगम्भोर ऋण्वो असमष्टकावयः ।

रघ्नचोदः श्रयनो वीलित स्पृष्टुरिन्द्रः सुयक्ष उषसः स्वर्जनत् ॥ ४ ॥

यज्ञेन गातुमसूरो चिदिद्विरेधियो हिन्वाना वशिजो मनीषिणः ।

अमिष्वरा निषदा गा अवस्यव इन्द्रे हिन्वाना द्रविणान्याशत ॥ ५ ॥

इन्द्र श्रेष्ठानि द्रविणानि धेहि चित्तिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे ।

पोषं रथीणामरिष्टं तनूनां स्थादुमानं वाचः सुदिनत्वमहाम् ॥ ६ ॥

२२ सूक्त । इन्द्र देवता । अष्टि, अत्यष्टि और शकरी छन्द ।

त्रिकद्व केसु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृप्तलोममपिबद्विष्णुंता हृतं यथावशत् ।

स ईं ममाद महि कर्मकर्तवे महामुरुं सैनं सश्रद्धेवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥१॥

अथ त्रिविषीमां अभ्योजसा क्रिवि युधाभवदा रोषस्त्री अपृणदस्मज्जमना प्र वावृधे

अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत सैनं सश्रद्धेवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥ २ ॥

३ बहुतेके पराजयकर्ता, लोगोंके भजनीय, बलवानोंके विजेता, शत्रु निवारक, योद्धा, हर्षकर-सोम-सिक्त, शत्रु-हिलक, शत्रुओंके अभिभव-कर्ता और प्रजापालक इन्द्रके उत्कृष्ट वीर-कर्मकी सब स्तुति करते हैं ।

४ अतुलदानसम्पन्न, अभीष्टवर्षी, जिसकोके इन्ता, गभीर, दर्शनीय, कर्ममें अपराजेय, समृद्ध-लोगोंके उत्साह-दाता, शत्रुओंके कर्तनकारी, दड़ाङ्ग, जगदुप्यापी और सुन्दर-यज्ञ-विशिष्ट इन्द्रने उपासे सूर्यको उत्पन्न किया है ।

५ इन्द्रके स्तोत्रा, इन्द्राभिलाषी और मनीषी अङ्गिरा लोगोंने यज्ञ द्वारा जल-प्रेरक इन्द्रके पास चुरायी हुई गायोंका मार्ग जाना है । अनन्तर रक्षाके अभिलाषी इन्द्रके स्तोत्रा अङ्गिरा लोगोंने स्तोत्र और पूजाके द्वारा गोघन प्राप्त किया है ।

६ इन्द्र, हमें उत्तम वन दो । हमें निपुणताकी प्रसिद्धि दो । हमें सौभाग्य दो । इसारा वन बढ़ा दो । हमारे शरीरकी रक्षा करो । बातोंमें भीठपन दो । दिनको सुदिन करो ।

१ पूजनीय, बहुवक्त्रवाली और वृषिकर इन्द्रने जैसी पहले इच्छा की थी, वैसे ही त्रिकद्व को यव मिलाया । अभिषुप्त सोम विष्णुके साथ पान करे । महान् सोमने तेजस्वी इन्द्रको महान् कार्यकी सिद्धिके लिये प्रसन्न किया था । सत्य और दीप्यमान सोम सत्य और प्रकाशमान इन्द्रको व्याप्त करे ।

२ दीप्यमान इन्द्रने अपने बलसे युद्ध द्वारा क्रिविको जीता था । अपने तेजसे इन्द्रने धावापृथिवीको चारों ओरसे पूर्ण किया था । वे सोमके बलसे बहुत बढ़े हैं । इन्द्रने एक भाग अपने पेटमें धारण करके अन्य भागको देवोंको प्रदान किया । सत्य और दीप्यमान सोम सत्य और दीप्यमान इन्द्रको व्याप्त करे ।

साकं जातः क्रतुना साकमोजसा वदक्षिण साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मुघो वीचर्षणिः ।  
 दाता राघः स्तुवते काम्यं वसु तैनं सश्रद्धे वो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्द्रुः ॥ ३ ॥  
 तव त्वं नर्यं नृतोय इन्द्र प्रथमं पूज्यं विवि प्रवाच्यं कृतं यद्वेषस्य शवसा प्रारिणा असुरिणन्नपः ।  
 भुवद्भिविश्वमन्या देवमोजसा विदादूर्जं शतक्रतुर्विधादिषम् ॥ ४ ॥



३ अनुवाक् । २३ सूक्त । ब्रह्मणस्पति, देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।  
 गणानां त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपश्रवस्तमम् ।  
 ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः स्वीदसादनम् ॥ १ ॥  
 देवाश्चित्तो असूर्यं प्रचेतसो बृहस्पते यक्षिर्यं भागमानशुः ।  
 त्वा एव सूर्यो ज्योतिषा महो विश्वेषामिहानिता ब्रह्मणामसि ॥ २ ॥  
 आ विवाध्या परिहापस्तमांसि न ज्योतिष्मन्तं रथमृतस्य तिष्ठसि ।  
 बृहस्पते भीममभिन्नदम्भनं रघोहणं गोब्रभिदं स्वर्विन्ददम् ॥ ३ ॥  
 सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे जनं यस्तुभ्यं दाशान्न तमंहो अश्रवत् ।  
 ब्रह्मदिवपस्तप नो मन्युमीरसि बृहस्पते महि तत्ते महित्वनम् ॥ ४ ॥

३ इन्द्र, तुम यज्ञके साथ सबल उत्पन्न हुए हो । तुम सब ले जानेकी इच्छा करते हो । तुमने पराक्रमके साथ बढ़कर हिंसकोंको जीता है । तुम सत् और असत्के विचारक हो । तुम स्तोताको कर्मसाधक और वाञ्छनीय बन दो । सत्य और द्योतमान् सोम सत्य और प्रकाशमान इन्द्रको व्याप्त करे ।

४ इन्द्र, तुम सत्यको नचानेवाले हो । तुमने जो पूर्व कालमें मनुष्योंके हितकर कर्मको किया था, वह बुद्धिकमें श्लाघनीय हुआ है । अपने पराक्रमसे तुमने देव ( वृत्र )की प्राण-हिंसा करके उसके द्वारा जलको बढ़ा दिया था । इन्द्रने अपने बलसे वृत्र या अदेवको परास्त किया । शतक्रतु बल और अन्न-जाने ।



१ हे ब्रह्मणस्पति, तुम देवोंमें गणपति और कवियोंमें कवि हो । तुम्हारा अन्न सर्वोच्च और उपमान-भूत है । तुम प्रजासनीय लोगोंमें राजा और मंत्रोंके स्वामी हो । हम तुम्हें बुलाते हैं । तुम हमारी स्तुति सुनकर, आश्रय प्रदान करनेके लिये, यक्षगुहमें बढो ।

२ असुरहन्ता और प्रकृष्ट ज्ञानी बृहस्पति, देवोंने तुम्हारा वजीय भाग प्राप्त किया है । जैसे ज्योति द्वारा पृथ्वीय सूर्य किरण उत्पन्न करते हैं, वैसे ही तुम सब मंत्र उत्पन्न करो ।

३ बृहस्पति, चारो तरफसे विन्दकों और अन्धकारोंको दूर, करके तुम ज्योतिमान् यज्ञ-प्राप्तक, भयानक, शत्रु-हिंसक, राक्षसनाशक, मेघ-मेदक और स्वर्गप्रदायक रूपमें बढे हो ।

४ बृहस्पति, जो तुम्हें दण्ड देता है, उसे तुम सन्मार्गमें ले जाते हो । उसे बचाते हो । उसे पाप नहीं मिलता । तुम्हारा ऐसा माहात्म्य है कि, तुम मन्त्र-द्वेवियोंके सन्तापक और क्रोधके हिंसक हो ।

॥ दूसरा अनुवाक् १२ वें सूक्तसे ही प्रारम्भ होता है । भूलसे वहाँ नहीं दिया जा सका ।

न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः ।  
 विश्वा इदस्मान्द्वरसो विवाघसेयं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मरूपते ॥ ५ ॥  
 त्वं नो गोपोः पथिक्विचक्षणस्तव व्रताय मतिभिर्जरामहे ।  
 बृहस्पते यो नो अभिहरो दधे स्वा तं मर्मतुं तुच्छुना हरस्वती ॥ ६ ॥  
 उत वा यो नो मर्षधावनागसोरासीवा मर्त्तः सानुक्रो वृकः ।  
 बृहस्पते अप तं वर्तयापथः सुगं नो अस्यै देववीतयो कृधि ॥ ७ ॥  
 आसारं त्वा सनूनां इवामहेवस्पतरधिवकारमसमयुम् ।  
 बृहस्पते देवनिदो निबर्हय मा दुरेवा उत्तरं सुस्रमुन्नशन ॥ ८ ॥  
 त्वया वयं सुवृधा ब्रह्मणरूपते स्पार्हा वसु मनुष्या ददीमहि ।  
 या नो दूरे तलितो या अरातयोभिसन्ति जम्भया ता अनप्नसः ॥ ९ ॥  
 रथया वयमुत्तमं धीमहे वयो बृहस्पते परिणा सस्त्रिना युजा ।  
 मा नो दुःशंसो अभिदिप्सुरीशत प्र सुशंसा मतिभिस्तारिषीमहि ॥ १० ॥  
 अतानुदो वृषभो जग्मिराहवं निष्टता शत्रुं पृतनासु सासहिः ।  
 असि सत्य ऋणया ब्रह्मणरूपत उग्रस्य चिद्मिता वीलुहर्षिणः ॥ ११ ॥

५ छरक्षक ब्रह्मणस्पति, जिसकी तुम रक्षा करते हो, उसे दुःख कष्ट नहीं दे सकना, पाप उसे कष्ट नहीं दे सकता ।  
 यज्ञ लोग उसे किसी तरह मार नहीं सकते, ठग उसे सत्ता नहीं संकते । उसके लिये तुम सारे हिंसकोंको दूर कर दो ।

६ बृहस्पति, तुम हमारे रक्षक, सम्मार्गदाता और विलक्षण हो । तुम्हारे यज्ञके लिये स्तोत्र द्वारा हम स्तुति करते हैं । जो हमारे प्रति कुटिल आचरण करता है, उसकी तुम्हें विवेकवती होकर उसे शीघ्र विनष्ट करे ।

७ बृहस्पति, जो गर्वोन्मत्त और सर्वप्राप्ती व्यक्ति हमारे सामने आकर हमारी हिंसा करता है, उसे सम्मार्गसे हटा दो । और यज्ञके लिये हमारा पथ शुभम कर दो ।

८ बृहस्पति, तुम सबको उपद्रवसे बचाओ । तुम हमारे पौत्र आदिका पालन करो । हमारे लिये मीठे वचन घोड़ो और हमारे प्रति प्रसन्न होओ । हम तुम्हें बुलाते हैं । तुम देव-निन्दकोंका विनाश करो । तुम्हें दि लोग उत्कृष्ट सुख न पावें ।

९ ब्रह्मणस्पति, तुम्हारे द्वारा वर्द्धित होनेपर मनुष्योंके पाससे हम स्पृहणीय धन प्राप्त करें । दूर या पास हमारे जो शत्रु हमें पराजित करते हैं, उन यज्ञहीन शत्रुओंको विनष्ट करो ।

१० बृहस्पति, तुम मनोरथके पुरयिता और पवित्र हो । हम तुम्हारी सहायता पाकर उत्कृष्ट अग्नि प्राप्त करेंगे । जो दुष्ट हमें पराजित करना चाहता है, वह हमारा अधिपति न हो । हम उत्कृष्ट स्तुति द्वारा पुण्यवान् होकर उन्नति करें ।

११ ब्रह्मणस्पति, तुम्हारे दानकी उपमा नहीं है । तुम असीष्टवर्षी हो । युद्धमें जाकर तुम शत्रुओंको सन्तप्त देते और उन्हें विनष्ट करते हो । तुम्हारा परक्रम सत्य है । तुम ऋणका परिशोध करते हो । तुम उग्र हो और मदोन्मत्त व्यक्तियोंका दमन करते हो ।

अदेवेन मनसा यो रिषयन्ति शास्त्रामुग्रयो मन्यमानो जिघांसति ।  
 बृहस्पते मा प्रणक्तस्य नो बधो नि कर्म मन्युं दुरेवस्य शर्धतः ॥१२॥  
 भरेषु हव्यो नमसोपसद्यो गन्ता वाजेप सनिता धनं धनम् ।  
 विश्वा इदर्यो अभिदिप्स्वोमृधो बृहस्पतिर्विव वर्हा रथाँश्च ॥१३॥  
 तेजिष्ठया तपनी रक्षसस्तप ये त्वा निदे दधिरे दृष्टवीर्यम् ।  
 भाविस्तत्कृष्व यदसत्त उक्थ्यं बृहस्पते विपरिरापो अर्दथ ॥१४॥  
 बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेप ।  
 यद्रीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेदि विश्रम् ॥१५॥  
 मा नः स्तेनेभ्यो ये अभिद्र हस्पदे निरामिणः रिपवोन्नेप् जागृधुः ।  
 आवेवानामोदते विव्रयो हृदि बृहस्पते न परः साम्नो विदुः ॥१६॥  
 त्रिंश्वेभ्यो हि त्वा भुवनेभ्यस्परित्विष्ठाजनत् साम्नः साम्नः कविः ।  
 स ऋणचिद्रूपा ब्रह्माणस्पतिर्द्रहो हन्ता मह ऋतस्य घर्तरि ॥ १७ ॥

१२ जो व्यक्ति देवशून्य मनसे हमारी हिंसा करता है और जो उस आत्माभियानी हमारा वध करनेकी इच्छा करता है, हे बृहस्पति, उसका आयुष हमें न छू सके । हम वेते बलवान् और दुष्ट शत्रुका क्रोध नाश करनेमें समर्थ हों ।

१३ युद्ध-कालमें बृहस्पति आह्वान-योग्य और नमस्कार-पूर्वक उपासना-योग्य हैं । वध युद्धमें जाते हैं । सप प्रकारका धन देते । नयके स्वामी बृहस्पति विजिगीषावाली सारी हिंसक सेनाओंको, रथकी तरफ, निहत और बिडबस्त करते हैं ।

१४ बृहस्पति, अतीव तीक्ष्ण और सन्नापक हेति आयुधसे राक्षसोंको सन्तप्त करो । इन्हीं राक्षसोंने, तुम्हारे पराक्रमके प्रभूत होनेपर भी, तुम्हारी निन्दा की थी । पूर्व कालमें तुम्हारा जो प्रशंसनीय वीर्य था, इस समय उसका आविष्कार करो और उसके द्वारा निन्दकोंका विनाश करो ।

१५ प्रज्ज्वात बृहस्पति, जिस धनकी आर्य लोग पूजा करते हैं, जो दीप्ति और यज्ञवाला धन लोगोंमें शोभा पाता है, जो धन अपने तेजसे दीप्तिवाला है, वही विचित्र धन या वक्ष्यार्थ तेज हमें दो ।

१६ बृहस्पति, जो घोर द्रोह करनेमें प्रसन्न होते हैं, जो शत्रु हैं, जो दूसरेका धन चाहते हैं, जो अपने मनसे सर्वाशयः देवोंका बहिष्कार करनेकी इच्छा करते हैं और जो राक्षस-नाशक साम-सृष्टि नहीं जानते, उनके हाथमें हमें नहीं देना ।

१७ बृहस्पति, स्वष्टाने तुम्हें सर्व-श्रेष्ठ उत्पन्न किया है; इसलिये तुम सारे सामोंके उच्चारण-कर्ता हो । वज्र आरम्भ करनेपर ब्रह्माणस्पति नमस्कार सारा ऋण स्वीकार करते और ऋणका परिशोध करते हैं । वह द्रोहकारीका विनाश करते हैं ।

तव श्रिये व्यजिहीत पर्वतो गवां गोत्रमुदसृजो यदङ्गिरः ।  
 इन्द्रेण शुजातमसा परीवृतं बृहस्पति निरपामौञ्जो अर्णवम् ॥ १८ ॥  
 ब्रह्मणस्पति त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिह्व ।  
 विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विद्ये सुवीराः ॥ १९ ॥



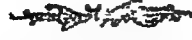
१८ अङ्गिरोवङ्गीय बृहस्पति, पर्वतोंने गायोंको छिपाया था । हम्हारी सम्पदके लिये जिस समय वह उदवाटिख हुआ और सुमने गायोंको बाहर किया, उस समय इन्द्रको सहायक पाकर सुमने वृत्र द्वारा आक्रान्त जलाधारभूत जल-राशिको नीचे किया था ।

१९ ब्रह्मणस्पति, तुम इस संसारकं निवामक हो । इस सूक्तको जानो । हमारी सन्ततियोंको प्रसन्न करो । देवता लोग जिसकी रक्षा करते हैं, वह भली भाँति कल्याणवाहक है । हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस क्षत्रमें प्रभूत्व स्तुति करेंगे ।

### षष्ठ अध्याय समाप्त



## सप्तम अध्याय



२४ सूक्त । ब्रह्मणस्पति देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।

सेमामधिद्वि प्रभृतिं य ईशिपेया विधेम नवया महागिरा ।  
यथा नो मीद्वान्तस्तवते सखा तव बृहस्पते सीपधः सोऽव नो मतिम् ॥१॥  
यो नन्त्वाभ्यनमन्त्योजसोतादर्दमन्युना शम्भुराणि वि ।  
प्राच्यावयदच्युता ब्रह्मणस्पतिरावाविशद्रुपशतं वि पर्वतम् ॥२॥  
तद्देवानां देवतमाय कर्त्तुमश्रुनन्दृह्लात्रदन्त वीलिता ।  
उद्गा आजदभिनद्ब्रह्मणा चलमगूहत्तमोव्यचक्षयत्स्वः ॥३॥  
अशमास्पमवतं ब्रह्मणस्पतिर्मधुधारमभि यमोजसातृणत् ।  
तमेव विश्वे पपिरे स्वर्दृशो यदु साकं तिसिचुरुक्षमुद्रिणम् ॥४॥  
सना ता काचिद्भूवमा भवीत्वा माद्भिः शरद्भिर्दुरो चरन्त वः ।  
अयतन्ता चरतो अन्यदन्वदिद्या चकार ध्युना ब्रह्मणस्पतिः ॥५॥

१ ब्रह्मणस्पति, तुम सारे संसारके स्वामी हो । हमारे द्वारा भली भाँति की गयी स्तुतिको ग्रहण करो । हम तुम्हारी, इस नवीन और बृहत् स्तुतिके द्वारा, सेवा करते हैं । हमें अमिमत्त फल प्रदान करो; क्योंकि, बृहस्पति, तुम्हारे वश हम हैं । हमारा स्तोता तुम्हारी स्तुति करता है ।

२ बृहस्पति, अपनी सामर्थ्यसे, तुमने तिरस्करणीयोंका तिरस्कार किया था, क्रोध-परवश होकर शम्भुराको विदीर्ण किया था, निश्चल जलको चालित किया था और गोघनपूर्ण पर्वतमें प्रवेश किया था ।

३ देव-श्रेष्ठ देव बृहस्पतिके कार्यसे सृष्ट पर्वत शिथिल हुआ था और स्थिर वृक्ष भग्न हुआ था । उन्होंने गायोंका उद्धार किया था । मंत्र द्वारा कलासुरको भिन्न किया था । अन्धकारको अहरय किया था । आदित्यको प्रकट किया था ।

४ बृहस्पतिने पथरकी तरह डड़ सुखवाले, मधुर जलसे पूर्ण और निम्न अवनत जिस मेघका, जल-प्रयोग द्वारा, बध किया था, उसका आदित्य-किरणोंने जल पान किया था और उन्होंने ही जलधारामय वृद्धिका सिचन किया था ।

५ ऋत्तिको, तुम्हारे ही लिये बृहस्पतिके सनातन और विचित्र प्रज्ञानने महीने-महीने और साल साल होने वाली वर्षाका द्वार उद्घाटित किया था । बृहस्पतिने ऐसे प्रज्ञानोंको मंत्र-विषयक किया था । चेष्टा करके आवापृथिवी परस्पर छल बढ़ाती हैं ।

अभिनक्षन्तो अभि ये तमानशुनिधिं पणोनां परमं गुहाहितम् ।  
 ते विद्वांसः प्रतिचक्ष्यानृता पुनर्यत उ आयन्तदुदीथुराविशम् ॥६॥  
 ऋतावानः प्रतिचक्ष्यानृता पुनरात आतस्थुः कवयो महस्पथः ।  
 ते बाहुभ्यां धमितमग्निमश्मनि नकिष्पो अस्त्यरणो जहृर्हितम् ॥७॥  
 ऋतज्येन क्षिप्रेण ब्रह्मणस्पतिर्यत वष्टि प्रतदश्नोति धन्वना ।  
 तस्य स्वाध्वीरिषवो याभिरस्यति नृचक्षसो दृश्ये कर्णयो नयः ॥८॥  
 ससंनयः सविनयः पुरोहितः स सुष्टुतः स युधि ब्रह्मणस्पतिः ।  
 चाक्ष्मो यद्वाजं भरते मती धनादित्सूर्यस्तपति तप्यतुर्वृथा ॥९॥  
 विभु प्रभु प्रथमं मेहनावतो बृहस्पतेः सुविद्वान्नाणि राध्या ।  
 इमा सातानि वेन्यस्य वाजिनो येन जना उभये भुञ्जते विशः ॥१०॥  
 यो वरे वृजने विश्वथा विभुर्महामुरएवः शवशा ववक्षिय ।  
 स देवो देवान् प्रति पप्रथे पृथु विश्वेदुता परिभूर्ब्रह्मणस्पतिः ॥११॥  
 विश्वं सत्यं मघवाना युवोरिदापश्चन प्रमिनश्चि व्रतं वाम् ।  
 अच्छेन्द्राब्रह्मणस्पतो हविर्नान्ं युजेव वाजिना जिगातम् ॥१२॥

६ विज्ञ अङ्गिरा लोगोंने, चारो ओर खोजते हुए, पणियोंके दुर्गमें द्विपाये हुए परम धनको प्राप्त किया था । मायाका दर्शन करके वे जिस स्थानसे गये थे, फिर वहाँ गये ।

७ सत्यवादी और सर्वज्ञाता अङ्गिरा लोग, मायाका दर्शन करके, पुनः प्रधान मार्गसे, उसी ओर गये । उन्होंने दाघोले जलाये अग्निको पर्वतपर फेंका । पहले वह ध्वंसक अग्नि वहाँ नहीं गये ।

८ बृहस्पति वाण-क्षेपक और सत्यरूप व्यावाले हैं । वे जो चाहते हैं, वस्तुपूके द्वारा प्राप्त कर लेते हैं । जिस वाण-को वह फेंकते हैं, वह कार्य-साधनमें कुशल है । वे वाण दानार्थ उत्पन्न हुए हैं । कर्ण ही उनका उत्पत्ति-स्थान है ।

९ ब्रह्मणस्पति पुरोहित हैं । वह सारे पशुओंको पृथक् और एकत्र करते हैं । सब उनकी स्तुति करते हैं । वह युद्धमें प्रकट होते हैं । सर्वदर्शी बृहस्पति जिस समय अन्न और धन वारण करते हैं, उस समय अनायास सूर्य उगते हैं ।

१० वृष्टिदाता बृहस्पतिका धन चारो ओर व्याप्त, प्रापणीय, प्रभूत और उत्तम है । कमनीय और अन्नवान् बृहस्पतिने यह सारा धन दान किया है । दोनों प्रकारके मनुष्य ( यजमान और स्तोता ) व्यानावस्थित वित्तसे इस धनका उपभोग करते हैं ।

११ चारो ओर व्याप्त और स्तवनीय ब्रह्मणस्पति अतीव और महान् बली, दोनों प्रकारके स्तोताओंकी, अपने शक्तिये, रक्षा करते हैं । दानादि गुणवाले बृहस्पति देवोंके प्रतिनिधि रूपसे सर्वत्र अत्यन्त विख्यात हैं । इसीलिये वह सारे प्राणियोंके स्वामी भी हुए हैं ।

१२ इन्द्र और ब्रह्मणस्पति, तुम धनवान् हो । सारा सत्य तुम्हारा ही है । तुम्हारे व्रतको जल नहीं मार सकता जैसे रथमें जुते हुए घोड़े खाद्यके सामने दौड़ते हैं, वैसे ही तुम भी हमारे इन्द्रके लिये दौड़ो ।

उताशिष्ठा अनुश्रुत्वन्ति बह्वयः समेयो विप्रो भरते मतीधना ।  
 वीलुये पा अनुवशऋणमाददिः सहवाजी समिथे ब्रह्मणस्पतिः ॥१३॥  
 ब्रह्मणस्पतेरभवद्यथावशं सस्यो मन्युर्महि कर्माकरिष्यतः ।  
 यो गा उदाजत् स दिवे त्रिचामजन्महीव रीतिः शवसासरत् पृथक् ॥१४॥  
 ब्रह्मणस्पते सुयमस्य विश्वहारायः स्याम रथ्यो वयस्वतः ।  
 वीरेषु वीरां उपपृग्धि नस्त्वं वदीशानो ब्रह्मणा वेषि मे हवम् ॥१५॥  
 ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य वोधि तनयं च जिव्व ।  
 विश्वं तद्भद्रं बध्वन्ति देवा सुहृद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१६॥

२५ सूक्त । ब्रह्मणस्पति देवता । जगती छन्द ।

इन्धानो अग्निं वनद्वनुष्यतः कृतब्रह्मा शूशुवद्रातहव्य इत् ।  
 जातेन जातमति स प्रसस्यते ययं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥१॥

१३ ब्रह्मणस्पतिके योगवान् वोढ़े हमारा स्तोत्र छनते हैं । मेवायी और सम्य अध्वर्यु, मगोरम स्तोत्र द्वारा, हव्य प्रदान करते हैं । पराक्रमियोंके हमनकारी ब्रह्मणस्पति हमारे पाल, इच्छानुसार, श्रृण स्वीकार करते हैं । अन्नवान् ब्रह्मणस्पति युद्धमें हव्य ग्रहण करें ।

१४ जिस समय ब्रह्मणस्पति किसी महान् कर्ममें प्रवृत्त होते हैं, उस समय उनका मंत्र उनकी अमिलापाके अनुसार सफल होता है । जिन्होंने गावोंको बाहर किया है, उन्होंने घुलोकके लिये उनका भाग किया है । महान् जोतकी तरह गावें, अपने बलसे, अलग-अलग गयी हैं ।

१५ ब्रह्मणस्पति, हम सब समय सद्रूप नियम और अलगवाले धनके अधिपति हों । तुम हमारे वीर पुत्रको पौत्र दो, क्योंकि तुम सबके ईश्वर हो । हमारी स्तुति और अन्नको चाहो ।

१६ ब्रह्मणस्पति, तुम इस संसारके नियामक हो । तुम इस सूक्तको जानो । तुम हमारी सन्ततियोंको प्रसन्न करो । देवता को जिसकी रक्षा करते हैं, वह कल्याणवाही है । पुत्र और पौत्रवाले होकर हम इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे ।

१ अग्निको प्रवृत्तित करके यजमान शत्रुओंकी हिंसा कर सके । स्तोत्र पढ़ो और हव्य दान करते हुए यजमान समृद्धि प्राप्त कर सके । जिस यजमानको सखा कहकर ब्रह्मणस्पति ग्रहण करते हैं, वह पुत्रके पुत्रसे भी अधिक जीवित रहता है ।



वीरेभिर्वीरान्वनवद्वनुष्यतो योमी रयिं पप्रथद्वोधति त्मना ।  
 लोकं च तस्य तद्वयं च वर्धते ययं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥२॥  
 सिन्धुर्न क्षोदः शिमीवां ऋघायतो वृषेव वर्धो रभिवष्ट्योजसा ।  
 अग्नेरिव प्रसितिर्नाहवर्तवे ययं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥३॥  
 तस्मा अर्षन्ति दिव्या असश्चतः ससत्त्वमिः प्रथमे गोपु गच्छति ।  
 अग्निभृष्टतविषिर्हन्त्योजसा ययं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥४॥  
 तस्मा इद्विश्वे धुनयन्त सिन्धवोच्छिद्रा शर्म दधिरे पुरुणि ।  
 देवानां सुप्ते सुभगाः स एघते ययं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥५॥

२६ सूक्त । ब्रह्मणस्पति देवता । जगती छन्द ।

ऋजुरिच्छंसो वनवद्वनुष्यतो देवयन्निददेवयन्तमन्यसत् ।  
 सुप्रवीरिद्वनवत् पृत्सु दुष्टरं यज्वेदयज्योर्विभजाति भोजनम् ॥१॥

२ यजमान वीर पुत्रोंके द्वारा शत्रुओंके वीर पुत्रोंको मारे । वह गोघनके लिये विख्यात हुआ है और स्वयं सब समझ सकता है । बृहस्पति जिस यजमानको सखा कहकर ग्रहण करते हैं, उसका पुत्र और पौत्र भी समृद्धि प्राप्त करता है ।

३ जैसे नदी सड़को छोड़ती है, सौँड़ जैसे बैलोंको पराजित करता है, वैसे ही बृहस्पतिकी सेवा करनेवाला यजमान, अपनी शक्तिसे, शत्रुओंको पराभूत करता है । जैसे अग्नि-शिखाका निवारण नहीं किया जाता, वैसे ही ब्रह्मणस्पति जिस यजमानको सखा कहकर ग्रहण करते हैं, उसका भी निवारण नहीं किया जा सकता ।

४ जिस यजमानको बृहस्पति सखा कहकर ग्रहण करते हैं, उसके पास, अप्रतिहत निर्भरिणी होकर, स्वर्गीय जल आता है । परिचर्या-कारियोंमें भी वही सबसे पहले गोघन प्राप्त करता है । उनका बल अनिवार्य है । वह बल द्वारा शत्रुओंका विनाश करते हैं ।

५ जिस यजमानको सखा रूपसे ब्रह्मणस्पति ग्रहण करते हैं, उसकी ओर सारी नदियाँ प्रवाहित होती हैं । वह सदा नानाविध छलका उपभोग करता है । वह सौभाग्यशाली है । वह देवों द्वारा प्रदत्त छल प्राप्त कर समृद्धि पाता है ।

१ ब्रह्मणस्पतिका सरल स्तोत्रा शत्रुओंका विनाश कर डाले । देवार्काक्षी अदेवार्काक्षीको पराभूत कर डाले । जो बृहस्पतिको अच्छी तरह तृप्त करता है, वह युद्धमें दुर्घर्ष शत्रुओंका विनाश करता है । यज्ञपरायण भयाङ्गिकके घनका उपभोग कर सके ।

यजस्व वीरि प्रविहि मनायतो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्य ।  
 क्षीरकृणुष्व सुभगो यथाससि ब्रह्मणस्पतेरय आ वृणीमहे ॥१॥  
 स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाज भरते धनानृभिः ।  
 देवानां यः पितरमाविवासति श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम् ॥ ३ ॥  
 यो अस्मै हव्यैर्धृतवद्भिरविधत् प्रतं प्राचा नयति ब्रह्मणस्पतिः ।  
 उरुप्यतीमहसो रक्षतीरिषां ह्यश्विदल्मा उरुचक्रिदभुतः ॥ ४ ॥



२० सूक्त । आदित्यगण देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।  
 इमा गिर आदित्येभ्यो घृतसूः सनाद्राजभ्यो जुहा जुहोमि ।  
 ऋणोतु मित्रो अर्यमा भगो नस्तुविजातो वरुणो दक्षो अंशः ॥१॥  
 इमं स्तोमं सकृदवो मे अद्य मित्रो अर्यमो वरुणा जुषन्त ।  
 आदित्यासः शुचयो धारपूता अवृजिना अनवद्या अरिष्टाः ॥ २ ॥  
 त आदित्यास उरवो गभीरा अदन्धासो दिप्सन्तो भूर्यक्षाः ।  
 अस्तः पश्यन्ति वृजिनोत साधु सर्वं राजभ्यः परमा चिदन्ति ॥ ३ ॥

२ वीर, तुम ब्रह्मणस्पतिकी स्तुति करो । अभिमानी शत्रुओंके विरुद्ध यात्रा करो । शत्रुओंके साथ संधानमें मनुष्यो बड़ करो । ब्रह्मणस्पतिके लिये हव्य तैयार करो । वैसे करनेपर तुम उत्तम धन पाओगे । हम ब्रह्मणस्पतिके पाससे रक्षा चाहते हैं ।

३ जो यजमान श्रद्धावान् होकर देवोंके पिता ब्रह्मणस्पतिकी, हव्य द्वारा, परिचर्या करता है, वह अपने मनुष्य और आत्मीय, अपने पुत्र और अन्यान्य परिचारकोंके साथ अन्न और धन प्राप्त करता है ।

४ जो ब्रह्मणस्पतिकी परिचर्या घृत-युक्त हव्यसे करता है, उसे ब्रह्मणस्पति प्राचीन सरल मार्गसे ले जाते हैं । उसे वे पाप, ऋण और दरिद्रतासे बचाते हैं । आश्चर्यरूप ब्रह्मणस्पति उसका सहान् उपकार करते हैं ।

१ मैं जुहु द्वारा, सर्वदा शोभमान आदित्योंको लक्ष्य कर, घृत-साविणी स्तुति अर्पण करता हूँ । मित्र, अर्यमा, भग, बहुव्यापक वरुण, दक्ष और अंश मेरी स्तुति खें ।

२ क्षीप्तमान, क्षुष्टिपूत, अनुग्रहपरायण, अनिन्दनीय, हिसारहित और एकविध कर्मकर्त्ता मित्र, अर्यमा और वरुणनामक आदित्य आज मेरे इस स्तोत्रका उपभोग करें ।

३ महान्, गभीर, दुर्दमनीय, दमनकारी और बहुदृष्टिवाले आदित्यगण प्राणियोंका अन्तःकरण-देखते हैं । दूर-देश-स्थित पदार्थ भी आदित्योंके पास निकट है ।

धारयन्तः आदित्यासो जगत्स्था देवा विश्वस्य भुवनस्य गापाः ।  
 दीर्घाधियो रक्षमाणा असूर्यमृतावानश्चयमाना ऋणानि ॥ ४ ॥  
 विद्यामादित्या अवसो वो अस्य यदयमन भय आ चिन्मयोभु ।  
 शुष्माकं मित्रावरुणा प्रणीतौ परि श्वश्रेव दुरितानि वृज्याम् ॥ ५ ॥  
 सुगो हि वो अर्यमन्मित्र पन्था अनृक्षरो वरुण साधुरस्ति ।  
 तेनादित्या अघिवोचता नो यच्छता नो दुष्परिहन्तु शर्म ॥ ६ ॥  
 पिपर्नु नो अदिती राजपुत्रातिद्वेषांस्यर्यमा सुगेभिः ।  
 बृहन्मित्रस्य वरुणस्य शर्मोपस्याम पुरुवीरा अरिष्ठाः ॥ ७ ॥  
 तिस्रो भूमीर्धारयन्त्रीरुतधून्त्रीणि व्रताविदथे अन्तरेषाम् ।  
 ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्यमन्वरुणमित्र चारु ॥ ८ ॥  
 ओ रोचना दिव्या धारयन्त हिरण्ययाः शुचयो धारपूताः ।  
 अस्वप्रजो अनिमिषा अदृक्का उरुशंसा ऋजवे भर्त्याय ॥ ९ ॥  
 त्वं दिश्वेषां वरुणासि राजा ये च देवा असुर ये च मर्ताः ।  
 शतं नो रास्व शरदो विस्सेश्यामायूषि सुधितानि पूर्वा ॥ १० ॥

४ आदित्यगण स्थावर और जंगमको अवस्थापित करते और सारे भुवनोंकी रक्षा करते हैं । वे बहुयज्ञ वाले और असूर्य ऋषिवा प्राणके हेतुभूत जलकी रक्षा करते हैं । वे सत्यवाले और ऋण-परिशोधक हैं ।

५ आदित्यगण, हम तुम्हारा आश्रय प्राप्त करें । मय आनेपर तुम्हारा आश्रय सुख प्रदान करता है । हे अर्यमा, मित्र और वरुण, तुम्हारा अनुसर्गण करके मैं गह्वेकी तरह पापोंको दूर कर दूँ ।

६ अर्यमा, मित्र और वरुण, तुम्हारा मार्ग सुगम, कण्टक-रहित और सुन्दर है । आदित्यगण, उसी मार्गसे तुम हमें ले जाओ, मीठे बचन बोलो और अविनाशी सुख दो ।

७ राजमाता अदिति शत्रुओंको लाँचकर हमें दूसरे देशमें ले जायँ । अर्यमा हमें सुगम मार्गमें ले जायँ । हम बहुवीर-युक्त और अहिसक होकर मित्र और वरुणका सुख प्राप्त करें ।

८ ये पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग तथा मर्त्य, जन और सत्य लोकोंको धारण करते हैं । इनके यज्ञमें तीन व्रत (तीन सवन) हैं । आदित्यगण, यज्ञ द्वारा तुम्हारी महिमा अष्ट हुई है । अर्यमा, मित्र और वरुण तुम्हारा वह महत्त्व सुन्दर है ।

९ स्वर्णालङ्कार-भूषित, दीप्तिमान्, वृष्टिपूत, निद्रारहित, अनिमेषनयन, हिंसा-रहित और सबके स्तुतियोग्य आदित्यगण सरल-स्वभाव संसारके लिये तीन प्रकार ( अग्नि, वायु और सूर्य ) के स्वर्गीय तेज धारण करते हैं ।

१० असुर वरुण, तुम देवता हो या मनुष्य, सबके राजा हो । हमें सौ वर्ष देखने दो, ताकि हम पूर्वजोंकी उपशुक्र आयुको प्राप्त कर सकें ।

न दक्षिणा विचिकिते न सव्या न प्राचीनमादित्या नोतपश्चा ।  
 पावथा बिद्वसवो धीर्या चिषुष्मानीतो अभयं ज्योतिरश्याम् ॥ ११ ॥  
 यो राज्ञस्य ऋतनिभ्यो द्वादश यं वर्धयन्ति पुष्टयश्च नित्याः ।  
 स रेवान् याति प्रथमो रथेन वसुदावा विदथेषु प्रशस्तः ॥ १२ ॥  
 शुचिरपः सूर्यवसा अद्वय उपक्षेति वृद्धवयाः सुवीरः ।  
 नकिण्टं प्रन्त्यन्तितो न दूराद्य धादित्यानां भवति प्रणीतौ ॥ १३ ॥  
 अदिते मिश्रवरुणोत मूल यद्वो वयं चक्रमा कच्चिदागः ।  
 उर्वश्यामभयं ज्योतिरिन्द्र मा नो दीर्घा अभिनशन्तमित्राः ॥ १४ ॥  
 उमे अस्मै पीपयतः समीचीदिवो वृष्टिं सुभगो नाम पुष्यन् ।  
 उमा क्षयावाज्यन् याति पृत्सूमावर्धौ भवतः साधू अस्मै ॥ १५ ॥  
 या वो माया अभिद्रुहे यजत्राः पाशा आदित्या रिपवे विवृताः ।  
 अश्वीव तां अति येषं रथेनारिष्ठा उरा वा शर्मनस्व स्याम ॥ १६ ॥

११ वास-प्रदाता आदित्यो, हम न तो दाहिने जानते, न बायें जाते, न सामने जानते और न पीछे जानते हैं । मैं अपरिफ-बुद्धि और कहीब कातर हूँ । मुझे तुम ले जाओगे, तो मैं निर्भय ज्योतिको प्राप्त करूँगा ।

१२ उसके नायक और राजा आदित्योंको जो हव्य प्रदान करता है, उनका नित्य अनुग्रह जिसकी पुष्टि करता है, वहो व्यक्ति धनवान्, विरुपाक्ष, सदान्वय और प्रशंसित होकर तथा रथपर चढ़कर यज्ञस्थलमें जाता है ।

१३ वह दोसिमान्, हिंसा-रहित, प्रचुर-अन्नधाली और सुपुत्रवान् होकर उत्तम शल्यवाले जलके पास निवास करता है । जो आदित्योंका अनुसरण करता है, उसका, दूर या निकटका शत्रु, बल नहीं कर सकता ।

१४ अदिति, मित्र, वरुण, इन यदि तुम्हारे पास कोई अपराध करें, तो कृपा कर उसका मार्जन कर डालो । इन्द्र, हम विस्तीर्ण और निर्भय ज्योति प्राप्त कर सकें । अन्धकारमयी रजनी हमें छिपा न सके ।

१५ जो आदित्योंका अनुसरण करता है, उसकी, यावा-पृथिवी पुष्प होकर, पुष्टि करती हैं । वह सौभाग्यशाली है और स्वर्गीय जल प्राप्त करके समृद्धि पाता है । युद्धकालमें वह शत्रुओंको पराजित करके अपने और शत्रुके निवास-स्थान पर जाता है । संसारका आधा भाग ही उसका मंगल-जनक है ।

१६ पूजनीय आदित्यगण, ब्रह्म-कारियोंके लिये तुम्हारी जो माया बनायी गयी है और जो पाश शत्रुओंके लिये अथित हुआ है, हम उनको, अश्वारोही पुरुषकी तरह, अनायास लांच जायें । हम हिंसाशून्य होकर परम सुखमें निवास करें ।

माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदान आ विदं शूनमापेः ।  
मा रायो राजन्स्तुयमादवस्थां वृहद्वदेम विदथे सुवीरोः ॥१७॥



२८ सूक्त । वरुण देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

इदं कवेरादित्यस्य स्वराजो विश्वानि सान्त्यम्यस्तु महिना ।  
अति यो मन्द्रो यजथाय देवः सुकीर्तिं भिक्षे वरुणस्य भूरेः ॥१॥  
तव व्रते सुभगासः स्याम स्वाध्वो वरुण तुष्टुवांसः ।  
उपायन उषसां गोमतीनामग्नयो न जरमाणा अनु धून् ॥२॥  
तव स्याम पुनवीरस्य शर्मन्नुक्तशंसस्य वरुण प्रणेतः ।  
धूर्ध नः पुत्रा आदितेऽदवधा अभि क्षमध्वं युज्याय देवाः ॥३॥  
प्र सीमादित्यो असृजद्विधर्तो ऋतं सिन्धवो वरुणस्य यन्ति ।  
न भ्रान्त्यन्ति न विमुच्यन्त्येते वयो न पतू रघुया परिष्मन् ॥४॥  
वि मच्छ्रथाय रशनामिदाग ऋध्याम ते वरुण खामृतस्य ।  
मातन्तुश्छेदिवयतो ध्रियं मे मा मात्रा शार्यपसः पुरःसृवोः ॥५॥

१७ वरुण, मुझे किसी घनो और प्रभूत-दानशील व्यक्तिके पास जातिकी वृद्धिताकी बात न कहनी पड़े ।  
राजन, मुझे आवश्यक धनका अभाव न हो । हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे ।

१ कवि और स्वयं सुशोभित वरुणके लिये यह हृद्य है । वह अपनी महिमाके द्वारा सारे भूतोंको पराजित करते हैं । प्रकाशमान स्वामी वरुण यजमानको प्रसन्नता प्रदान करते हैं । मैं उनकी स्तुतिकी प्रार्थना करता हूँ ।

२ वरुण, हम भली मौति तुम्हारी स्तुति, ध्यान और परिचयों करके सौभाग्यशाली हो सकें । किरण-युक्त उषाके आनेपर अग्निकी तरह हम प्रतिदिन तुम्हारी स्तुति करके प्रकाशमान हों ।

३ विश्व-नायक वरुण, तुम कितने ही कीरोंवाले हो, बहुत लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं । हम तुम्हारे घरमें निवास कर सकें । ईसा-शून्य और दीप्तिमान् अदितिके पुत्रो, तुम, हमारी मैत्रीके लिये, हमारे अपराधको मिटा दो ।

४ विश्व-धारक और अद्विष्ट वरुणने अच्छी तरह जलकी सृष्टि की है । वरुणकी महिमासे नदियाँ प्रवाहित होती हैं । ये कभी विश्राम नहीं करतीं, लौटती भी नहीं । ये, पक्षियोंकी तरह, वेगके साथ पृथिवीपर जाती हैं ।

५ वरुण, मेरे पापने मुझे रस्सीकी तरह बाँध रखा है ; मुझे छुड़ाओ । हम तुम्हारी जलपूर्ण नदी प्राप्त करें । यज्ञके धुननेके समय हमारा तन्तु कभी टूटने न पावे । असमयमें यज्ञकी मात्रा कभी विफल न हो ।

अणो ह्य म्यक्ष वरुण भियसं मत् सन्नाद् श्रुतोबोनु मा शृणुय ।  
 दामेय वत्सादि मुमुग्ध्यहो नहि त्वदारे निमिपश्चनेशे ॥६॥  
 मा नां षधैर्वरुण ये त इष्टावनः कृणवन्तमसुर श्रीणन्ति ।  
 मा ज्योतिषः प्रवस्यानि गन्म विपूमुधः शिश्रथो जीवसे नः ॥७॥  
 नमः पुरा ते वरुणोत नूनमुतापरः तुविजात ब्रवाम ।  
 त्वे हि कस्पवर्धते न श्रितान्यप्रच्युतानि दुडू म व्रतानि ॥८॥  
 पर श्रृणासावीरघमत्कृतानि माहं राजन्नग्यकृतेन भोजम् ।  
 अव्युष्टा इन्नु भूयसीरुपस आ नो जीवान् वरुण तासु शाधि ॥९॥  
 यो मे राजन्युज्यो वा सखा वा स्वप्ने भयं भीरवे मष्ट्यमाह ।  
 स्तेनो वा यो दिप्सति नो वृको वा त्वं तस्माद्वरुण पाह्यस्मान् ॥१०॥  
 माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदान् आ विदं शूनमापेः ।  
 मा दाया राजन्त्सुयमाहवस्थां वृद्धद्वेम विदथे सुवीराः ॥११॥



६ वरुण, मेरे पाससे भयको दूर कर दो । हे सन्नाद् और सत्यवान्, मुझपर कृपा करो । जैसे रहसीसे बल्लहको बुझाया जाता है, वैसे ही पापसे मुझे बचाओ; क्योंकि तुमसे अलग होकर कोई एक पलके लिये भी आविपत्य नहीं कर सकता ।

७ अक्षर वरुण, तुम्हारे यज्ञमें अपराध करनेवालोंको जो आयुष मारते हैं, वे हमें न मारें । हम प्रकाशसे निर्वासित न हों । हमारे जीवनके लिये हिंसकको हटाओ ।

८ हे बहुस्यानोत्पन्न वरुण, हम भूत, वसन्तमान और भविष्यत् समयोंमें तुम्हारे लिये नमस्कार करेंगे; क्योंकि हे अहिंसनीय वरुण, पर्वतकी तरद तुममें सारे अकृत कर्म आश्रित हैं ।

९ वरुण, पूर्वजोंने जो श्रृण किया था, उसका परिपोष करो । इस समय मैं जो श्रृण कर रहा हूँ, उसका भी परिपोष करो; ताकि वरुण, मुझे दूसरेका अपात्रित धन भोग करनेकी आवश्यकता न हो । श्रृणके कारण श्रृणकर्त्ताके लिये भागों अनेक उपाधोंका उद्भय ही नहीं हुआ । वरुण, हम उन सारी उपाधोंमें जीवित रहें, ऐसी आशा करो ।

१० राजा वरुण, मैं भीरु हूँ । मुझसे जो बन्धु लोग स्वप्नकी भयंकर बातें कहते हैं, उनसे मुझे बचाओ । तस्मात् या वृक मुझे मारना चाहता है । उससे मुझे बचाओ ।

११ वरुण, मुझे किसी घनी और प्रभूष-दानशील व्यक्तिके पास जातिकी दरिद्रताकी बात न कहनी पड़े । राजन्, मुझे आचर्यक धनका अभाव न हो । हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञमें प्रभूष स्तुति करेंगे ।

२६ सूक्त । विश्वेदेव देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

धृतवता आदित्या इषिरा आरे मत्कर्त्त रत्नसुरिवागः ।  
 शृण्वतो वो वरुण मित्र देवा भद्रस्य विद्वाँ अवसे हुवेयः ॥१॥  
 यूयं देवाः प्रमतिर्युयमोजो यूयं द्वेषांसि सनुतयुयोत ।  
 अभिक्षत्तारो अभिचक्षमध्वमद्याचनो मृलपता परं च ॥२॥  
 किमूतु वः कृणवामापरेण किं लनेन वसव आप्येन ।  
 यूयं नो मित्रावरुणादिते च स्वस्तिमिन्द्रामरुतो दधात ॥३॥  
 द्यौ देवा यूयमिदापयः स्थ ते मृलत नाधमानाय मह्यम् ।  
 मा वो रथो मध्यमवाडूते भून्मा युष्मावत्स्वापिषु श्रमिष्म ॥४॥  
 प्र व एको मिमय भूर्यागो यन्मा पितेव कितवं शशास ।  
 आरे पाशा आरे अधानि देवा मा माधि पुत्रे विमिव ग्रभीष्ट ॥५॥  
 अर्वाच्यो अद्या भवता यजत्रां आ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम् ।  
 ब्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य ब्राध्वं कर्तादवपदो यजत्राः ॥६॥

१ हे व्रतकारी, ग्रीव गमनशील और सबके प्रार्थनीय आदित्यो, गुप्तप्रसविनी स्त्रीके गर्भको तरह मेरा अपराध दूर देघमें फेंक दो । मित्र और वरुण, तुम्हारे मंगल-कार्यको मैं जानकर, रक्षाके लिये, तुम्हें बुलाता हूँ । तुम इसारी स्तुति सनो ।

२ देवगण, तुम्हीं अनुग्राहक और बल हो । तुम द्वेषियोंको हमारे पाससे अलग करो । शत्रु-हिन, शत्रु-ओंको पराजित करो । वर्त्तमान और अविष्यत्में हमें सखी करो ।

३ देवगण, अब और पीछे तुम्हारा कौन कार्य हम सिद्ध कर सकेंगे ? वस और सनातन प्राप्तव्य कार्य द्वारा हम तुम्हारा कौन कार्य सिद्ध कर सकेंगे ? मित्रावरुण, अदिति, इन्द्र और मरुद्गण, तुम हमारा मंगल करो ।

४ देवगण, तुम्हीं हमारे बन्धु हो । हम तुम्हारी प्रार्थना करते हैं । कृपा करो । हमारे यज्ञमें आनेमें तुम्हारा रथ मन्द-गति न हो । तुम्हारे समाज बन्धु पाकर हम आनन्द न हों ।

५ देवगण, तुम लोगोंके बीच एक मनुष्य होकर मैंने अनेकविध पाप नष्ट कर डाले । जैसे पिता कुमार्गगामी पुत्रको उपदेश देता है, वैसे तुमने मुझे उपदेश दिया है । देवो, सारे पाप और पाप दूर हों । जैसे व्याध बच्चेके सामने पक्षीको मारता है, वैसे ही मुझे नहीं मारना ।

६ पूजनीय देवो, आज हमारे सामने आओ । मैं डरकर तुम्हारे हृदयावस्थित आश्रयको प्राप्त करूँ । देवो, वृकके हाथसे मारे जानेसे हमें बचाओ । पूजनीयो, जो हमें आपद्धमें फेंक देता है, उसके हाथसे हमें बचाओ ।

माहं मघोनो वरुणप्रियस्य भूरिदान्त्वाविदं सुनमापे ।

मा रायो राजनन्त्सुयमाश्चस्थां वृद्धद्वैम विदथे सुवीराः ॥७॥

३० सूक्त । १—५ तकके इन्द्र, ६ के सोम और इन्द्र, ७ के इन्द्र, ८ के सरस्वती और इन्द्र, ९ के वृद्धस्पति, १० के इन्द्र और ११ मंत्रके मरुद्गण देवता हैं ।

जगती और त्रिष्टुप् छन्द ।

प्रभृतं देवाय कृण्वते सवित्र इन्द्रोयाहिष्ठे न रमन्त आपः ।

अहरदय्यात्यक्षुरपां क्रियात्था प्रथमः सर्ग आसाम् ॥१॥

यो वृत्राय सितमत्रामरिष्यत् प्र तं जनित्री विदुष उवाच ।

पथो रदन्तो रजुजोपमस्यै दिधेदिधे धनयो धन्स्यधम् ॥२॥

ऊर्ध्वो ह्यस्यादध्यन्तरिक्षे धा वृत्राय प्र धधं जभार ।

मिहं वसान उपहीमदुद्रोस्तिग्मायुधो अजयच्छत्रु मिन्द्रः ॥३॥

वृद्धस्पते तपुपाश्वेव विध्य वृकद्वरसो असुरस्य वीरान् ।

यथा जघन्य धृषता पुराविदेवा जहि शत्रु मरुमाकमिन्द्र ॥४॥

• वरुण, मुझे किसी घनी और प्रभूत-दानशील व्यक्तित्व अपनी जातिकी दरिद्रताकी बात न कहनी पड़े । राजन्, मुझे नियमित या आवरवक घनका अभाव न हो । इस पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करेंगे ।

१-बुष्टिकारी, भुतिमान्, सबके श्रेष्ठ और वृत्र-नाशक इन्द्रके यज्ञके लिये कभी भी जल नहीं रुकता, उसका जोत प्रतिदिन बला करता है । कभी उसकी पहली सृष्टि हुई थी ।

२-जिस व्यक्तित्वने वृत्रको अन्न प्रदान किया था, उसकी बात माता अदितिने इन्द्रसे कह दी थी । इन्द्रकी इच्छाके अनुसार नदियाँ, अपना मार्ग बनासी हुई, प्रतिदिन ससुद्रकी ओर जाती हैं ।

३-चूँकि अन्तरिक्षमें उठकर वृत्रने सारे पदार्थोंको घेर डाला था; इसलिये इन्द्रने उसके ऊपर चक्र फेंका । बुध्ति-प्रद भेषसे आच्छादित होकर वृत्र इन्द्रके सामने दौड़ा था । उसी समय तीक्ष्णायुधवारी इन्द्रने उसको पराजित किया था ।

४-वृद्धस्पति, वृत्रके समान दीप्त अस्त्रसे वृक द्वारा अस्त्रके पुत्रोंको छेदे । इन्द्र, जैसे प्राचीन समयमें तुमने यदि इबारा शत्रुओंको जीता था, उसी प्रकार इस समय हमारे शत्रुओंका विनाश करो ।



अवक्षिण दिवो अश्मानमुच्चा येन शत्रं मन्दसानो निजूर्वाः ।  
 तोळस्य सासौ तनयस्य भूरेरस्माँ अर्धं कृणुतादिन्द्र गोनाम् ॥५॥  
 प्र हि क्रतुं बृहथो यं वनुथो रध्रस्यस्यो यजमानस्य चोदौ ।  
 इन्द्रासोमा युवमस्माँ अविष्टमस्मिन् भयस्ये कृणुतमुलोकम् ॥६॥  
 न मा तमन्नश्रमन्नोत तन्द्रन्न वोचाम मा सुनोतेति सोमम् ।  
 यो मे पुणाद्यो ददद्यो निबोधाद्यो मा सुन्वन्तमुप गोभिरायत् ॥७॥  
 सरस्वति त्वमस्माँ अविड्ढि मरुत्वती धृपती जेपि शत्रून् ।  
 त्यं चिच्छर्धन्तं तविषीयमाणमिन्द्रो हन्ति वृषभं शण्डिकानाम् ॥८॥  
 यो नः सनुत्य उत वा जिघत्सुरमिस्थाय तं तिगितेन विध्य ।  
 बृहस्पत आयुधैर्जेषि शत्रून् द्रुहे रीषन्तं परिधेहि राजन् ॥९॥  
 अस्माकेभिः सत्वभिः शूरशूरैर्वीर्या कृधि यानि ते कर्त्तव्यानि ।  
 ज्योगभूवन्ननुधूपिषासो हृत्वी तेषामाभरा नो वसूनि ॥१०॥

५ इन्द्र, तुम ऊपर रहते हो । स्वोताओंके प्त्व करनेपर तुमने जिसके द्वारा शत्रु का विनाश किया था, वही पत्थरकी तरह कठिन वज्र शुलोकसे निम्नाभिमुख फेंको । जिससे हम लोग यथेष्ट पुत्र, पौत्र और गोधन प्राप्त कर सकें, वही ही हमें तुम समृद्धि दो ।

६ इन्द्र और सोम, जिसकी तुम हिंसा करते हो, उस द्वेषीको उन्मूलित करो । यजमानोंको शत्रुओंके विषय प्रेरित करो । इन्द्र और सोम, तुम मेरी रक्षा करो । इस भय-स्थानमें भय-शुन्ध स्थान बनाओ ।

७ इन्द्र मुझे कुंश न दें, भान्त न करें, आलसी न बनावें । हम कभी यह न कहें कि, सोमाभिषव न करो । इन्द्र मेरी अभिलाषा पूर्ण करते, अभीष्ट दान करते, यज्ञको जानते और गो-समूह लेकर अभिषव-कर्त्ताके पास उपस्थित होते हैं ।

८ सरस्वती, तुम हमें वचाओ । मरुतोंके साथ झगड़े होकर दृढ़ता-पूर्वक शत्रुओंको जीतो । इन्द्रने शूराभिमानी और स्पृहान्न शण्डिकोंके प्रधान (शण्डिक) को मारा था ।

९ बृहस्पति, जो अन्तर्हित देशमें छिपकर हमारा प्राण-नाश करनेका अभिलाषी है, उसे खोजकर सीखे हथिहारसे छेदो । आयुधसे हमारे शत्रुओंको जीतो । राजा बृहस्पति, द्रोहकारियोंके विषय प्राण-नाशक वज्र चारो ओर फेंको ।

१० शूर इन्द्र, हमारे शत्रु-हन्ता वीरोंके साथ अपने सम्पादनीय वीर-कार्योंको सम्पन्न करो । हमारे शत्रु बहुत दिनोंसे गर्वपूर्ण हो रहे हैं । उनका विनाश कर उनका धन हमें दो ।

तं वः शर्धं मारुतं सुस्रुगिरोपबुवे नमसा दैन्यं जनम् ।  
यथा रयि सर्वघोरं नशामहा अपत्यसासं श्रुत्यं दिवेदिवे ॥ ११ ॥

३१ सूक्त । विश्वेदेव देवता । त्रिष्टुप् और जगती छन्द ।  
धस्माकं मित्रावरुणावतं रथमादित्यैरक्षैर्वसुभिः सचाभुवा ।  
प्र यद्वयो न पतन् धस्मन्त्परि श्रवस्यदो हृषीदन्तो वनर्षदः ॥ १ ॥  
अधस्मान् उदवता सजोपसा रथं देवासो अभिविक्षु वाजयुम् ।  
यदाशवः पद्यामिस्तिव्रतो रजः पृथिव्याः सानौ जङ्घनन्त पाणिभिः ॥ २ ॥  
उतस्य न इन्द्रो विश्वचर्पणिर्दिवः शर्धेन मारुतेन सुक्रतुः ।  
अनु नु स्थात्यवृकाभिरुतिभीरथं महे सनये वाजसातये ॥ ३ ॥  
उतस्य देवो भुवनस्य सक्षणिस्त्वष्टा ग्रामिः सजोवा जूजुषद्रथम् ।  
इला भगो घृष्ट्विवोत रोवसी पूषा पुरन्धिरश्विनावधापती ॥ ४ ॥  
उत त्ये देवी सुभगे मिथूदृशोपाखानका जगतामपीजुवा ।  
स्तुये यक्षां पृथिवि नव्यसा वचः स्थातुश्च वयस्त्रिवया उपस्तिरे ॥ ५ ॥

११ मन्त्रो, इन छन्दों की समिकापाते स्तुति और नमस्कार द्वारा तुम्हारे देव और प्रादुर्भूत तथा एकत्र बलकी स्तुति करते हैं, ताकि उसके द्वारा हम प्रतिदिन घोर अपत्यवाले होकर प्रहासनीय धनका उपयोग कर सकें ।

१ जिस समय हमारा रथ अन्नामिकापी, मनुमत् और वन-निपण पक्षियोंकी तरह निवास-स्थानसे दूसरे स्थानको जाता है, उस समय हे मित्र और वरुण, तुम लोग आदित्य, रुद्र और वसुओंके साथ मिलकर उसकी रक्षा करते हो ।

२ समान प्रीतिवाले देवो, इस समय हमारे रथकी रक्षा करो । वह अन्न खोजनेके लिये देशमें गया है । इस रथमें जोते हुए घोड़े कदमसे मार्ग ले करते और विस्तीर्ण भूमिके उन्नत प्रदेशपर आघात करते हैं ।

३ अथवा—सर्वदेवी इन्द्र मरुतोंके पराक्रमसे उक्त कर्म सम्पन्न करके, स्वर्ग लोकसे आते हुए, हिंसा-शून्य आश्रयके द्वारा महाधन और अन्न-प्राप्तिके लिये हमारे रथके अनुकूल हों ।

४ अथवा—संसारके सेवनीय वह स्वष्टा देव, देवपत्नियोंके साथ, प्रीतियुक्त होकर हमारे रथको चलावें । इला, महादीप्तिमान् भग, धावापृथिवी, यद्वघो पूषा और सूर्याके स्वामी दोनों अश्विनीकुमार हमारा यह रथ चलावें ।

५ अथवा—प्रसिद्ध, धु तिमती, सुभगा, परस्पर-दर्शनी और जीवोंकी प्रेरयित्री उषा और रात्रि हमारा रथ चलावें । हे आकाश और पृथिवी, तुम दोनोंकी, नये स्त्रोत्रसे स्तुति करता हूँ । स्थावर ब्रह्मि आदि अन्न देता हूँ । ओषाध, सोम और पशु—मेरे तीन प्रकारके अन्न हैं ।

उत वः शंसमुशिजामिवश्मस्यहिर्वृध्न्योज एकपादुत ।  
 त्रित ऋभुक्षाः सविता चनो दधेपान्नपादाशुहेमा धिया शमि ॥ ६ ॥  
 एता वो पशम्युद्यता यजन्ना अतक्षन्नायवो नव्यसेसम् ।  
 श्रवस्यवो वाजं चकानाः सतिर्न रथ्यो अहधीतिमश्याः ॥ ७ ॥



३२ सूक्त । १ के बावापृथिवी, २—३ के इन्द्र, ४—५ के राका, ६—७ के  
 सिनीवाली और ८ के छ देवियाँ देवता हैं ।  
 अनुष्टुप् छौर जगती छन्द ।

अस्य मे बावापृथिवी स्तुतायतो भूतमवित्री वचसः सिपासतः ।  
 यथोरायुः प्रसरन्ते इदं पुर उपस्तुते वसुयुर्वामहोदधे ॥ १ ॥  
 मा नो गुह्या रिप आयोरहन्वमन्मान आभ्यो रोरधो दुच्छृणाम्यः ।  
 मानोवियौः सख्या विद्धि तस्य नः सुस्नायता मनसा तन्वेमहे ॥ २ ॥  
 अहेलता मनसा श्रुष्टिमाश्व दुहानां धेनुं पिप्युपीमसश्चतम् ।  
 पद्यामिराशुं वचसा च वाजिनं स्वां हिनोमि पुरुहूत विश्वहा ॥ ३ ॥

६ देवगण, तुम हमारी स्तुतिकी इच्छा करो । हम तुम्हारी स्तुति करनेकी इच्छा करते हैं । अन्तरीक्ष-जात अदि देवता ( अग्निर्ब्रह्म ) । सूर्य ( अज एकपात् ), त्रित, उरनिवास इन्द्र ( ऋभुक्षा ) और सविता हमें अन्न प्रदान करें । शीघ्रगामी जल-नप्ता ( अग्नि ) हमारी स्तुतिसे प्रसन्न हों ।

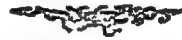
७ यज्ञनीय विश्वदेवगण, हम तुम्हारी स्तुति करनेकी इच्छा करते हैं । तुम सर्वापेक्षा स्तुति-योग्य हो । अन्न और बलके अमिलायी मनुष्योंने तुम्हारे लिये स्तुति बनायो है । रथके अश्वकी तरह तुम्हारा दल हमारे लिये आवे ।

१ बावापृथिवी, जो स्वोता यज्ञ और तुम्हें प्रसन्न करनेकी इच्छा करता है, उसके तुम आज्ञा-दाता होओ । तुम्हारा अन्न सर्वापेक्षा उत्कृष्ट है । सभी बावापृथिवीकी स्तुति करते हैं । अन्नकामी होकर मैं महास्वोत्र द्वारा तुम्हारा स्तव कहूँगा ।

२ इन्द्र, यज्ञ की गुप्त माया हमें दिन या रातमें मारने न पाये । हमें कष्ट-दात्री यन्त्र-सेनाके वशमें नहीं करना । हमारी मैत्री नहीं छुड़ाना । हृष्यमें हमारे छलकी आकांक्षा करके हमारी मित्रताकी स्मृति करना । तुम्हारे पास हम यही कामना करते हैं ।

३ इन्द्र, प्रसन्नचित्तसे छलकरी, दुःखवती, मोटी और मजबूत गायको ले आना । इन्द्र, तुम्हें सब बुलाते हैं । तुम बहुत जोर चलते हो । तुम वृत्तमायी हो । मैं दिन-रात तुम्हारी स्तुति करता हूँ ।

राकामहं सुहृवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्वमना ।  
 सीव्यस्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥ ४ ॥  
 यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो यामिर्वदासि दाशुषे वसूनि ।  
 तामिर्नो अथ सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ॥ ५ ॥  
 सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।  
 जुषस्व एव्यमापुतं प्रजां देवि दिदिङ्निनः ॥ ६ ॥  
 या सुदाहुः स्वङ्गुरिः सुपूमा बहुसूचरी ।  
 तस्यै विशपस्त्यै हविः सिनीवात्यै जुहोतन ॥ ७ ॥  
 या गुङ्गूया सिनीवाली या राका या सरस्वती ।  
 इन्द्राणीमह ऊतये वरुणानीं स्वस्तये ॥ ८ ॥



४ अनुवाक् । ३३ सूक्त । रुद्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।  
 या ते पितमस्तां सुस्रमेतुमानः सूर्यस्य सन्दृशो युयोथाः ।  
 अभि नो वीरो अर्चति क्रमेत प्रजायेमहि रुद्र प्रजाभिः ॥ १ ॥  
 त्वादत्तेभीः रुद्रशन्तमेभिः शतं हिमा अशीय भेषजेभिः ।  
 व्यस्मद्द्वेपो चितरं व्यंहो व्यमीवाध्यातयस्वा विषूचीः ॥ २ ॥

४ मैं उत्कृष्ट स्तोत्र द्वारा आह्वान-योग्य राका वा पुणिमा रात्रि देवीको बुलाता हूँ । वह सुभग हैं, हमारा आह्वान सुनें । वह स्वयं हमारा अभिप्राय जानकर अच्छे से सूचीके द्वारा हमारे कर्मको बुनें । वह विक्रान्त बहुधनवान् और वीर्यवान् पुत्र प्रदान करें ।

५ राका देवी, तुम जिस सुन्दर अनुग्रहसे हव्यवाताको धन देवी हो, आज प्रसन्न चित्तसे, उसी अनुग्रहके साय, पधारो । शोभन-भाग्यवती, हजारो प्रकारसे तुम हमारी पुष्टि करती हो ।

६ हे स्थूल-ज्ञाता सिनीवाली (अमावास्या), तुम देवीकी भगिनी हो । प्रसन्न हव्यकी सेवा करो । हमें अपत्य दो ।

७ सिनीवाली (अमावास्या वा देवपत्नी) सुदाहु, सुन्दर अंगुलियोंवाली, सुप्रसविनी और बहुप्रसवित्री हैं । उन्हें लोक-रक्षिका देवीको लक्ष्य करके हव्य दो ।

८ जो गुङ्गू, ऊङ्गू अथवा देवपत्नी हैं, जो सिनीवाली, राका और सरस्वती हैं, उन्हें मैं बुलाता हूँ । मैं आश्रयके लिये इन्द्राणी और सबके लिये वरुणानीको बुलाता हूँ ।

१ मरुतोंके पिता रुद्र, सुम्हारा दिया हुआ सब हमारे पास आवे । सूर्य-दर्शनसे हमें अलग नहीं करना । हमारा वीर पुत्र शत्रुओंको पराजित करें । रुद्र, हम पुत्रों और पौत्रोंमें अनेक हो जायँ ।

२ रुद्र, हम सुम्हारी ही हुई सख्तकारी ओषधिके द्वारा सौ वर्ष जीवित रहें । हमारे शत्रुओंका विनोश करो हमारा पाप सर्वथातः दूर कर दो । सर्वशरीरव्यापी व्याधिको भी दूर करो ।

श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि तवस्तमस्तवसां वज्रवाहो ।  
 पविणः पारमहंसः स्वस्ति विश्वा अभीतीरपसो युगोधि ॥ ३ ॥  
 मा त्वा रुद्र वृकृवासा नमोभिर्मा दुष्टुती वृषभ मा लहूती ।  
 उन्नो वीरां अर्पथ भेषजेभिर्मिपक्तमं त्वा मिपजां शृणोमि ॥ ४ ॥  
 हवीमभिर्हवते यो हविर्मिरव स्तोमेभी रुद्रं दिषीय ।  
 ऋदूदरः सुहवो मा नो अस्यै वधुः सुशिप्रो रीरधन्मनायै ॥ ५ ॥  
 उन्मा ममन्द वृषभो मरुवान्त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम् ।  
 घृणीवच्छवामरपा अशीया विवासेयं रुद्रस्य सुन्नम् ॥ ६ ॥  
 कस्य ते रुद्र मृलयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः ।  
 अपमर्ता रपसो दैव्यस्याभी नु मा वृषभ चक्षमीथाः ॥ ७ ॥  
 प्र वध्रवे वृषभाय द्वितीचे महो महीं सुष्टुतिमीरयामि ।  
 नमस्या कल्मलीकिनं नमोभिर्गुणीमसि त्वेपं रुद्रस्य नाम ॥ ८ ॥  
 स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो वधुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः ।  
 ईशानादस्य भुवनस्य भूरेर्नवाउयोषद् द्रादसूर्यम् ॥ ९ ॥

३ रुद्र, ऐश्वर्यमें तुम सबसे ऊँच हो । हे वज्रवाहु, प्रवृद्धोंमें तुम अतीव प्रवृद्ध हो । हमें पापके उस पार से चलो हमारे पास पाप न आने पावे ।

४ अभीष्टवर्षी रुद्र, हम अभ्याष्य नमस्कार, अभ्याष्य स्तुति अथवा विसदृश देवोंके सत्य आह्वान द्वारा तुम्हें क्रुद्ध न करें । हमारे पुश्रोंको ओषधि द्वारा परिपुष्ट करो । मैंने सुना है, तुम वेदोंमें सर्वश्रेष्ठ हो ।

५ जो रुद्रदेव हव्यके साथ आह्वान द्वारा आहूत होते हैं, उनका, स्तोत्र द्वारा, मैं जोर दूर करूँगा । कोमलोदर, शोभन आह्वानवाले, वधु (पील) वर्ण और सुवासित रुद्र हमें न मारें ।

६ मैं प्रार्थना करता हूँ कि, अभीष्टवर्षी और मत्स्वालो रुद्र मुझे दीप्त अन्न द्वारा तृप्त करें । जैसे घूपका मारा मनुष्य क्षीयाको आश्रित करता है, वैसे ही मैं भी पाप-शून्य होकर रुद्रवत् छल प्राप्त करूँगा । मैं रुद्रकी परिचर्या करूँगा ।

७ रुद्र, तुम्हारा वह छलदाता हाथ कहाँ है, जिससे तुम दवा तैयार करके सबको छली करते हो । अभीष्टवर्षी रुद्र, देव-पापके विघातक होकर तुम मुझे क्षीप्र क्षमा करो ।

८ वध्रुवण, अभीष्टवर्षी और श्वेत आभावाले रुद्रको लक्ष्य करके अतीव महती स्तुतिका हम उच्चारण करते हैं । हे स्तोता, नमस्कार द्वारा तेजस्वी रुद्रकी पूजा करो । हम उनके उज्ज्वल नामका संकीर्तन करते हैं ।

९ दृढाङ्ग, बहुरूप, उग्र और वध्रुवण रुद्र दीप्त और हिरण्यमय अलंकारसे सशोभित होते हैं । रुद्र सारे भुवनोंके अधिपति और भर्ता हैं । उनका बल अलग नहीं होता ।

अर्हन्विमर्षि सायकानि धन्वाहन्निष्कं यजतं विश्वरूपम् ।  
 अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र स्वदस्ति ॥१०॥  
 स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्तुमुग्रम् ।  
 मृला जरित्रे रुद्रस्तवानोन्म्यं ते अस्मन्निवपन्तु सेनाः ॥११॥  
 कुमारश्चित् पितरं वन्दमानं प्रति नानाम रुद्रो पयन्तम् ।  
 भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे स्तुतस्त्वं भेषजा शस्यस्मे ॥१२॥  
 या वो भेषजा भरुतः शुचीनि या शन्तमा वृषणो या मयोमु ।  
 यानि मनुर्वृणीता पिता नस्ता शं च योश्च रुद्रस्य वशिम ॥१३॥  
 परि णो हेतो रुद्रस्य वृज्याः परि स्वेपस्य दुर्मतिर्मही गात्  
 अवस्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मोद्वस्तोकाय तनयाय मृल ॥१४॥  
 एव वभ्रो वृषम चेकितान यथा देव न हृणीषे न हंसि ।  
 हवनश्रुन्नो रुद्रेह वोधि बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१५॥

१० पूजायोग्य रुद्र, तुम धनुर्वाणधारी हो । पूजार्ह, तुम नाना रूपोंवाले हो और पूजनीय निष्कको धारण किया है । अर्चनार्ह, तुम सारे व्यापक संसारकी रक्षा करते हो । तुम्हारी अपेक्षा अधिक बली कोई नहीं है ।

११ हे स्तोता, विख्यात रथपर चढ़े, युवा, पशुकी तरह सयंकर और शत्रुओंके विनाशक तथा उग्र रुद्रकी स्तुति करो । रुद्र, स्तुति करनेपर तुम हमें सुखी करते हो । तुम्हारी सेना शत्रुका विनाश करे ।

१२ जैसे आशीर्वाद देते तमय पिताको पुत्र नमस्कार करता है, वैसे ही हे रुद्र, तुम्हारे आनेके समय हम तुम्हें नमस्कार करते हैं । रुद्र, तुम बहुधनदाता और साधुओंके पालक हो । स्तुति करनेपर तुम हमें ओषधि देते हो ।

१३ मरुतो, तुम्हारी जो विमल ओषधि है, हे अमोघवर्षिण, तुम्हारी जो ओषधि अतीव छलवात्री है, जिस ओषधिको हमारे पिता मनुने जुगा था, वही छलकर और भयहारक ओषधि हम चाहते हैं ।

१४ रुद्रका हेति-आयुध हमें छोड़ दे । वीर रुद्रकी महती दुर्मति भी हमें छोड़ दे । सेचन-समर्थ रुद्र, धनवान् वज्रमानके प्रति अपने धनुषकी ज्या पिथिष्ठ करो । हमारे पुत्रों और पौत्रोंको सुखी करो ।

१५ अमीष्टवर्षी, वज्रवर्ण, वीरिमान्, सर्वज्ञ और हमारा आह्वान् सुननेवाले रुद्र, हमारे लिये तुम यहाँ पेसी विवेचना करो कि, हमारे प्रति कमी कुछ न हो, हमें कमी बिगष्ट न करो । हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस वज्रमें प्रभूत स्तुति करेंगे ।

३३ सूक्त । मरुद्गण देवता । जगती और त्रिष्टुप् छन्द ।

धारावरा मरुतो धृष्णत्रोजसो मृगा न भीमास्तविषीभिरचिनः ।  
अग्रयो न शुशुवाना अजीपिणो भूमि धमन्तो अप गा अवृणवत ॥१॥  
द्यावो न स्तृभिश्चितयन्त खादिनो व्यघ्निया न द्युतयन्त वृष्टयः ।  
रुद्रो यद्वो मरुतो रुक्मवक्षसो वृषाजनि पृशत्याः शुक्र ऊधनि ॥२॥  
उक्षन्ते अश्वाँ नत्याँ इवाजिपु नदस्य कर्णै स्तुरयन्त आशुभिः ।  
हिरण्यशिप्रा मरुतो दक्षिध्वजः पृक्षं याधपृपतीभिः समन्यवः ॥३॥  
पृक्ष ता विहवा भुवना ववक्षिरे मिश्राय वा सदमा जीरवानवः ।  
पृषदश्वासो अनवभ्रराधस्त ऋजिप्यासो न वयुनेषु धूर्पदः ॥४॥  
इन्धन्वभिर्वतुमी रप्शदूधभिरध्वस्मभिः पथिभिर्भ्राजदृष्टयः ।  
आ हंसासो न रजसराणि गन्त न मधोर्मदाय मरुतः समन्यवः ॥५॥  
आ नो ब्रह्माणि मरुतः समन्यवो नरां न शंसः स्वनानि गन्तन ।  
अश्वामिव पिप्यत धेनुमुखनि कर्ता धियं जरिते वाजपेशसम् ॥६॥

१ जलधारासे मरुत लोग आकाशको छिपा लेते हैं । उनका बल दूसरेको पराजित करता है । वह पशुकी तरह अर्धचर हैं । वे बल द्वारा संसारको व्याप्त कर लेते हैं । वे वक्षिकी तरह दीप्तिमान् और जलसे परिपूर्ण हैं । वे अमणिकर्ता मेघको हवर-धवर भेजकर जलको गिराते हैं ।

२ सवर्णहृदय मरुतो, चूँकि सेचन-समर्थ रुद्रने पृथ्वीको निर्मल उत्तरमें लुन्हे उत्पन्न किया है; इसलिये, जैसे आकाश नक्षत्रोंसे सरोमित होता है, वैसे ही, तुम भी अपने आभरणसे सरोमित होओ । तुम शत्रु-भक्षक और जल-प्रेरक हो । तुम मेघवत् विद्युत्की तरह शोभित होओ ।

३ युद्धमें तुरङ्गकी तरह मरुद्गण विद्याल भुवनको सिक्त करते हैं । वे घोड़ेपर चढ़कर शङ्कायमान मेघके कानके पाससे होकर द्रुत वेगसे जाते हैं । मरुतो, तुम हिरण्य-शिरस्त्राणवाले और समान-क्रोधवाले हो । तुम वृक्ष आदि कम्पित करते हो । तुम पृथ्वी ( बिन्दु-चिह्नित ) मृगरर चढ़कर अन्नके लिये जाते हो ।

४ मरुद्गण मित्रकी तरह, हृत्पयुक्त यज्ञमानके लिये, सर्वदा समस्त जल ढोते हैं । वे क्षान्शीक, पृथ्वी-मृगवाले, अक्षय, अन्नवाले और अकुटिलगामी अश्वकी तरह पथिकोंके आगे जाते हैं ।

५ हे समान-क्रोध और दीप्तिमान् आयुधवाले मरुतो, जैसे हंस अपने विवास-स्थानपर जाता है, वैसे ही तुम भी महाजलस्रोतवाले मेघोंके साथ और धेनु-युक्त होकर विज्ञ-शून्य मार्गसे, मञ्जर सोम-रससे उत्पन्न हव्य-लाभके लिये, आओ ।

६ हे समान-क्रोधवाले मरुतो, जैसे तुम स्त्रोत्रसे आते हो, वैसे ही हमारे अग्निपुत्र अन्नके पास आओ । घोड़ीकी तरह गायका अवोदेष पुष्ट करो और यज्ञमानका यज्ञ अन्नवाला करो ।

तं नो दात मरुतो घाजिनं रथ आपानं ब्रह्म चित्तवद्विचेदिवे ।  
 इयं स्तोतृभ्यो वृजनेषु कारवे सनि मेधामरिष्यं दुष्टरं सहः ॥७॥  
 यद्युज्जते मरुतो रुक्मवक्षसोश्वानूथेषु भग आ सुदाजवः ।  
 धेनुर्न शिश्वे स्वसरेषु पिन्वते जनाय रातहविषे महीविषम् ॥ ८ ॥  
 यो नो मरुतो वृक्षताति द्रव्यो रिपुर्दधो वल्लवो रक्षतारिषा ।  
 वर्तयत तपुषा चक्रियाभि तमव रुद्रा अशसो हन्तना बधः ॥ ९ ॥  
 चित्रं ध्रुवो मरुतो याम चेकिते पृथ्व्या यदूधरप्यापयो दुहुः ।  
 यद्वा निदे नवमानस्य रुद्रियाक्षितं जराय जुस्तामदाभ्याः ॥ १० ॥  
 तान्वो महो मरुत पवदाक्तो विष्णोरेषस्य प्रभृथे हवामहे ।  
 हिरण्यवर्णान् फकुहान्यतस्त्र्यो ब्रह्मण्यन्तः शंस्य राध ईमहे ॥ ११ ॥  
 ते दशन्वाः प्रथमा यक्षमुहिरे ते नो हिन्वन्तूषसो व्युष्टिषु ।  
 उपा न रामीरुणैरपाणते महो ज्योतिषा शुक्ता नो अर्णसा ॥ १२ ॥  
 ते क्षोणीभिररुणेभिर्नाजिभीरुद्रा ऋतस्य सवनेषु वावृधुः ।  
 बिभेधमाना घत्येन पाजसा सुध्वन्द्रं वर्णं दधिरे सुपेशसम् ॥ १३ ॥

७ मरुतो, तुम हमें अन्न-युक्त पुत्र दो । वह, तुम्हारे आगमनके समय, प्रतिदिन तुम्हारा गुण-कीर्तन करेगा । तुम स्तोताओंको अन्न दो । युद्ध-कालमें स्तोताको दानशीलता, युद्ध-कौशल, ज्ञान और अक्षय तथा अतुल बल दो ।

८ मरुतोंके यज्ञ-स्थलमें दीप्त आभरण है । उनका दान सपने लिये उलकर है । वे जिस समय रथमें चोढ़े जाते हैं, उसी समय जैसे घेनु बद्धोंको दूध देती है, वैसे ही, वे इन्द्रपाता यजमानके लिये उसके गृहमें यथेष्ट अन्न देते हैं ।

९ मरुतो, जो मनुष्य, वृक्षकी तरह, हमसे शत्रुता करता है, ऐ वसुगण, उस हिंसकके हाथसे हमें बचाओ । उसे ताप-प्रद चक्र द्वारा चारो ओरसे दबाओ । रुद्रगण, तुम उसके सारे अस्त्रोंको दूर फेंककर उसे विनष्ट करो ।

१० मरुतो, जिस समय तुमने पृथ्वीके अधोभागका दोहन किया था, उस समय स्तोताके निन्दककी पत्नी की और त्रितके शत्रुओंका वध किया था । अहिंसनीय रुद्रपुत्रो, उस समय तुम्हारी विविध क्षमताको सबने जाना था ।

११ महाद्युमग मरुतो, तुम सदा यज्ञ-स्थलमें जाते हो । यथेष्ट और प्रार्थनीय सोमके तैयार हो जानेपर हम तुम्हें बुलाते हैं । स्तुति-पाठक जन्मको उठाकर स्वर्ण-वर्ण और सर्व-श्रेष्ठ स्तुति-योग्य मरुद्गणसे प्रशंसनीय धनकी वाचना करते हैं ।

१२ स्वर्गगामी अङ्गिरीरूपी मरुत्रोंने प्रथम यज्ञका वहन किया था । उषाके आनेपर मरुद्गण हमें यज्ञ आदिमें प्रवृत्त करें । जैसे उषा अरुणवर्ण किरण-जालसे कृष्णवर्णी रात्रिको दबाती हैं, वैसे ही मरुद्गण विशाल, दीप्तिमान् और जल-प्रावी ज्योतिसे अन्धकारको दूर करते हैं ।

१३ रुद्रपुत्र मरुद्गण धीमा-विशेष औ अरुणवर्ण अलंकारसे युक्त होकर जलके निर्वास-भूत मेघमें वर्द्धित हुए हैं । मरुद्गण सर्वत्र प्रभाववाले बलसे जल लाते हुए प्रसन्नता-दायक और मनोहर सौन्दर्य धारण करते हैं ।



तां इयानो महि वरुणमूतयः उपधेदेना नमसा गृणीमसि ।  
 त्रितो न यान् पथ्वहोतृनभिष्ठय आववर्तदवराश्वक्रियावसे ॥ १४ ॥  
 यथारघ्नं पारयथात्यं हो यथा निदो मुध्नय वन्दितारम् ।  
 अर्वाची सा मरुतो या व ऊतिरोषु वाश्रेव सुमतिर्जिगातु ॥ १५ ॥



१५ सूक्त । अर्वा नपात् देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।  
 उपेमसृक्षि वाजयुर्वचस्यां चनो दधीत नाद्यो गिरो मे ।  
 अर्वा नपादाशुहेमा कुवित् स सुपेशसस्करति जोषिपद्धि ॥ १ ॥  
 इमं स्वस्मै हृद् आलुतष्टं मन्त्रं बोधेम कुविदस्य वेदत् ।  
 अर्वा नपादसूर्यस्य मह्या विश्वान्यर्यो भुवना अजान ॥ २ ॥  
 समन्यायन्त्युपयन्त्यन्याः समानसूर्व नद्यः पुणन्ति ।  
 तमूशुचि शुचयो दीक्षितानमर्वा नपातं परितस्थुरापः ॥ ३ ॥  
 तमस्मेरा युचस्यो युवानं ममृड्यमानाः परियन्त्यापः ।  
 सशुको मिः शिकमीरेवदस्मे दीदायानिध्नो घृतनिर्णिगप्सु ॥ ४ ॥

१४ मरुतोसे वरुणीय चनकी याचना करते हुए, अपनी इक्षाके लिये, स्तोत्र द्वारा हम उनकी स्तुति करते हैं ।  
 अमीष्ट-सिद्धिके लिये, चक्र द्वारा, त्रित उन मुख्य प्राण, अपान, तमान, व्यान और उदान आदि पाँच होताओं ( मरुतो ) को आवर्तित करते हैं ।

१५ मरुतो, सुम जिस आश्रयसे आरावक पञ्चमानको पापसे बचाते हो, जिससे स्तोताको शत्रुके हाथसे मुक्त करते हो, मरुतो, पुम्हारा वही आश्रय हमारे सामने आवे ।

१ मैं अन्नकी वृद्धासे इस स्तुतिका उच्चारण करता हूँ । शब्दकर्ता और धीमन्ता अर्वा नपात् ( जल-पौत्र अग्नि ) नामके देवता हमें प्रचुर अन्न और सुन्दर रूप दें । मैं उनकी स्तुति करता हूँ । वह स्तुतिको प्रसन्न करते हैं ।

२ उनके लिये हम हृदयसे स्रचित इस मंत्रका अन्वी तरह उच्चारण करेंगे; वह उसे बार-बार जानें । स्वामी अर्वा नपात्ने शत्रु-क्षोपणकारी बलसे समस्त भुवनको उत्पन्न किया है ।

३ कोई-कोई जल हड़हा होता है, उसके साथ धूसरा मिलता है । वह सब समुद्रके बड़बानलको प्रसन्न करते हैं । विशुद्ध जल निर्मल और दीप्तिमान् अर्वा नपात् नामक देवताको चारो ओर घेरकर रहता है ।

४ वर्षरहित युवशी जल-संहति, युवाकी तरह, अर्वा नपात् देवताको अलंकृत और परिवेष्टित करती है । इन्धन-रहित और घृत-पूछ अर्वा नपात् हमारे धनवासे अन्नकी उत्पत्तिके लिये जलके बीच निर्मल तेजो बलसे दीप्त हैं ।

अस्मी तिस्रो अव्यय्याय नारीदवाय देवीर्दिधिपत्यन्मम् ।  
 कृता इवोप णि प्रसस्त्रो अप्सु स पीयूषं धयति पूर्वसूनाम् ॥ ५ ॥  
 वश्वत्पात्र जनिमास्य च स्वर्द्धु होरिषः सम्पृन्नः पाहि सूरीन् ।  
 आमासु पुष्पं परो अप्रमृष्यं नारातयो विनशन्नानृतानि ॥ ६ ॥  
 स्व आदमे सुदुघायस्य घेनुः स्वघां पीपाय सुभ्वन्नमत्ति ।  
 सो अपां नपादुर्जयन्नप्स्वस्तर्वसुदेयाय विभ्रते दिभाति ॥ ७ ॥  
 यो अप्स्वा शुचिना दंव्येन ऋतावाजस्र उर्विया विभाति ।  
 घया इदन्या भुवनान्यस्य प्रजायन्ते वीरुधश्च प्रजाभिः ॥ ८ ॥  
 अपां नपादाद्यस्थादुपस्थं जिह्वानामूध्वो विद्युतं वसानः  
 तस्य ज्येष्ठं महिमानं वदन्तीर्हिरण्यवर्णाः परियन्ति यद्भीः ॥ ९ ॥  
 हिरण्यरूपः सः हिरण्यसन्दूगपां नपात्सेदु हिरण्यवर्णः ।  
 हिरण्ययात्परियोनेर्निपद्या हिरण्यदा वदत्यन्नमस्मै ॥ १० ॥  
 तदस्या नीकमुत चारुनामापीच्यं वर्धते नमुरपाम् ।  
 यमिन्धते युवतयः समित्था हिरण्यवर्णं घृतमन्नमस्य ॥ ११ ॥

५ इला, सरस्वती और भारती नामकी तीनों देवियाँ दुःख-रहित अपां नपात् देवताके किये अन्न प्राण करती हैं। वे जलके बीच उत्पन्न पदार्थके लिये प्रसारित होती हैं। अपां नपात् सबसे प्रथम उत्पन्न जलके सारभूत सोमको पीते हैं।

६ अपां नपात् द्वारा अविच्छिन्न समुद्रमें उद्योःभवा नामक अरवका जन्म है—इस वरणीयका जन्म है। हे देव, तुम अपहृता हो। इसकाके संपर्कसे स्तोताओंकी रक्षा करो। दानशून्य और भूटे लोग अपरिपक्व अथवा परिपाक-योग्य जलमें रहकर भी इस अद्वितीय देवताको नहीं प्राप्त होते।

७ जो अपने घरमें हैं और जिनकी गायको सरलतासे दूधा जाता है, वही अपां नपात् देवता वृष्टिका जल बढ़ाते और उत्तम अन्न भक्षण करते हैं। वे जलके बीच प्रयत्न होकर यजमानको धन देनेके लिये मली भाँति वीक्षित्युक्त होते हैं।

८ जो अपां नपात् सत्यवान्, सदा एक रूपसे रहनेवाले और अति विस्तीर्ण हैं, जो जलके बीच पवित्र देवतेजके द्वारा प्रकाशित होते हैं, सारे भूत उन्हींकी आस्वाप्त हैं। फल-फूलके साथ सारी ओषधियाँ उन्हींसे उत्पन्न हैं।

९ अपां नपात् कुटिलगति मेघके बीच स्वयं ऊर्ध्व भावसे अवस्थित होनेपर भी विजलीको पहनकर अन्तरीक्षमें चढ़े हैं। सर्वत्र उनके उत्तम माहात्म्यका कीर्तन करते हुए हिरण्यवर्णा नदियाँ प्रवाहित होती हैं।

१० यह हिरण्यरूप, हिरण्यकृति और हिरण्यवर्ण हैं। यह हिरण्यमय स्थानके ऊपर बैठकर योग्यता पाते हैं। हिरण्यदाता उन्हें अन्न देते हैं।

११ अपां नपात्का रश्मिसमूह-रूप शरीर और नाम छन्दस् हैं। ये दोनों, गूढ़ होनेपर भी, वृद्धिको प्राप्त होते हैं। युवती जलसंहति उन हिरण्यवर्णोंको अन्तरीक्षमें मली भाँति वीक्षित्युक्त करती हैं, क्योंकि जल ही उसका अन्न है।

अहमै बहुनामवामाय सरव्ये यज्ञं विधेम नमसा हव्रिभिः ।  
 संस्तानुमार्जिं दिक्षिषामि बिलमैर्दधाम्यन्तैः परिवन्द ऋग्भिः ॥ १२ ॥  
 स ईं वृषाजानयत्तालुगमं स ईं शिशुर्घवति रिक्षन्ति ।  
 सो अपां नपादगभि स्लातवर्णोन्यस्येदेह तन्वा विवेप ॥ १३ ॥  
 अस्मिन् पदे परमे तस्थिवांसमध्वस्मभिर्पिशवहा दीदिवांसम् ।  
 आपोनप्त्रं घृतमन्त्रं वहन्तीः स्वयमतर्फैः परिदीवन्ति यहीः ॥ १४ ॥  
 अयांसमश्ने सुक्षितिं जनायापांसमुमितिमघ चन्द्रयः सुवृक्षिं ।  
 विश्वं तन्द्रं यदवन्ति देवा सुहृदयेम विदधे सुवीराः ॥ १५ ॥



३६ सूक्त । १ के इन्द्र २ और मधु, के मरुद्गण और माधव, ३ के त्वष्टा और  
 शुक्र, ४ के अग्नि और शुचि, ५ के इन्द्र और नभ तथा  
 ६ मंत्रको नमस्स्य देवता हैं । जगती छन्द ।  
 तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ठ गा अपोघुक्षन्त सीम विभिरद्रिभिर्नरः ।  
 पिबेन्द्र स्वाहा प्रहुतं वपट्कृतं होत्रादासोमं प्रथमोय ईशिपे ॥ १ ॥

१२ अपने मित्र और बहुत देवोंके आदि अपां नपाद् देवताकी, यज्ञ, दध्य और नसस्कार द्वारा, हम परिचर्या करेंगे । मैं उनके अन्नत प्रदेयको मली मूर्ति अलंकृत करूँगा । मैं काष्ठ और अन्न द्वारा उनको धारण करता और मंत्र द्वारा उनकी स्तुति करता हूँ ।

१३ सेवन-समय उन अपां नपात्ने इस सारे जलके बीच गर्भ उत्पन्न किया है । वही कभी पुत्ररूप होकर जल पीते हैं । सारा जल उन्हींको चाटता है । दीप्तियुक्त वही स्वर्गीय अग्नि इस पृथिवीपर अन्य शरीरसे व्याप्त हैं ।

१४ अपां नपात् वस्त्रुष्ट स्थानमें रहते हैं । वह देव द्वारा प्रतिदिन दीप्तियुक्त हैं । महान् जल-समूह उनके लिये अन्न होते हुए सतत गति द्वारा उनको वेष्टन किये हुए है ।

१५ अग्निदेव, तुम शोभनीय हो । पुत्र-लाभके लिये मैं तुम्हारे पास आया हूँ । यजमानके हितके लिये धरचित स्तुति लेकर आया हूँ । ससस्त देवगण जो कल्याण करते हैं, वह सब हमारा हो । पुत्र और पौत्रवाले होकर हम इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति कर लेंगे ।

१ इन्द्र, तुम्हारे शश्वसे प्रेरित यह सोम गन्ध और जलसे युक्त है । यज्ञके नेता लोग इस सोमको प्रस्तरखण्ड द्वारा अभिषुत करेंगे । मेघ-लोमसय दशापर्व द्वारा इसे संस्कृत करते हैं । इन्द्र, तुम सारे संसारके ईश्वर हो । सारे देवोंके प्रथम स्वाहाकारमें अग्निमें प्रक्षिप्त और वपट्कार द्वारा त्यक्त सोम होताके पाससे पान करो ।

यदेः सम्मिश्रला पृथ्वीभिर्ऋष्टिभिर्यामञ्जुभ्रासो अङ्गिषुप्रिया उत ।  
 आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादासोमं पिबतादिबो नरः ॥ २ ॥  
 अमेवनः सुहृदा आदिगन्तन निवर्हिषि सवत्सराणिष्ठन ।  
 अथामन्दस्व जुजुपाणो अन्धसस्त्वष्टर्वेभिर्जनिभिः सुमद्रुगणः ॥ ३ ॥  
 आवक्षि देवां हृद विप्र यक्षि चोशनहोतर्निषदा योनिषु त्रिषु ।  
 प्रतिवीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिवाग्नीध्रात्तव भागस्य तृणुहि ॥ ४ ॥  
 एपस्य ते तन्वो नृगणवर्धनः सह ओजः प्रदिवि वाहोर्हितः ।  
 तुम्यं सुतो मघवन्तुम्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादात्पद्मं पिब ॥ ५ ॥  
 जुपेथां यह्वं बोधतं हवस्य मे सत्तो होता निविदः पूर्या अनु ।  
 अच्छा राजाना नम एत्यावृतं प्रशास्त्रादापिबतं सोम्यं मधु ॥ ६ ॥



२ यज्ञके साथ संयुक्त, पृथ्वीयोजित रथपर अवस्थित, अपने आयुधसे क्षोभित, आभरण-प्रिय, भस्त्र वा छद्मे  
 पुत्र और अन्तरीक्षके नेता मरुतो, तुम कुशपर बैठकर पोताके पाससे सोम पान करो ।  
 ३ शोभन आह्वानवाले देवो, तुम हमारे साथ आओ, कुशपर बैठो और विहार करो । अनन्तर हे स्वष्टा, तुम  
 देवों और देवपत्नियोंके शोभनीय दलके साथ अन्नकी सेवा करके तृप्ति प्राप्त करो ।  
 ४ मेधावी अग्नि, इस यज्ञमें देवोंको बुलाओ और उनके लिये यज्ञ करो । देवोंके आह्वानकारी अग्नि, तुम  
 हमारे हृदयके अभिलाषी होकर गार्हपत्य आदिके तीनों स्थानोंपर बैठो । होमके लिये उत्तर वैदीपर लाये हुए सोम-रूप  
 मधु स्वीकार करो । अग्नीध्रके पाससे सोमपान करो और अपने अंशमें तृप्त होओ ।  
 ५ भनवान् इन्द्र, तुम प्राचीन हो । जिस सोम द्वारा तुम्हारे हाथमें शशु-विजयी सामर्थ्य और बल है, वही  
 तुम्हारे लिये अग्निवृत्त और आहूत हुआ है । तुम तृप्त होकर ब्राह्मण ऋत्विक्के पाससे सोम पान करो ।  
 ६ हे मित्रावरुण, तुम हमारे यज्ञकी सेवा करो । होता बैठकर चिरन्तनी स्तुतिका उच्चारण करते हैं । तुम हमारा  
 आह्वान सुनो । तुम शोभावाले हो । ऋत्विकों द्वारा परिवेष्टित अन्न तुम्हारे सामने है । इस मधुर सोमरसका, प्रशा-  
 स्त्राके पाससे, पान करो ।

सप्तम अध्याय समाप्त

## अष्टम अध्याय.



३७ सूक्त । १—४ द्रविणोदा, ५ के अश्विद्वय और ६ मंत्रके  
देवता अग्नि हैं । जगती छन्द ।

मन्दस्व होत्रादनुजोषमन्धसोध्वर्यवः सपूर्णां वष्टयासिचम् ।  
तस्मा एतं भरत तद्वशो ददिहोत्रात् सोमं द्रविणोदः पिव ऋतुभिः ॥१॥  
यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेतु हव्यो ददिर्योनामपत्यते ।  
अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोमं मधुपोत्रात् सोमं द्रविणोदः पिव ऋतुभिः ॥२॥  
मेघन्तु ते वह्नयो येभिरीयसेरिषण्यन्वीलयस्वा वनस्पते ।  
आयुथा धृष्णो अभिगूर्या त्वं नेष्ट्रात्सोमं द्रविणोदः पिव ऋतुभिः ॥३॥  
अपाद्धोत्रादुत्तपोत्रादमत्सोत नेष्ट्रादजुषत प्रयो हितम् ।  
तुरीयं पात्रममृक्तममत्यं द्रविणोदाः पिवतु द्राविणोदसः ॥४॥  
अर्वाञ्चमद्य यय्यं नृवाहणं रं युञ्जाथामिहवां विमोचनम् ।  
पृक्तं हवींषि मधुनाहिक्कं गतमथासोमं पिवतं वाजिनोवसू ॥५॥

१ हे द्रविणोदा या वनप्रिय अग्नि, होतृ-कृत यज्ञमें अन्न ग्रहण करके प्रसन्न और हृष्ट बनो । अध्वर्युगण, द्रविणोदा पूर्णोद्भिति चाहते हैं; इसलिये उनके लिये यह सोम प्रदान करो । सोमानिकापी द्रविणोदा अभीष्ट फल देनेवाले हैं । द्रविणोदा, होताके यज्ञमें ऋतुओंके साथ सोम पान करो ।

२ हमने पहले जिसको बुलाया है, इस समय भी उन्हींको बुलाते हैं । वह अह्वान-योग्य हैं, क्योंकि वह दाता और सबके अधिपति हैं । उनके लिये अध्वर्युओं द्वारा सोम-रूप मनु तैयार किया गया है । द्रविणोदा, पोताके यज्ञमें ऋतुओंके साथ सोम पान करो ।

३ द्रविणोदा, तुम जिस अश्वपर जाते हो, वह शूत हो । वनस्पति, किसीकी हिंसा न करके हड़ होओ । वर्षणकारी, नेष्ट्राके यज्ञमें आकर ऋतुओंके साथ सोम पान करो ।

४ द्रविणोदा, जिन्होंने होताके यज्ञमें सोम पान किया है, जो पिताके यज्ञमें हृष्ट हुए हैं, जिन्होंने नेष्ट्राके यज्ञमें प्रदत्त अन्न मक्षण किया है, वही सवर्ण-दाता ऋत्विक्के अशोचिष्ठ और मृत्यु-निवारक चतुर्थ सोम-यात्रका पान करें ।

५ अश्विनीकुमारो, जो रथ धीघ्रगामी, तुम्हारा वाहन और अभीष्ट स्थानपर तुम्हें उतार देनेवाला है, आज उसी रथको इस यज्ञमें हमारे सामने योजित करो । हमारा हव्य सुस्वादु करो और यहाँ आओ । अन्नवाले अश्विद्वय, हमारा सोम पान करो ।

जोष्यश्चे समिधं जोष्याहुनिं जोषि ब्रह्मजन्यं जोषि सुष्टुतिम् ।  
विश्वेभिर्विश्वां ऋतुना वसो मह उशन्देवां उशतः पायया हविः ॥६॥

३८ सूक्त । सविता देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

उदुष्य देवः सविता सवाय शश्वत्तमं सदा वदन्निरस्थात् ।  
नूनं देवेभ्यो विद्मिधाति रत्नमथाभजद्वीतिहोत्रं स्वस्तौ ॥१॥  
विश्वस्य हि श्रुष्ट्ये देव ऊर्ध्वः प्रवाहवा पृथुपाणिः सिसर्ति ।  
आपस्विदस्य व्रत आनिमृग्रा अयं चिद्वातो रमते परिज्मन् ॥२॥  
आशुभिश्चिद्यान्विमुवाति नूनमरीरमदतमानं चिदेतोः ।  
अह्यपूर्णं चिन्त्ययां अविष्यामनुव्रतं सवितुर्मोक्यागात् ॥३॥  
पुनः समन्यद्विततं वयन्ती मध्या कर्तोन्यधाच्छकम धीरः ।  
उत्संहायास्थाद्वयूतूरदर्धररमतिः सविता देव आगात् ॥४॥  
ननौकांसि दुर्यो विश्वमायुर्वितिष्ठते प्रभवः शोको अश्रः ।  
उपेष्टं माता सूनवे भागमाधादन्वस्य केतमिपितं सविता ॥५॥

६ अग्निदेव, तुम समिधा, आहुति, लोगोंके हितकर स्तोत्र और सुन्दर स्तुतिसे युक्त होओ । तुम सबके आश्रय-दाता और हमारे इष्टके अमिलायी होओ । हमारा इष्ट्य चाहनेवाले सारे देवोंको, ऋतुओं और विश्वदेवोंके साथ, सोम पान कराओ ।

१ प्रकाशक और जगदुवाहक सविता वा सूर्य, प्रसवके लिये, प्रति दिन उदित होते हैं । यही उनका कर्म है । वह स्तोताओंको रत्न देते और सुन्दर यज्ञवाले यजमानको मंगलभागी बनाते हैं ।

२ प्रलम्बबाहु और प्रकाशवाले सविता, विश्वके आनन्दके लिये, उदित होकर बाहु प्रसारित करते हैं । उनके कार्यके लिये अतोव पवित्र जल-समूह प्रवाहित होता है और वायु भी सर्वतोव्यापी अन्तरीक्षमें विहरण करता है ।

३ जाते-जाते जिस समय सविता शीघ्रगामी किरणों द्वारा विमुक्त होते हैं, उस समय वह निरन्तरगामी पथिकोंको भी विरस करते हैं । जो शत्रुके विरुद्ध जाते हैं; सविता उनकी जानकी इच्छाको भी निवृत्त करते हैं । सविताके कर्मके अनन्तर रात्रिका आगमन होता है ।

४ वस्त्र धुननेवाली रमणीकी तरह रात्रि पुनः आलोकको, अलो भाँति, घेष्टन करती है । बुद्धिमान लोग जो कर्म करते हैं, वह करनेमें समर्थ होनेपर भी मध्य मार्गमें रख देती है । विराम-रहित और ऋतुविभाग-कर्त्ता प्रकाशक सविता जिस समय फिर उदित होते हैं, उस समय लोग शय्या छोड़ते हैं ।

५ अग्निके गृहमें स्थित प्रभूष सेज यजमानके भिन्न-भिन्न गृह और समस्त अन्नमें अविच्छिन्न है । माता उषाने सविता द्वारा प्रेरित प्रज्ञापक बड़ाका अष्ट भाग पुत्र अग्निको दान किया है ।

समाववर्ति विष्टिषो जिगीषुर्विश्वेषां कामश्चरताममभूत् ।  
 शश्वीं अपो विहृतं हित्व्यानादनुवतं सवितुर्देव्यस्य ॥६॥  
 रव्या हितमप्यमप्सु सागं घन्वान्वा मृगयसो वितरुधुः ।  
 वनानि विभ्यो नकिरस्य तानि व्रता देवस्य सवितुर्मिनन्ति ॥७॥  
 याद्राध्यं वरुणो योनिमप्यमनिशितं निमिपि जर्भुराणः ।  
 विश्वो मार्ताण्डो व्रजमापशुर्गात्स्थशो जन्मानि सविता व्याकः ॥८॥  
 मयस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो व्रतमर्यमानं मिनन्ति रुद्रः ।  
 नापतयस्तमिवं स्वस्ति हुवे देवं सवितारं नमोमिः ॥९॥  
 भगं धियं वाजयन्तः पुरन्धि नराशंसो ग्रास्पतिर्नो अन्वाः ।  
 आयवामस्य सङ्ग्रे रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम ॥१०॥  
 अस्मभ्यं तद्विवो अद्भ्यः पृथिव्यास्त्वया दत्तं काम्यं रात्र आगात् ।  
 शं यत् स्तोतुम्य आपये भवात्युरुशंसाय सवितर्जरित्रे ॥११॥

—ॐ नमः—

६ स्वर्गीय सविताके व्रतकी समाप्ति होनेपर जयामिलापो राजा, युद्ध-यात्रा कर घुक्नेपर भी, लौट आता है। सारे जंगम पदार्थ वरकी अमिलावा करते और सदा कार्यरत व्यक्ति अपने किये आये कर्मको भी छोड़कर वरकी ओर लौटता है।

७ सविता, अन्तरीक्षमें शुभने जो जल-भाग रख छोड़ा है, जलान्वेषणकर्ता लोग चारो ओर डूबे पाते हैं। शुभने पक्षियोंके लिये वृक्षोंका विभाग किया है। कोई भी सविताके कार्यकी हिंसा नहीं कर सकता।

८ सविताके अस्त होनेपर सदा गमनशील वरुण सारे जंगम पदार्थोंको सुखकर, वाञ्छनीय और सुगम वास-स्थान प्रदान करते हैं। जिस समय सविता सारे भूतोंको स्थान-स्थानपर अलग-अलग कर देते हैं, उस समय पशु-पक्षिगण भी अपने-अपने स्थानको जाते हैं।

९ हव्य जिसके व्रतकी हिंसा नहीं करते, वरुण, मित्र, अर्यमा और रुद्र भी हिंसा नहीं करते, वायुगण भी हिंसा नहीं करते, इन्हीं अतिमान् सविताको कल्याणके लिये इस प्रकार नमस्कार द्वारा हम आह्वान करते हैं।

१० जिनकी स्तुति सारे मनुष्य करते हैं, जो देव-पत्नियोंके रक्षक हैं, वही सविता हमारी रक्षा करें। हम भजनीय, बहुप्रशंसा और ध्यान-योग्य सविताको बलवान् करते हैं। हम धन और पशुकी प्राप्ति और संचयके सम्बन्धमें सविताके प्रिय हों।

११ सविता, शुभने हमें जो प्रसिद्ध और रमणीय धन प्रदान किया है, वह धुलोक, भूलोक और अन्तरीक्षलोक-से हमारे पास आये। जो धन स्तोत्राभेक धनजोके किये शुभकर है, मैं बहुत-बहुत स्तुति करता हूँ कि, शुभके वही धन दो।

३६ सूक्त । अश्विद्वय देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्राजाणेधतदिदर्थं जरथेगृध्रेवघृक्षं निधिमन्तमच्छ ।  
 प्रजाणेध विदथ उक्थशासा दूतेव हव्या जन्या पुरुत्रा ॥१॥  
 प्रातर्यावाणा रथ्येव वीराजेव यमा वरमा सचेथे ।  
 मेमे इव तन्वा शुभमाने दम्पतीव श्रुविदा जनेषु ॥२॥  
 शृङ्गीवनः प्रथमा गन्तमर्वाक् शफाविव जभुराणा तारोमिः ।  
 चक्रवाकेष प्रति वस्तोरुस्त्रार्वाञ्जापातं रथ्येव शक्रा ॥३॥  
 मादेवनः पारयतं युगेव नभ्येव न उपधीव प्रधीव ।  
 श्वानेव नो अरिपण्या तनूनां खगलेव वित्ससः पातमस्मान् ॥४॥  
 घातेवाज्या नद्येवरीतिरक्षी इव चक्षपायातमर्वाक् ।  
 हस्ताविव तन्वे शंभविष्टा पादेव नो नयतं वस्यो अच्छ ॥५॥  
 ओष्टाविव मध्वालो वदन्ता स्तनाविव पिप्यतं जीवसे नः ।  
 नासेव नस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे ॥६॥

१ अश्विद्वय, शत्रु के प्रति प्रेरित प्रस्तर-स्वयन्द्वयकी तरह शत्रु को बाधा दो । जैसे दो पक्षी वृक्षपर आते हैं, वेसे ही तुम भी बजमानके निकट आओ । मंत्रोच्चारक ब्रह्मा नामके अश्विक् और देशमें दो दूतोंकी तरह तुम बहुतोंके हुलाने योग्य हो ।

२ अश्विद्वय, प्रातःकाक जानेवाले दो रथियोंकी तरह तुम वीर हो, दो ज्वागोंकी तरह यमज हो, दो स्त्रियोंकी तरह छन्द शरीरवाले हो, दम्पतीकी तरह संगत और सबके कर्मज्ञाता हो । तुम दोनों भक्तके पास आओ ।

३ देवोंमें प्रथम अश्विद्वय, तुम पशुकी दोनों सींगों वा अथवा आक्षिके दोनों खुरोंकी तरह वेगवान् होकर हमारे सामने आओ । शत्रु-हन्ता और स्वकर्म-समर्थ अश्विद्वय, जैसे दिनमें चक्रवाक-दम्पती आते हैं अथवा जैसे दो रक्षी आते हैं, वेसे ही तुम हमारे सामने आओ ।

४ अश्विद्वय, नौकाकी तरह तुम हमें पार उतार दो । रथके युगकी तरह, रथचक्रके नाभि-फलककी तरह, उसके पारवस्थ फलककी तरह और चक्रके बाह्यदेशके धलयकी तरह हमें पार करो । दो कुक्करोँकी तरह तुम हमारे शरीरको हिंसासे बचाओ । दो घर्मकी तरह तुम हमें जरासे बचाओ ।

५ अश्विद्वय, दो वायुओंकी तरह अक्षय, दो नदियोंकी तरह शोषणपानी और दो मंजोंकी तरह दर्शक हो । तुम हमारे सामने आओ । तुम दोनों हाथों और पैरोंकी तरह शरीरके छल्लाता हो । तुम हमें ओष्ठ धनकी ओर ले जाओ ।

६ अश्विद्वय, दोनों ओठोंकी तरह मधुर-वाक्यका उच्चारण करो, दोनों स्तनोंकी तरह, हमारे जीवन चरणके किये, दूध पिकाओ, दोनों नाकोंकी तरह हमारे शरीरके रक्षक होओ और दोनों कानोंकी तरह हमारे ओंता होओ ।



हस्तेव शक्तिमभिसन्ददी नः क्षामेव नः समजतं रजांसि ।  
 इमा गिरो अश्विना युष्मयन्तोः क्षणोज्ञेव स्वधिति संशिशीतम् ॥७॥  
 पतानि वामश्विना वर्धनानि ब्रह्मस्तोमं गृत्समदासो अक्रन् ।  
 तानि नरा जुजुषाणोपयातं बृहद्वदेम विद्यथे सुवीराः ॥८॥



४० सूक्त । सोम और पूषा देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।  
 सोमापूषणा जनना रयीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः ।  
 जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्मृतस्य नाभिम् ॥१॥  
 इमौ देवौ जायमानौ जुपन्तेमौ तमांसि गूहतामजुष्टा ।  
 आभ्यामिन्द्रः पक्वमासावन्तः सोमापूपभ्यां जनदुस्त्रियास्तु ॥२॥  
 सोमापूषणा रजसो विमानं सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम् ।  
 विष्वक्तं मनसा युज्यमानं तं जिन्वथो वृषणा पञ्चरश्मिम् ॥३॥  
 दिव्यन्थः सदनं चक्र उच्चा पृथिव्यामन्यो अध्यन्तरिक्षे ।  
 तावत्सम्यं पुरुवारं पुरुक्षं रायस्पोषं विज्यतां नामिमस्मे ॥४॥

० अश्विद्वय, दोनों हाथोंकी तरह हमें सामर्थ्य प्रदान करो । पावापृथिवीकी तरह हमें जल दो । अश्विद्वय, ये सब स्तुतिर्थां तुम्हें चाहती हैं । तुम धान चढ़ानेके धर्मके द्वारा सलवारकी तरह उन्हें सीढ़ण करो ।

८ अश्विद्वय, गुत्समद ऋषिने तुम्हारी वृद्धिके लिये ये सब स्तोत्र और मंत्र बनाये हैं । तुम नेता और अतीव प्रोत्तिवाले हो । तुम्हारे पास यह सब स्तुतिर्थां आवें । हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करें ।

१ सोम और पूषा, तुम धन, अलोक और पृथिवीके जनक हो । जन्मके अनन्तर ही तुम सारे संसारके रक्षक हुए हो । देवोंने तुम्हें अमरताका कारण बनाया है ।

२ जनमते ही पृथिमान् सोम और पूषाकी देवोंने सेवा की थी । ये दोनों अग्रिय अन्वकारका विनाश करते हैं । इनके साथ ऋग्वेदके सप्तमी धेनुओंके अवाप्रदेशमें एक दुग्ध उत्पन्न करते हैं ।

३ अग्नीष्टवर्षी सोम और पूषा, तुम संसारके विमानक, सप्तचक्र ( सात ऋतु, मलमास लेकर ) वाले संसारके लिये अविभाज्य, सर्वत्र वर्तमान, और पंचरश्मि ( पाँच ऋतु, हेमन्त और शीतको एकमें करके ) वाले हो । इच्छा होते ही योजित रथ हमारे सामने प्रेरित करते हो ।

४ तुममें एक जन ( पूषा ) दुग्ध अलोकमें रहते हैं । दूसरे ( सोम ) ओषधि-रूपसे पृथिवी और चन्द्र-रूपसे अन्तरीक्षमें रहते हैं । तुम दोनों अनेक लोगोंमें वरणीय, बहुकीर्तिवाली । हमारे भागका कारण और पशुरूप धन हमें हो ।

विश्वान्यन्यो भुवना जजान विश्वमन्यो अभिचक्षाण एति ।  
 सोमापूपणा ववतं धियं मे युवाम्यां विश्वाः पृतना जयेम ॥५॥  
 धियं पूषा जिन्वतु विश्वमिन्वो रयिं सोमो रयिपतिर्दधातु ।  
 अवतु देव्यदितिरनर्वा वृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥६॥

—१३३३३३३३३३३३—

४१ सूक्त । १-३ के इन्द्र और वायु, ४-६ के मित्रावरुण, ७-९ के अश्विद्वय, १०-१३ के इन्द्र, १३-१५ के विश्वदेवगण, १६-१८ के सरस्वती और १९-२१ मन्त्रके देवता धावापृथिवी हैं ।

वाया ये ते सहस्रिणो रयासस्तेमिरागहि । नियुत्वान्तसोमपीतये ॥१॥  
 नियुत्यान् धायवागहायं शुक्रो अयामि ते । गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥२॥  
 शुक्रस्याद्य गवाशिर इन्द्रवायू नियुत्वतः । आयातं पिबतं नरा ॥३॥  
 अयं वां मित्रावरुणा सुतः सोम ऋतावृधा । ममेदिह श्रुतं हवम् ॥४॥  
 राजानावनमिद्र दा ध्रुवे सदस्युत्तमे । सहस्रस्थूण आसाते ॥५॥  
 ता सभ्राजा घृतासुति आदित्यादानुनस्पती । सचेते अनवह्वरम् ॥६॥  
 गोमदूय नासत्या श्वावद्यातमश्विना । वर्तीरुद्रा नृपाय्यम् ॥७॥

५ सोम और पूषा, तुममेंसे एक ( सोम ) ने सारे भूतोंको उत्पन्न किया है । दूसरे ( पूषा ) सारे संसारका पर्यवेक्षण कर जाते हैं । सोम और पूषा, तुम हमारे कर्मकी रक्षा करो । तुम्हारे द्वारा हम सारी शत्रु-सेनाकी जय कर डालें ।  
 ६ संसारको प्रसन्नता देनेवाले पूषा हमारे कर्मसे वृक्ष प्राप्त करें । धनपति सोम हमें धन दान करें । सुतिमती और शत्रु-रहिता अदिति हमारी रक्षा करें । हम पुत्र और पौत्रवाले होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति कर सकें ।

१ वायु, तुम्हारे पास जो हजार रथ हैं, उनके द्वारा नियुत्तगणसे युक्त होकर सोम पानके लिये आओ ।  
 २ वायु, नियुत्तगणसे युक्त होकर आओ । तुमने दीप्तिमान् सोम ग्रहण किया है । सोमाभिषेककारी यजमानके घरमें तुम जाते हो ।  
 ३ नेता इन्द्र और वायु, तुम आज नियुत्तगणसे युक्त होकर और सोमके लिये आकर गन्ध-मिला सोम पीओ ।  
 ४ मित्रावरुण, तुम्हारे लिये यह सोम तैयार हुआ है । सत्यवर्द्धक तुम हमारा आह्वान सनो ।  
 ५ शत्रुता-शून्य राजा मित्रावरुण स्थिर, उत्कृष्ट और हजार स्तम्भोंवाले इस स्थानपर बैठें ।  
 ६ सभ्राट्, घृताम्नभोजी, अदिति-पुत्र और दाता मित्रावरुण सरलगति यजमानकी सेवा करते हैं ।  
 ७ अश्विद्वय, नासत्यद्वय, वृहद्वय, यज्ञके नेता जो सोमपान करेंगे, उसी सोमको घेजु और अश्वसे युक्त करके लाना आओ ।

न यत्परो नान्तर आदर्धर्षद्वृषणवत् । दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ॥८॥  
 तान अचोह्लमश्विना रथं पिशङ्गसन्दृशम् धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥९॥  
 इन्द्रो अङ्ग महङ्गयमभीषदप च्युच्यवत् । स हि स्थिरो विचर्पणिः ॥१०॥  
 इन्द्रश्च सृलयाति नो नमः पश्चादधं नशत् । भद्रं भवति नः पुरः ॥११॥  
 इन्द्र आशाभ्यस्परि स्त्रावस्यो अभयं करत् । जेता शत्रून् विचर्पणिः ॥१२॥  
 विश्वेदेवास्त आगत शृणुताम इमं हवम् । पदं वाहनिपीदत ॥१३॥  
 तीजो वो मधुमाँ अयं शुनहोत्रेषु मत्सरः । एतं पिबत काम्यम् ॥१४॥  
 इन्द्रयेष्टा मरुदङ्गा देवास्तः पूषरायतः । विश्वे मम श्रुता हवम् ॥१५॥  
 अम्बिष्ठमे नदीतमे देवितमे सरस्वति । अप्रशस्ता इव स्मस्मि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥१६॥  
 त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूँषि देव्याम् । शुनहोत्र पु मत्स्वप्रजाँ देवि दिदिङ्दितिनः ॥१७॥  
 इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति । या ते मग्म गृत्समदा ऋतावरि प्रिया देवेषु जुहति ॥१८॥  
 प्रेताँ यज्ञस्य शम्भुवा युवामिदा वृणीमहे । अग्निं च हव्यवाहनम् ॥१९॥

८ धनवर्षी अश्विद्वय, दूरस्थित वा समीपवर्षी मन्दभाषी मर्त्य रिपु जिस धनको नहीं चुरा सकता, उसे ही हमें दो ।

९ ज्ञानार्ह अश्विद्वय, तुम हमारे पास नाना रूप और धन-प्रापक धन ले आओ ।

१० इन्द्र अधिक और अभिभवकारी अयको दूर करते हैं । वह स्थिर और प्रज्ञावान् हैं ।

११ यदि इन्द्र हमें खली करें, तो हमारे साथ पाप नहीं आवेगा; हमारे सामने कल्याण उपस्थित होगा ।

१२ प्रज्ञावान् और शत्रुजेता इन्द्र चारो ओरसे हमें अय-शून्य करें ।

१३ विश्वदेवगण, यहाँ आओ । हमारा आह्वान सुनो और कुण्डके ऊपर बैठो ।

१४ विश्वदेवगण, तीव्र मदबाला, रसवाली और हर्षकर यह सोम तुम्हारे लिये गृत्समदवर्षीयोंके पास है । इस सोमन सोमका पान करो ।

१५ जिन मरुतोंमें इन्द्र श्रेष्ठ हैं, जिनके दाता पूषा हैं, वे ही मरुदङ्गा हमारा आह्वान सुनें ।

१६ मातृगणमें श्रेष्ठ, नदियोंमें श्रेष्ठ और देवोंमें श्रेष्ठ सरस्वती, हम बुद्धि हैं; हमें धनी करो ।

१७ सरस्वती, तुम धुलिसती हो । तुम्हारे आश्रयसे अन्न है । शुनहोत्रोंमें तुम सोम पान करके वृष्ट होओ । देवी, तुम हमें पुत्र दो ।

१८ अन्नवती और जलवती सरस्वती, इस हव्यको स्वीकार करो । यह मननीय और देवोंके लिये प्रिय है । गृत्समद लोग इसे तुम्हें देते हैं ।

१९ यज्ञके सुख-सम्पादक यावाशुधिवी, तुम आओ । हम तुम्हारी प्रार्थना करते हैं । हम हव्य-वाहन अग्निकी भी प्रार्थना करते हैं ।

धावा नः पृथिवी इमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् । यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥२०॥

आ धामुपस्थमद्रुहा देवाः सीदन्तु यज्ञियाः । इहाद्य सोमपीतये ॥२१॥



४२ सूक्त । कपिञ्जरूपी इन्द्र देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

कनिकदलानुपं प्रमृवाण इयति वाचमरितेव नावम् ।

सुमङ्गलश्च शकुने भवासि मा त्वा काचिदभिभा विश्व्या चिवत् ॥१॥

मा त्वा श्येनः उद्धधीन्मा सुपर्णो मा त्वा विददिषुमान्वीरो अस्ता ।

पित्र्यामनुप्रदिशं कनिकदत् सुङ्गलो भद्रवादी धवै ह ॥२॥

अथ कन्द दक्षिणतो गृहाणां सुङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते ।

मा नः स्तेन ईशत माघशंसो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥३॥



४३ सूक्त । कपिञ्जरूपी इन्द्र देवता । जगती, मध्या, शकरी और अष्टि छन्द ।

प्रदक्षिणिर्दभिगृणन्ति कारवो वया चवन्त ऋतुया शकुन्तयः ।

उभे वाची वदती सामगाहव गायत्रं च त्रैष्टुभं चानुराजति ॥१॥

० धावापृथिवी स्वर्ग आहिदे साधक सौर देवोंके ओर जानेवाली हैं । हमारे इस यज्ञके देवोंके पास ले जायँ ।

२१ अग्रता-शून्य धावापृथिवी, सोमपानके लिये यज्ञार्ह देवगण आज तुम्हारे पास बैठ ।

१ बारम्बार शब्दायमान और अदिष्यद्वक्ता कपिञ्जर, जैसे कर्णधार नौकाको परिचालित करता है, वैसे ही वाक्यको प्रेरित करता है । शकुनि, सुम कल्याण-सूचक होथो । किसी ओरसे किसी प्रकारकी पराजय तुम्हारे पास न आवे ।

२ शकुनि, तुम्हें श्येन पक्षी न मारे—गरुड पक्षी भी न मारे । वह बलवान्, वीर और अनुचारी होकर तुम्हें न प्राप्त करे । दक्षिण दिशामें बार-बार शब्द करके और सुमङ्गल-वांछी होकर हमारे लिये प्रियवादी बनो ।

३ शकुन्ता, सुमङ्गल-सूचक और प्रियवादी होकर घरकी दक्षिण दिशामें बोलो, ताकि वोर और दुष्ट व्यक्ति हमारे ऊपर प्रभुत्व न करे । पुत्र और पौत्रवाले होकर हम इस यज्ञमें प्रभूत् स्तुति करें ।

१ समव-समवपर अश्वनकी खोज करके स्तोताओंकी तरह शकुनिगण, प्रदक्षिण करके, शब्द करें । जैसे सामगायक लोग गायत्री और त्रिष्टुप् ( दोनों साम ) का उच्चारण करते हैं, वैसे ही कपिञ्जर भी दोनों वाक्य उच्चारण करता और स्तोताओंको अनुरक्त करता है ।

उद्गातेव शकुने सामगायसि ब्रह्मपुत्रव सवनेषु शंससि ।

धृषेव वाजी शिशुमसीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमावद

विश्वतो नः शकुने पुण्यमावद ॥२॥

आवदं स्त्वं शकुने भद्रमावद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिक्छिनः ।

यदुस्पतन् वदसि कर्करिथं बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥३॥



२ शकुनि, जैसे उद्गाता साम गान करते हैं, वैसे ही तुम भी गाओ । यज्ञमें ब्रह्मपुत्र ऋत्विक्की तरह तुम शब्द करो । जैसे सेवन-समर्थ अश्व अश्वीके पास जाकर शब्द करता है, वैसे ही तुम भी करो । शकुनि, तुम सर्वत्र हमारे लिये मंगल-सूचक और पुण्य-ज्वक शब्द करो ।

३ शकुनि, जिस समय तुम शब्द करते हो, उस समय हमारे लिये मंगल-सूचना करते हो । जिस समय तुम रहकर तुम बैठते हो, उस समय हमारे प्रति सुप्रसन्न रहते हो । उदनेके समय तुम कर्करि ( एक बाजा ) की तरह शब्द करते हो । हम पुत्र और पौत्रवाते होकर इस यज्ञमें प्रभूत स्तुति करें ।



## द्वितीय मण्डल समाप्त



## तृतीय मण्डल



२ अष्टक । ३ मण्डल । ८ अध्याय । १ अनुवाक । १ सूक्त ।

अग्नि देवता । विश्वामित्र ऋषि । x त्रिष्टुप् छन्द ।

सोमस्य मा तयसं पश्यन्ने वह्निं चकथं विदथे यजध्वै ।  
 देवां अच्छादीद्यध्वं अग्निं शमाये अग्ने तन्वं जुपस्व ॥१॥  
 प्राञ्चं यत्नं चक्रम धर्घतां गोः समिद्धिरग्निं नमसा दुवस्यन् ।  
 दिवः शशासुर्विदधा कवीनां गृत्साय चित्तवसे गांतुमीषुः ॥२॥  
 मयोदधे मेधिरः पूतदक्षो दिवः सुबन्धुर्जनुषा पृथिव्याः ।  
 अविन्दन्नुदर्शतमप्स्वन्तर्द्वासो अग्निमपसि स्वसृणाम् ॥३॥  
 अवर्धयन्त्सुभगं सप्तयज्ञीः श्वेतं जज्ञानमरुपं महित्वा ।  
 शिशुं न जातमभ्यारुश्व देवासो अग्निं जनिमन्वपुष्वन् ॥४॥

१ अग्निदेव, यज्ञ करनेके लिये हमने तुम्हें सोमका वाहक किया है; इसलिये तुम्हें बलवान् करो । अग्नि, मैं प्रकाशमान होकर, देवोंको लक्ष्य कर, अमिषवर्णके लिये, प्रस्तरखण्ड ग्रहण और स्तव करता हूँ । अग्नि, तुम मेरे शरीरकी रक्षा करो ।

२ अग्नि हमने मकी भाँति यज्ञ किया है । हमारी स्तुति वर्द्धित हो । समिधा और हव्य द्वारा लोग अग्निकी परिचर्या करें । तुलोकसे आकर देवोंने स्तोताओंको स्तोत्र सिखाया है । स्तोतागण स्तवनीय और प्रवृद्ध अग्निकी स्तुति करनेकी इच्छा करते हैं ।

३ जो मेघावी, विशुद्ध-बल-शाली और जन्मसे ही उत्कृष्ट षण्धु हैं, जो ध्रुव लोकका सुख-विधान करते हैं, उन्हीं शक्तीय अग्निकी, देवोंने, यज्ञ-कार्यके लिये, वहनशील नदियोंके जलके बीच, प्राप्त किया है ।

४ सोमन धनवासे, शुभ्र और अपमो महिमासे दीप्तिशाली अग्निके उत्पन्न होते ही उन्हें सात नदियोंने संबर्द्धित किया था । जैसे अरवी नवजात शिशुके पास जाती है, वैसे ही नदियाँ नवजात अग्निके पास गयी थीं । उत्पत्तिके साथ ही अग्निकी देवोंने दीक्षिमान् किया ।

ॐ इस मण्डलके ऋषि विश्वामित्र और उनके वंशज हैं । प्राचीन भारतके अनेक ऋषियोंकी तरह विश्वामित्र भी गृहस्थ और महान् बौद्ध थे । विश्वामित्र और उनके वंशजोंके साथ वसिष्ठ और उनके पंथजोंकी बड़ी प्रतिबुद्धिबुद्धता थी ।

शुक्रेभिरङ्गै रज आततन्वान् ऋतुं पुनानः कविभिः पवित्रैः ।  
 शोर्विर्वसानः पर्यायुरपां श्रियो मिमीते वृहतीरनूनाः ॥१॥  
 वज्राजासीम नदतीरदध्वा दिवो यहीरवसाना अनग्राः ।  
 सना अन्न युवतयः सयोनीरेकं गर्भं दधिरे सप्तवाणीः ॥६॥  
 स्तीर्णा अस्य संहतो विश्वरूपा घृतस्य योनौ स्रवथे मधूनाम् ।  
 अस्थुरन्न धेनवः पिन्वमाना महीदस्मस्य मातरा समीची ॥७॥  
 वज्राणः सूनो सहस्रो व्यघोद्धानः शुक्रा रससा पूर्णि ।  
 ओतन्ति धारा मधुनो घुघस्य वृषा यत्र बावृधे काव्येन ॥८॥  
 पितुश्चिदुधर्जनुषा विवेद व्यस्य धारा असृजद्विधेनः ।  
 गुहा चरन्तं सखिमिः शिवेभिर्दिवो यहीभिर्न गुहा बभूव ॥९॥  
 पितुश्च गर्भं हनितुश्च वज्रो पूर्वोरेको अधयत् पीप्यानाः ।  
 वृष्णे सपत्नी शुश्रूषे जवन्धू उभे व्यस्मे मनुष्ये निपाहि ॥१०॥

५ शुक्रवर्ण तेजके द्वारा अन्तरीक्षको व्याप्त करके अग्निदेव यजमानको स्तुति-योग्य और पवित्र तेजके द्वारा परिशोधित करते तथा दीप्तिका परिधान करके यजमानको अन्न और प्रभूत तथा सम्पूर्ण सम्पत्ति देते हैं ।

६ अग्नि जलकी चारो ओर जाते हैं । वह जल अग्निको वहाँ छुकाता अथवा वह अग्नि द्वारा नहीं सूखता । अन्तरीक्षके अपत्यमूल अग्नि चलनेसे आच्छादित नहीं हैं, तो भी, जलते देखित होनेके कारण, नान भी नहीं हैं । अनात्मन, पितृ, तपन और एक स्नानसे उत्पन्न सात नदियाँ एक अग्निको गर्भ धारण करती हैं ।

७ जल-धर्पणके अनन्तर जलके गर्भ-स्वरूप और अन्तरीक्षमें पुण्ड्रोमुख नामावर्ण अग्निकी किरणें रहती हैं । इन अग्निके जलरूप स्थूल धेनुएँ सबकी प्रीति-दायिका होती हैं । सुन्दर और महात्मा वावापृथिवी वर्तनीय अग्निके माता-पिता हैं ।

८ बलके पुत्र, सयके द्वारा मुझे धारण करनेपर तुम अन्नचल और वेगवान् किरण धारण करके प्रकाशित होओ । जिस समय अग्नि यजमानके स्तोत्र द्वारा बढ़ते हैं, उस समय मधुर जलधारा गिरती है ।

९ अन्नके साथ ही अग्निने पिता ( अन्तरीक्ष ) के अवस्थान जल-प्रदेशको जाना था और अवस्थान-सम्पत्तिभी धारा या घृष्टि और अन्तरीक्षचारी वज्रको गिराया था । अग्नि, कामकर्ता वायु आदि वस्तुओंके साथ, अवस्थान करते और अन्तरीक्षके अपत्यमूल जलके साथ गुहामें वर्तमान रहते हैं । इन अग्निको कोई नहीं पाता ।

१० अग्नि-पिता ( अन्तरीक्ष ) और जनयित्ताका गर्भ धारण करते हैं । एक अग्नि बहुतर बुद्धिको प्राप्त ओषधिका भक्षण करते हैं । सपत्नी और मनुष्योंकी हितकारिणी वावापृथिवी अमोघवर्षी अग्निके बन्धु हैं । अग्नि, तुम वावापृथिवी-को अच्छी तरह पचाओ ।

उरी महीं अनियाधे चवर्धापो अग्निं यशसः सं हि पूर्वीः  
 ऋतस्य योनावशयद्भूना जामीनामग्निरपसि स्वसृणाम् ॥११॥  
 अक्रो न अग्निः समिधे मदीनां विदूक्षेयः सूनवे भास्वजीकः ।  
 उदुस्त्रिया जनिता यो जजनापां गर्भो नृतमो सहो जग्निः ॥१२॥  
 अपां गर्भं दशंतमोपघोतां वना जजान सुमगा विरूपम् ।  
 दैधासध्विन्मनसा त्वं हि जग्मुः पनिष्ठं जातं तवसं दुवक्ष्यन् ॥१३॥  
 वृहन्त ऋणानवो भास्वजीकमग्निं सचन्त विधुतो न शुकाः ।  
 गुह्येव वृद्धं सदसि स्वे अन्तरपार ऊर्वं अमृतं दुहानाः ॥१४॥  
 ईले च त्वा याजमानो एविभिरीले सखित्वं सुमतिं निकामः ।  
 हेवैर्यो मिमीहि संजग्त्रे रक्षा च नो दम्येभिरनीकैः ॥१५॥  
 उपक्षेतारस्तव सुप्रणीतेभ्यो विश्वानि धन्या दधानाः ।  
 सुरेतसा श्रवसा तुजमाना अभिष्याम पृतनार्यूरदेवान् ॥१६॥

११ महान् अग्नि अस्मत्पाद थोर विस्तोर्ण अन्तरीक्षमें वदित होते हैं; क्योंकि बहु-धनवान् जल इनको अच्छी तरह वदित करता है। जलके जन्मस्थान अन्तरीक्षमें स्थित अग्नि भगिनी-स्थानीया नदियोंके जलमें प्रधान्त्त विसले धवन करते हैं।

१२ जो अग्निदेव समस्त संसारके जनक, उसके गर्भभूत, मनुष्योंके सारक्षक, महान्, यज्ञोंके आक्रमणकारी, संक्राममें अपनी महती सेनाके रक्षक, सबके दशानीय और अपनी दोसिधे प्रकाशमान हैं, उन्होंने ही यजमानके लिये जल उत्पन्न किया है।

१३ सौभाग्यशाली अग्निने दशानीय, विविध रूपवान् तथा जल और ओषधियोंके गर्भभूत अग्निको उत्पन्न किया है। सारे देवता लोग भी स्तुति-योग्य, प्रवृद्ध तथा सघोजात अग्निके पास, स्तुति-सम्पन्न होकर, गये थे। उन्होंने अग्निकी परिचर्या भी की थी।

१४ दोसिधाली बिजलीकी तरह महान्, सूर्यगण अग्निव समुद्रके बीच जघृतका दोहन करके, गुहाकी तरह, अपने भवन अन्तरीक्षमें प्रवृद्ध और प्रभा वुवारा प्रदीप्त अग्निका आश्रय करते हैं।

१५ इन्द्र्य द्वारा मैं यजमान तुम्हारी स्तुति करता हूँ। चर्म-नेत्रमें छुदि पानेकी इच्छासे तुम्हारे साथ बन्धुत्वके लिये प्रार्थना करता हूँ। देवोंके साथ शुक्र स्वोताके पशु आदिकी और मेरी, दुर्दम्य तेजके द्वारा, रक्षा करो।

१६ धनेता अग्नि, हम तुम्हारा आश्रय चाहते हैं। हम समस्त धनकी प्राप्ति का कारणभूत कर्म करते और इन्द्र्य प्रधान करते हैं। हम तुम्हें वीर्यशाली अन्न प्रधान करके अर्धेयों और अहितकारी यज्ञोंको जीत सकें।



आ देवनामभवः केतुरग्रे मन्द्रो विश्वानि काव्यानि विद्वान् ।

प्रतिमर्ता अवाक्षयो दमूना षनुदेवान्नथिरो यासि साधन् ॥१७॥

निदुरोणे अमृतो मर्त्यानां राजा ससाद विद्वानि साधन् ।

सुतप्रतीक उर्विया व्यद्यौदग्निविश्वानि काव्यानि विद्वान् ॥१८॥

नो गहि सख्येभिः शिब्रेभिर्महान्महीभिरुतिभिः सरण्यन् ।

यस्मै रयि बहुलं सन्तकत्रं सुवाचं भागं यशसं कृधो नः ॥१९॥

यता ते अग्रे जनिमा सनानि प्रपूश्याय नूतनानि वोचम् ।

महान्ति वृष्णे सवना कृतेमा जन्मन्जन्मन्निहितो जातवेदाः ॥२०॥

जन्मन्जन्मन्निहतो जातवेदा विशमित्रे मिरिध्यते अजस्रः ।

तस्य वयं सुमता यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥२१॥

इमं यज्ञं स्रहसावन्त्वं नो देवत्रा धेहि सुकतो रराणः ।

प्रयसि होतवृहतीरिषो नोश्रे महि द्रविणमायजस्व ॥२२॥

इलामग्रे पुषदंलं सनि गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।

स्यान्तः सुनुस्तनयो विजावाग्रे सा ते सुमतिभूर्त्वस्मे ॥२३॥

—ॐ नमो भगवते—

१७ अग्नि, तुम देवों के स्वामी व दूत हो । तुम सारे स्तोत्रों के ज्ञाता हो । तुम मनुष्यों को उनके अपने-अपने गृहमें वास देते हो । तुम रथी हो । तुम देवों का कार्य-साधन करके उनके पीछे-पीछे जाते हो ।

१८ नित्य राजा अग्नि यज्ञ का साधन करके मनुष्यों के गृहमें बैठते हैं । अग्नि सारे स्तोत्र जानते हैं । अग्निका अंग धीके द्वारा दीप्तियुक्त है । विशाल अग्नि प्रकाशमान होते हैं ।

१९ गमनेच्छु महान् अग्नि, मङ्गलमयी मैत्री और महान् रक्षा के साथ हमारे पास आओ और हमें बहुत, निर्य-द्रव, शोभन स्तुतिवाला और कीर्तिवाली वन दो ।

२० अग्नि, तुम पुराण पुरुष हो । तुम्हें लक्ष्य करके इन सब सनातन और नवीन स्तोत्र का हम पाठ करते हैं । सर्व-भूत अग्नि मनुष्यों के बीच निहित हैं । उन अभीष्टवर्षी अग्निको लक्ष्य करके हमने यह सब सवन किया है ।

२१ सारे मनुष्यों में निहित और सर्व-भूत अग्नि विश्वामित्र द्वारा अनवरत प्रदीप्त होते हैं । हम उनका अनुग्रह प्राप्त करके यज्ञार्ह अग्निका अभिलषणीय अनुग्रह प्राप्त करें ।

२२ वलवान् और शोभन कर्मवाले अग्नि, तुम सदा बिहार करते-करते हमारे यज्ञ को देवों के पास ले जाओ । देवों के बुलानेवाले अग्नि, हमें अन्न दो । अग्नि, हमें महान् धन दो ।

२३ अग्नि, स्तोत्रों को अनेक कर्मों के हेतुभूत और घेनुप्रदात्री भूमि हमें, चिर काक, दो । हमारे वंश का विस्तार करनेवाला और सन्तति-जनयिता एक पुत्र उत्पन्न हो । अग्नि, हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो ।

२ सूक्त । वैश्वानर अग्नि दधता । जगती छन्द ।

वैश्वानराय घिषणामृतावृधे घृतं न पूतमग्नये जनामसि ।  
 त्रिता होतारं मनुष्यं वाधनो धिया रथं न कुलिशः समुवति ॥ १ ॥  
 सरोच्यज्जनुपा रोदसी उभे स मात्रोरमघत् पुतर्द्वयः ।  
 द्रव्यपाललक्षिरज्जश्चनाहितो दूलभो विशामतिथिर्विभावसुः ॥ २ ॥  
 भूत्या दक्षस्य तरुणो विधर्मणि देवासो अग्निं जनयन्त चित्तिभिः ।  
 रुचानं भानुना ज्योतिषा महामत्यं न वाजं सनिष्यन्नुपपन्न वे ॥ ३ ॥  
 आ मन्द्रस्य सनिष्यन्तो वरेण्यं वृणीमहे मह्यं वाजमृग्मियम् ।  
 राति भृगूणामुशिजं कविक्रतुमग्निं राजन्तं दिव्येन शोचिषा ॥ ४ ॥  
 अग्निं सुज्ञाय दधिरे पुरोजना वाजश्रवसमिह वृकवर्हिषः ।  
 यतस्तु च । सुरुचं विश्वदेव्यं रुद्रं यज्ञानां साधर्विष्टमपसाम् ॥ ५ ॥  
 पावकशोचे तव हि क्षयं परि होतर्घषेषु वृकवर्हिषो नरः ।  
 अग्ने दुव इच्छमानास आप्यमुपासते द्रविणं धेहि तेभ्यः ॥ ६ ॥  
 आ रोदसी अपृणदास्वर्महज्जातं यदेनमपसो अधारयन् ।  
 सो अश्वराय परि णीयते कविरत्यो न वाजसातये चनोहितः ॥ ७ ॥

१ हम यज्ञ-यज्ञक वैश्वानरको छन्द करके विशुद्ध घृतकी तरह प्रसन्नता-दायक स्तुति करेंगे । जैसे कुठार रथका संस्कार करता है, वैसे ही मनुष्य और श्रुतिवक् लोग देवोंको बुलानेवाले गार्हपत्य और आहवनीय, इन दो प्रकारके कर्षोवाले अग्निका संस्कार करते हैं ।

२ जन्मके साथ ही वह आवापृथिवीको प्रकाशित करते हैं । वह पिता-माताकी प्रशंसाके अनुकूल पुत्र हुए थे । इन्द्रवाही, जरा-रहित, अन्नदाता, अहिंसित और प्रभावशाली अग्नि मनुष्योंके, अतिथिके समान, पूज्य हैं ।

३ ज्ञानी देवता लोग विपदसे उद्धार करनेवाले बलके द्वारा यज्ञमें अग्निको उत्पन्न करते हैं । जैसे भार-वाही अश्वकी स्तुति करता है, वैसे ही अन्नाभिलाषी होकर दीप्तिमान् तेजके द्वारा प्रकाशमान और महान् अग्निकी स्तुति करता है ।

४ हम स्तुति-योग्य वैश्वानरके ओष्ठ, कण्ठा-रहित और प्रशंसनीय अन्नके अभिलाषी होकर शृगु-वर्षियोंके अभिलाषप्रद, अभिलषणीय, प्रज्ञावान् और स्वर्गीय दीप्तिके द्वारा शोभावाले अग्निका भजन करता हैं ।

५ छलकी प्राप्तिके लिये श्रुतिवक् लोग कुण्डको फैलाकर और लुकको उठाकर अन्नदाता, अतीव प्रकाशक, सारे देवोंके हितेयी, दुःखनाशक और यजमानोंके यज्ञ-साधक अग्निकी स्तुति करते हैं ।

६ पवित्र दीप्तिवाले और देवोंको बुलानेवाले अग्नि, तुम्हारी सेवाके अभिलाषी यजमान लोग यज्ञमें कुण्ड फैलाकर तुम्हारे योग्य माग-गृहकी सेवा करते हैं । उन्हें घन दो ।

७ अग्निने आवापृथिवी और विशाल आकाशको भी पूर्ण किया था । यजमानोंने इन नवजात अग्निकी धारण किया था । सर्वत्र व्याप्त और अन्नदाता यही अग्नि, अश्वकी तरह अन्न लाभके लिये, लाये जाते हैं ।

नमस्यत हव्यदाति स्वध्वरं दुवस्यत दम्यं जातवेदसम् ।  
 रथीश्वरं तस्य बृहतो विचर्पणिरग्निदवानामभवत् पुरोहितः ॥८॥  
 तिस्रो यद्वस्य समिधः परिज्यनोश्च रघुननुशिजो अमृत्यवः ।  
 तासामेका मदधुमस्य भुजमुलोकमुद्रे उप जामिमीयतु ॥९॥  
 विशां कविं विशपतिं मानुषीरिषः संसीमकुरवन्त्स्वधितिं न तेजसे ।  
 स उद्वसो निवतो याति वेविपत् स गर्भमेष्टु भुवनेषु दीधरत् ॥१०॥  
 स जित्वते जठरेषु प्रजक्षिषान्वृषा चित्रेषु नानदन्नं सिंहः ।  
 वैश्वानरः पृथुपाजा अमर्त्यावसु रत्ना दयमानो वि दाशुषे ॥११॥  
 वैश्वानरः प्रत्नथानाकमारुहद्विष्टं भन्दमानः सुमन्मसिः ।  
 स पूर्ववज्जनयञ्जन्तवे धनं समानमज्जं पर्येति जागृविः ॥१२॥  
 ज्ञाताधानं यक्षियं विप्रमुक्थ्य मायं दधे मातरिश्वा दिविक्ष्यम् ।  
 तं चिज्यामं हरिकेशमीमहे सुदीतिमग्निं सुविताय नव्यसे ॥१३॥  
 कुचिं न यामं निपिरं स्वहृशं केतुं दिवो रोचनस्थामुपबुधम् ।  
 अग्निं सूर्यान् दिवो अप्रतिष्कृतं तमीमहे नमस्ता वाजिनं बृहत् ॥१४॥

८ नेता और महान् यज्ञके दर्शक जो अग्नि देवोंके सम्मुख उपस्थित हुए थे, उन्हीं हव्यदाता, शोभन यज्ञवाले, गृहके हितैषी और सर्वभूतज्ञता अग्निकी पूजा और परिचर्या करो ।

९ अमर देवोंने अग्निकी इच्छा कश्चे महान् और जगद्व्यापी अग्निकी पार्थिव, वैद्युत्तिक और सूर्यरूप तीन मूर्तियोंको घोषित किया था । उन्होंने तीनों मूर्तियोंमेंसे जगद्व्यापिका पार्थिव मूर्तिको मर्त्यलोकमें रखा, दीव जो अन्तरीक्षमें गयी ।

१० घनाभिलाषी प्रजाओंने अपने प्रभु मेधावी अग्निको तलवारकी तरह सीखी करनेके लिये संस्कृत किया था । वह उन्नत और निम्न प्रदेशोंको व्याप्त करके गमन करते और सारे भुवनोंका गर्भ धारण करते हैं ।

११ नवजात और अभीष्टवर्षी वैश्वानर अग्नि नाना स्थानोंमें सिंहकी तरह गजंन करके अनेक जठरोंमें बहित होते हैं । वह अत्यन्त तेजस्वी और अमर हैं । वह यजमानको रमणीय वस्तु प्रदान करते हैं ।

१२ स्तोताओं द्वारा स्तुति किये जानेवाले वैश्वानर अग्नि चिरन्तनकी तरह अन्तरीक्षकी पीठ—स्वर्ग—पर चढ़ते हैं । प्राचीन ऋषियोंके सद्यः यजमानोंको धन देकर वह लागरुह होकर देवोंके साधारण मार्गपर, सूर्य रूपसे, भ्रमण करते हैं ।

१३ चलवान्, यज्ञार्ह, मेधावी, स्तुतियोग्य और अलोक-वासी जिन अग्निको धुलोकसे काकर वायुने पृथिवी पर स्थापित किया है, इस उन्हीं नाचा गतिवाले, पिङ्गलवर्ण किरणसे युक्त और प्रकाशमान अग्निसे नया धन चाहते हैं ।

१४ प्रदीप्त, यज्ञमें गमनकारी, सारे पदार्थोंके ज्ञानभूत, धुलोकके पताका-स्वरूप, सूर्यमें अवस्थित, उषाकालमें जाग, रुक, अन्नवान् और महान् अग्निकी, स्तोत्र द्वारा, याचना करता है ।

मन्द्रं होतारं शुचिमद्वयाचिनं दमूनसमुवध्यं विश्ववर्पणिम् ।  
रयं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुहितं सदमिद्राय ईमहे ॥१५॥



३ सूक्त । वैश्वानर अग्नि देवता । जगती छन्द ।  
वैश्वानराय पृथुपाजसे विपो रत्ना विधन्त धरुणेषु गातवे ।  
अग्निहि देवाँ अमृतो दुधस्यत्यथा धर्माणि सनता न दूदुषत् ॥१॥  
अन्तर्दूतो रोदसी दस्म ईयते होता निपत्तो मनुषः पुरोहितः ।  
क्षयं वृहन्तं परिभूषति शु मिर्दधेमिरग्निरिपितो धियावसुः ॥२॥  
केतुं यक्षानां विदधस्य साधनं विप्रासो अग्निं महयन्त चित्तिभिः ।  
अपांसि यस्मिन्नघिसन्धुर्गिरस्तस्मिन्सुम्नानि यजमान आचके ॥३॥  
पिता यतानामसुरो विपश्चितां विमानमग्निर्वैशुनं च वाधताम् ।  
आ विवेश रोदसी भूरिर्वर्षा पुरुप्रियो भन्दते धामभिः कविः ॥४॥  
चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं हरिष्यतं वैश्वानरमप्सुषदं स्वर्विदम् ।  
विगाहं तूणिं तविपीमिरावृतं भूणिं देवास इह सुश्रियं दधुः ॥५॥

१५ स्तोत्र, देवाङ्गानकारी, सर्वदा बुद्ध, अकुटिल, दाता, श्रेष्ठ, विश्वदर्शक, रथकी तरह नाना वर्णवाले, ईर्ष्या-  
भीष कपवाले और मनुष्योंके सदा कल्याणकर्ता उन अग्निदेवके पास मैं धनकी याचना करता हूँ ।

१ मेवासी स्तोता लोग, सन्मार्गकी प्राप्तिके लिये, बहु-बलशाली वैश्वानरको लक्ष्य कर यज्ञमें रमणीय स्तोत्रोंका  
पाठ करते हैं । अमर अग्नि हव्य प्रदानके द्वारा देवोंकी परिचर्या करते हैं । इसलिये कोई सनातन यज्ञको तूषित नहीं  
कर सकता ।

२ यज्ञोत्थ होता अग्नि, देवोंके दूत होकर, धावापृथिवीके बीच जाते हैं । देवों द्वारा प्रेरित धीमान् अग्नि  
यजमानके सामने स्थापित और उपविष्ट होकर महान् यज्ञ-गृहको अलंकृत करते हैं ।

३ मेवासी लोग यज्ञके केतु-स्वरूप और यज्ञके साधनभूत अग्निको अपने वीर कर्म द्वारा पूजित करते हैं । जिन  
अग्निमें स्तोता लोग अपने-अपने करने योग्य कर्मोंको अर्पण करते हैं, उन्हीं अग्निसे यजमान सखी आशा करते हैं ।

४ यज्ञके पिता, स्तोताओंके बलदाता, श्रुतिवर्कोंके ज्ञानहेतु और यज्ञादि कर्मोंके साधनभूत अग्नि पार्थिव और  
बेधुसादि रूपके द्वारा धावापृथिवीमें प्रवेश करते हैं । अत्यन्त प्रिय और तेजस्वी अग्नि यजमान द्वारा स्तुत होते हैं ।

५ आह्लादक, आह्लादजनक रथवाले, पिङ्गलवर्ण, जलके बीच भिवास करनेवाले, सर्वज्ञ, सर्वत्र व्याप्त, शीघ्र-  
गामी, बलशाली, सर्वा और क्षीतिवाले वैश्वानर अग्निको देवोंने इस लोकमें स्थापित किया है ।

अग्निर्देवेभिर्मनुष्यश्च जन्तुभिस्तन्वानो यज्ञं पुरुपेशसं धिया ।  
 रथीरन्तरीयते साधद्विष्टिभिर्जीते दम्ना अभिशस्तिन्वातनः ॥६॥  
 अग्ने जरस्व स्वपत्य आयून्यूजां पिन्वस्व तमिपा दिदोहि नः ।  
 वयांसि जिन्व वृद्धश्च जागृव उशिग्देवानामसि सुक्रतुर्विपाम् ॥७॥  
 विष्पतिं यद्वमतिधिं नरः सदा यन्तारं धीनामुशिजं च वाघताम् ।  
 अध्वराणां चेतनं जातवेदसं प्रशंसन्ति नमसा जूतिभिर्वृधे ॥८॥  
 विभावा देवः सुरणः परिक्षितीरग्निर्वभूव शवसा सुमद्रथः ।  
 तस्य व्रतानि भूरिपोषिणो वयमुपभूषेम दम आ सुवृक्किभिः ॥९॥  
 वैश्वानर तव धामान्याचके येभिः स्वर्विदभवो विवक्षुः ।  
 जात आपृणो भुवनानि रोवसी अग्ने ता विश्वा परिभूरसि त्मना ॥१०॥  
 वैश्वानरस्य दंसनाभ्यो बृहदरिणादेकः स्वपत्यया दधिः ।  
 उभा पितरा मक्ष्यन्जयताग्निर्द्यावापृथिवी भूरिरेतसा ॥११॥



६ जो यज्ञ-साधक देवों और ऋत्विगोंके साथ कर्म द्वारा यजमानके नानाविध यज्ञोंका सम्पादन करते हैं, जो नेता, शीघ्रगामी, दानशील और शत्रुओंके नाशक हैं, वही अग्नि द्यावापृथिवीके बीच जाते हैं ।

७ इस सपुत्र और दीर्घ आयु प्राप्त करेंगे; इसलिये, हे अग्नि, तुम देवोंकी स्तुति करो । अन्न द्वारा उन्हें प्रीत करो । हमारे घाम्यके लिये मली भौंति वृष्टिको संचालित करो । अन्न दान करो । सदा जागरण-शील अग्नि, तुम महान् यजमानको अन्न दो; क्योंकि तुम सुकर्मा और देवोंके प्रिय हो ।

८ मनुष्योंके पति, महान्, अतिथि-भूत, वृद्धि-नियन्ता, ऋत्विगोंके प्रिय, यज्ञके ज्ञापक, वेगयुक्त और सर्वभूतश अग्निही, नेता लोग, समृद्धिके लिये, नमस्कार और स्तुतिके द्वारा, प्रशंसा करते हैं ।

९ दीप्तिमान्, स्तूयमान, कमनीय और सुन्दर रथवाले अग्नि बलके द्वारा सारी प्रजाको व्याप्त करते हैं । इस अनेकोंके पालक और गृहमें निवासी अग्निके सारे कर्मोंको, सुन्दर स्तोत्र द्वारा, प्रकाशित करेंगे ।

१० विश्व वैश्वानर, तुम जिस तेजके द्वारा सर्वज्ञ हुए हो, मैं तुम्हारे उसी तेजका स्तव करता हूँ । जन्मके साथ ही तुम द्यावापृथिवी और सारे भुवनोंको व्याप्त कर डालते हो । अग्नि, तुम अपने सारे भूतोंको व्याप्त करते हो ।

११ वैश्वानरके सन्तोषजनक कर्मसे महान्-घन होता है; क्योंकि वह सुन्दर यज्ञ आदि कर्मकी इच्छासे यजमानोंको घन देते हैं । वह वीर्यशाली हैं । पिता-माता द्यावा-पृथिवीकी पूजा करते हुए उत्पन्न हुए हैं ।

४ सूक्त । आसी देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

समित समित् सुमना बोध्यस्मे शुचा शुचा सुमतिं रासि वरुणः ।  
 आ देव देवान्यजथाय वक्षि सखा सखीन्सुमना यक्ष्यग्ने ॥१॥  
 यं देवास खिरदन्नायजन्ते दिवेदिवे वरुणो मित्रो अग्निः ।  
 सेमं यज्ञं मधुमन्तं कृषीं नस्तनूनपाद्घृतयोनिं विधन्तम् ॥२॥  
 प्र दीधितिर्विश्वावारा जिगाति होतारमिहः प्रथमं यजध्यै ।  
 अच्छा नमोभिवृषमं वन्दध्यै स देवान्यक्षद्विपितो यजीयान् ॥३॥  
 ऊर्ध्वो वां गानुरध्वरे अकार्यूर्ध्वं शोचींषि प्रस्थिता रजांसि ।  
 दिवो वा नाभा न्यसादि होसा स्तुणीमहि देवव्यचा विर्बाहिः ॥४॥  
 सप्त होत्राणि मनसा धृषाना इन्वन्तो विश्वं प्रति यन्नुतेन ।  
 नृपेशतो विदथेपु प्रजाता अभीमं यज्ञं चिचरन्त पूर्वीः ॥५॥  
 आ मत्त्वमाने उपसा उपाके उत स्मयेते तन्वा विरूपे ।  
 यथा नो मित्रो वरुणो जुजोषदिन्द्रो मरुत्स्वा उत वा महोभिः ॥६॥

१ हे समिद्ध अग्नि, अनुकूल मनसे जागो । तुम अतीव गतिशील तेजसे युक्त होकर हमारे ऊपर धनके लिये अनुग्रह करो । द्योतमान अग्नि, देवोंको तम यज्ञमें ले आओ । अग्नि, तुम-देवोंके सखा हो । अनुकूल मनसे मित्र देवोंका यज्ञ करे ।

२ वरुण, मित्र और अग्नि जिन तनूनपात् नामक अग्निका, प्रतिदिन तीन बार करके, यज्ञ करते हैं, वही हमारे इस जल-कारण यज्ञको धृष्टि आदि फल दें ।

३ देवोंके आह्वानकारी अग्निके पास सर्वजन-प्रिय स्तुति गमन करे । इला, प्रसन्नता उत्पन्न करनेके लिये, प्रधान, असीव अभीष्टवर्षी और धन्वनीय अग्निके पास जायँ । यज्ञकर्ममें कुशल अग्नि, हमारे द्वारा प्रेरित होकर यज्ञ करें ।

४ अग्नि और बहिरूप अग्निके लिये यज्ञमें एक उन्नत मार्ग लिया हुआ है । दीप्तियुक्त हव्य ऊपर जाता है । दीप्तिमान् यज्ञ-गृहके नाभिप्रदेशमें होता उपविष्ट हैं । हम देवोंके द्वारा व्याप्त कुशको विज्रांवेगे ।

५ जल द्वारा संसारके प्रसन्नकर्त्ता देवता लोग सप्त यज्ञमें जाते हैं । वे अकपट चित्तमे याचित होकर नररूपी यज्ञजात ( अग्निरूप यज्ञ-द्वार-द्वय ) प्रत्यक्ष होकर हमारे इस यज्ञमें आवें ।

६ स्तूयमान अग्नि-रूप रात और दिन, परस्पर-संगत होकर अथवा पृथक् रूपसे, सशरीर प्रकाशित होकर आवें । मित्र, वरुण अथवा इन्द्र हमें जिस रूपसे अनुगृहीत करते हैं, तेजस्वी होकर, उसी रूपको धारण करें ।

देव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जं सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।  
 ऋतं शंसन्त ऋतमित्तआहुरनु व्रतं व्रतपा दीव्यानाः ॥७॥  
 आ भारती भारतीभिः सजोषा इला देवैर्मनुष्येमिरग्निः ।  
 सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्वह्निरेदं सवन्तु ॥८॥  
 तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।  
 यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्त्यावा जायते देवकामः ॥९॥  
 वनस्पतेव सृजोप देवानग्निर्हविः शमिता सूदयाति ।  
 सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥१०॥  
 आयाह्यग्ने समिधानो अर्वाङ्निर्देण देवैः सरथं तुरेभिः ।  
 बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥११॥



५ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्रत्यग्नि स्वसश्चेकितानो बोधि विप्रः पदवीः कवीनाम् ।

पृथुपांजा देवयज्ञिः समिद्धोपद्वारा तमसो वहिरावः ॥१॥

७ मैं दिव्य और प्रबल अग्निरूप दोनों होताओंको प्रसन्न करता हूँ । यज्ञामिलायी, सप्त और अन्नबान् श्रुतिवक् लोग हव्य द्वारा अग्निको प्रमत्त करते हैं । व्रतके रक्षक और दीप्तिशाली श्रुतिवक् लोग प्रत्येक व्रतमें यज्ञरूप अग्निको यह वास धोलते हैं ।

८ भारती लोगों ( सूर्य-सम्बन्धियों ) के साथ अग्नि-रूप भारती आवें, देवों और मनुष्योंके साथ इला आवें, अग्नि भी आवें । सारस्वतगणों ( अन्तरीक्षरूप वचनों ) के साथ सरस्वती भी आवें । ये तीनों देवियाँ आकर सब मनुष्य कुशपर बैठें ।

९ अग्निरूप स्वष्टा देव, जिससे वीर, कर्मकुशल, बलशाली, सोमामिषवके लिये प्रस्तर-हस्त और देवामिलायी पुत्र उत्पन्न हो सके, सन्तुष्ट होकर तुम हमें वैसा ही प्राण-कुशल और पुष्टिकारी वीर्य प्रदान करो ।

१० अग्निरूप वनस्पति, तुम देवोंको पास ले आओ । पशुके संस्कारक अग्नि ( वनस्पति ) देवोंके लिये हव्य दे । ये ही यज्ञ-रूप देवता लोगोंको बुलानेवाले अग्नि यज्ञ करें; क्योंकि ये ही देवोंका जन्म जानते हैं ।

११ अग्नि, तुम दीप्ति-युक्त होकर इन्द्र और भीमताकारी देवोंके साथ एक रथपर हमारे सामने आओ । सपुत्र-युक्ता अदिति हमारे कुशपर बैठें । नित्य देवगण अग्निरूप स्वहाकारवाले होकर तृप्ति प्राप्त करें ।

१ अग्नि उपाको जानते हैं । मेधावी अग्नि ज्ञानियोंके मार्गपर जानेके लिये जागते हैं । अत्यन्त तेजस्वी अग्नि देवामिलायी व्यक्तियोंके द्वारा प्रदीप्त होकर अज्ञानका द्वार उदुचाटित करते हैं ।

प्रेक्षाप्रर्वावृधे स्तोमेभिर्गोभिः स्तोतॄणां नमस्य उक्थैः ।  
 पूर्वोऽस्तस्य सन्दूशश्चकानः सन्दूतो अद्यौ दुपसो विरोके ॥२॥  
 अधाव्यग्निर्मानुषीषु विक्ष्वपां गर्भो मित ऋतेन साधन ।  
 आ ह्यतो यजतः सान्वस्थादभूदु विप्रो हव्यो मतीनाम् ॥३॥  
 मित्रो अग्निर्मवति यत् समिद्धो मित्रो होता वरुणो जातवेदाः ।  
 मित्रो अधव्युरिपिरो दमूना मित्रः सिन्धूनामुत पर्वतानाम् ॥४॥  
 पाति प्रियं रिपो अग्रं पदं वेः पाति यहश्चरणं सूर्यस्य ।  
 पाति नामा सप्तशीर्षाणमग्निः याति देवानामुपमादमृष्वः ॥५॥  
 ऋभुश्चक्र ईळ्यं चारु नाम विश्वानि देवो वयुनानि विद्वान् ।  
 ससस्य चर्म घृतवत् पदं वेस्तद्विद्वशी रक्षत्यप्रयुच्छन् ॥६॥  
 आ योनिमग्निर्घृतवन्तमस्थात् पृथुप्रमाणमुशन्तमुशानः ।  
 दीधानः शुचिर्ऋष्वः पावकः पुनः पुनर्मार्तरानव्यसीकः ॥७॥  
 सद्योजात ओषधीभिर्ववक्षे यदी वर्धन्ति प्रस्वो घृतेन ।  
 आप इव प्रवता शुभममाना उरुष्यदग्निः पित्रोरुपस्थे ॥८॥

२ पूज्य अग्नि स्तोताओंके स्तोत्र, वाक्य और मंत्र द्वारा बुद्धि पाते हैं। देव-दूत अग्नि अनेक यज्ञोंमें बोधि प्राप्त करनेकी इच्छासे प्रातःकाल प्रकाशित होते हैं।

३ यज्ञमार्गोंके मित्र, यज्ञके द्वारा अभिकाषा पूरी करनेवाले और जलके पुत्र अग्नि मनुष्योंके बीच स्थापित हुए हैं। अग्नि स्पृहणीय और यजनीय हैं। वह उन्नत स्थानपर बैठे हैं। शानी अग्नि स्तोताओंकी स्तुतिके योग्य हुए हैं।

४ जिस समय अग्नि समिद्ध होते हैं, उस समय मित्र बनते हैं। वही, मित्र हो, होता और सर्वज्ञ वरुण हैं। वही, मित्र हो, दानशील अधव्यु और प्रेरक वायु हैं। वह नदियों और पर्वतोंके मित्र हैं।

५ छन्दर अग्नि सर्वव्याप्त पृथिवीके प्रिय स्थानकी रक्षा करते हैं। महान् अग्नि सूर्यके विहरण-स्नान अन्तरीक्षकी रक्षा करते हैं। अन्तरीक्षके बीच मन्त्रोंकी रक्षा करते हैं। वह देवोंके प्रसन्नता-कारक यज्ञकी रक्षा करते हैं।

६ महान् और सारे ज्ञातव्योंके ज्ञाता अग्नि प्रशंसनीय और छन्दर जल उत्पन्न करते हैं। अग्निके निद्रित रहनेपर भी इनका चर्म या रूप क्षीयमान रहता है वही अग्नि सावधानीसे उसकी रक्षा करते हैं।

७ क्षीयमान्, विशेष रूपसे सृष्ट और स्वस्थान-प्रिय अग्नि अचिरहु हुए हैं। क्षीयमान्, शुद्ध, महान् और पवित्र अग्नि पिता-माता धावापृथिवीको नवीनतर करते हैं।

८ जन्म लेते ही अग्नि ओषधियों द्वारा घृत होते हैं। उस समय पथ-प्रवाहित जलकी तरह क्षोभित ओषधियाँ जल द्वारा बर्द्धित होकर फल देती हैं। पिता-माता धावापृथिवीके कोङ्गमें बड़कर अग्नि हमारी रक्षा करे।



उदुष्टुः समिधा यतो अद्यौर्ध्वमन्दिवो अधिनामा पृथिव्याः ।  
 मित्रो अग्निरीड्यो मातरिश्वा दूतो वक्ष्यजथाय देवान् ॥६॥  
 उदस्तम्भीत् समिधा नाकमृष्वोऽग्निर्मधन्नुत्तमो रोचनानाम् ।  
 यदी भृगुभ्यः परिश्वा मातरिश्वा गुहासन्तं हव्यवाहं समीधे ॥१०॥  
 इलामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।  
 स्यान्नः सनुस्तनयो विजाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥११॥

६ सूक्त । अग्नि देवता । त्रिष्टुप् छन्द ।

प्र कारवो मनना वक्ष्यमाना देवद्रीचीं नयत देवयन्तः ।  
 दक्षिणावाद्वाजिनी प्राच्येति हविर्मरन्त्यग्रये घृताची ॥१॥  
 आ रोदसी अपृणा जायमान उत प्र रिक्था अध नु प्रयज्यो ।  
 दिवश्चिदग्ने महिना पृथिव्या वक्ष्यन्तां ते वह्नयः सतजिह्वाः ॥२॥  
 द्यौश्च त्वा पृथिवी यज्ञियास्तो नि होतारं सादयन्ते दमाय ।  
 यदी विशो मानुषीर्देवयन्तीः प्रयस्वतीरीलक्षे शुक्रमर्चिः ॥३॥

६ हमारे द्वारा स्तुत और दीप्ति द्वारा महान् अग्निने पृथिवीकी नामि वा उत्तर वेदीपर स्थित होकर अन्तरीक्षको प्रकाशित किया है । सबके मित्र और स्तुति-योग्य अग्नि-प्रदीप्त अग्नि देवोंके दूत होकर यज्ञमें देवोंको बुलावें ।

१० जिस समय मातरिश्वाने भृगुओं वा आदित्य-रश्मियोंके लिये गुहास्थित और हव्य-वाहक अग्निको प्रज्वलित किया था, उस समय तेजस्विनोंमें श्रेष्ठ महान् अग्निने तेज द्वारा स्वर्गको स्तब्ध किया था ।

११ अग्नि, तुम स्तोत्राको अनेक कर्मोंके हेतु भूत और धेनु-प्रदात्री भूमि सदा प्रदान करो । हमारे वंशका विस्तारक और सन्तति-जनयिता एक पुत्र हो । हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो ।

१ यज्ञकर्त्ता लोग, तुम सोमामिलायी हो । मंत्र द्वारा प्रेरित होकर तुम देवार्चन-साधक खुक् ले आओ । जिसे आहवनीय अग्निकी दक्षिण दिशामें ले जाया जाता है, जिसके अन्न है, जिसका अन्न भाग पूर्व दिशामें है और जो अग्निके लिये अन्न धारण करता है, वही घृतयुक्त खुक् जाता है ।

२ जन्मके साथ ही तुम द्यावापृथिवीको पूर्ण करो । याग-योग्य, महिमा द्वारा तुम अन्तरीक्ष और पृथिवीसे प्रकृष्टतर होओ और तुम्हारे अंशभूस विशिष्ट अग्नि—सप्त जिह्वाएँ पूजित हों ।

३ अग्नि, तुम होवा हो । जिस समय देवामिलायी और हव्य-युक्त मनुष्य तुम्हारे दीप्त तेजकी स्तुति करते हैं, उस समय अन्तरीक्ष, पृथिवी और यज्ञार्ह देवगण, यज्ञ-सम्पादनके लिये, तुम्हारी स्तुति करते हैं ।

महान्तसधस्थे ध्रुव आनियत्तोन्तर्द्यावा माहिने हर्यमाणः ।  
 आह्नो सपत्नी अजरे अमृक्ते सवर्द्धुघे उरुगायस्य धेनू ॥४॥  
 व्रताते अग्ने महतो महानि तव कृत्वा रोदसी आततन्थ ।  
 त्वं दूतो अभवो जायमानस्त्वं नेता वृषभ चर्पणीनाम् ॥५॥  
 ऋतस्य वा केशिना योग्याभिर्घृतस्तुवा रोहिता घुरि धिष्व ।  
 अथा वह देवाभ्येद विश्वान्तस्चध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥६॥  
 दिवश्चिवाते रुचयन्त रोका उपो विभातोऽनु भासि पूर्वीः ।  
 अपो यदग्नयश्चध्वनेषु होतुर्मन्दस्य पनयन्त देवाः ॥७॥  
 उरौ वा ये अन्तरिक्षे मदन्ति दिवो वा ये रोचने सन्ति देवाः ।  
 ऊमा वा ये सुहवालो यजता आशेमिरे रथ्यो अग्ने अश्वाः ॥८॥  
 ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्पाङ् नाना रथं वा विभवो ह्यश्वाः ।  
 पत्नीवत्स्त्रिंशतं वीध्वं देवाननुष्व धमावह मादयस्व ॥९॥  
 स होता यस्य रोदसी चिदुर्वो यज्ञं यज्ञमभिवृधे गृणीतः ।  
 प्राची अश्वरेव तस्थतुः सुमेके ऋतावरी ऋतजातस्य सत्ये ॥१०॥

४ महान् और यजमानोंके प्रिय अग्नि, धावापृथिवीके पीच, महिमावाले अपने स्थान पर, बैठे हैं। आह्नमण-शीला, सपत्नीभूता, जरातहिता, अहिंसिता और क्षीरप्रसविनी धावापृथिवी अत्यन्त गमन-शील अग्निकी गाथें हैं।

५ अग्नि, तुम सर्वोत्कृष्ट हो। तुम्हारा कर्म महान् है। तुमने यज्ञ द्वारा धावापृथिवीको विस्तृत किया है। तुम वृत्त हो। अमोष्ठवर्षी अग्नि, उत्पन्न होनेके साथ ही तुम यजमानके नेता बनो।

६ पृथिमान् अग्नि, प्रयत्न केशवाले, रज्जुयुक्त और घृतसाधी रोहित नामक दोनों घेड़ोंको यज्ञके सम्मुख योजित करो। अनन्तर तुम सारे देवोंको बुलाओ। सर्वभूषण, तुम उन्हें सुन्दर यज्ञ-युक्त करो।

७ अग्नि, जिस समय तुम वनमें जलका शोषण करते हो, उस समय सूर्यसे भी अधिक तुम्हारी दीप्ति होती है। तुम भरी माँसि प्रकाशमान पुरातन उपाके पीछे शोभित होते हो। स्तोता लोग स्तुतियोग्य होता अग्निकी स्तुति करते हैं।

८ विस्तीर्ण अन्तरीक्षमें जो देवगण हष्ट हैं, आकाशकी दीप्तिमें जो सब देवता हैं, 'उम' संज्ञक जो यजनीय पितर लोग भली माँसि आहूत होकर आगमन करते हैं, रथी अग्निके जो सब अश्व हैं—

९ अग्नि, उक्त सब देवोंके साथ एक रथ अथवा नावा रथोंपर चढ़कर हमारे सामने आओ; क्योंकि तुम्हारे अश्वगण समर्थ हैं। ३३ देवोंको, उनकी स्त्रियोंके साथ; अन्नके लिये, ले आओ और सोम द्वारा हष्ट करो।

१० विशाल धावापृथिवी, प्रत्येक यज्ञमें, समृद्धिके लिये, जिन अग्निकी प्रशंसा करती हैं, वे ही देवोंके होता हैं। सूर्या, जलवती और सत्यस्वरूपा धावापृथिवी, यज्ञकी तरह, सत्यसे उत्पन्न होता अग्निके अनुकूल हैं।

इलामग्नो पुरुवंस सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।  
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्नो सा ते सुमतिर्भूस्वस्मे ॥११॥



११ अग्नि, तुम स्तोताको अनेक कर्मोंके हेतुभूत और धेनुवात्री भूमि सदा दो । हमारे वंशका बिस्तार और सन्ततिजनयिता एक पुत्र दो । अग्नि, हमारे प्रति तुम्हारा अनुग्रह हो ।

अष्टम अध्याय समाप्त



द्वितीय अष्टक समाप्त



# “ऋग्वेद-संहिता”

( हिन्दी-टीका-सहित )

तृतीय अष्टक छप रहा है

द्वितीय अष्टक छप गया

प्रथम अष्टकका मूल्य २) रु०, द्वितीय अष्टकका भी २) रु०

अत्यन्त सरल हिन्दीमें सम्पूर्ण ऋग्वेदका सरल-सुन्दर अनुवाद

प्रत्येक पृष्ठमें मार्मिक सूचनाएँ

मूलके साथ-साथ शुद्ध हिन्दीमें मनोहारिणी टीका

और विस्तृत गवेषणापूर्ण टिप्पनियाँ

हिन्दूजातिकी संस्कृति और सभ्यताका अध्ययन कोजिये

वेदोंकी ज्ञान-गङ्गामें अकगाहन कर पवित्र होनेका ऐसा छुयोग फिर न मिलेगा  
आठ आने पेशगी भेजकर “वैदिकपुस्तक-माला”के तुरन्त स्थायी ग्राहक बन जाइये

स्थायी ग्राहकोंसे डाकखर्च नहीं लिया जायगा

इस कार्यके लिये संसार भरकी भाषाओंमें ऋग्वेदके सम्बन्धमें जितनी पुस्तकें, निबन्ध-ग्रन्थ और  
आलोचना-ग्रन्थ छपे हैं, उन सबका संग्रह कर लिया गया है। वेदोंके अनेक अधिकारी  
विद्वान और सिद्धहस्त हिन्दी-लेखक इस विशाल अनुवाद-यत्नमें लगे हुए हैं

६) रु० वार्षिक भेजकर “गंगा”का ग्राहक बननेवालोंको वेदकी  
पुस्तकोंपर डाकखर्च नहीं देना होगा

**अर्थ सनातनधर्मानुकूल है**

—“गंगा”—कार्यालय, कृष्णगढ़, उलतानगञ्ज, आगलपुर

## हिन्दीकी सर्वश्रेष्ठ पत्रिका 'गंगा' इसलिये है कि,

- १—संसारके जितने बड़े-बड़े विद्वान् "गंगा"में लिखते हैं, उतने हिन्दीकी किसी भी पत्रिकामें नहीं,
- २—"गंगा"की जैसी सजावट और कम्पोजीशन होता है, वैसा हिन्दीकी किसी भी पत्रिकाका नहीं,
- ३—हिन्दूत्वके मूल—हिन्दूसभ्यता, प्राचीनतम इतिहास, संस्कृति, संस्कृत-साहित्य और हिन्दूधर्म—पर "गंगा"में जितने लेख निकलते हैं, उतने किसी भी पत्रिकामें नहीं,
- ४—विश्वविदित विद्वानोंने "गंगा" और उसके अद्वितीय "वेदाङ्क"की जितनी प्रशंसा की है, उतनी हिन्दीकी किसी भी पत्र-पत्रिका और पुस्तककी नहीं।

### कुछ प्रशंसाएँ पढ़िये—

१—देशपूज्य और बिहार-रत्न बाबू राजेन्द्रप्रसाद—"गङ्गाके लेख उच्च कोटिके होते हैं। इसमें बहुत गहन और रोचक विषयोंपर लेख छपा करते हैं। इसके विशेषाङ्क और भी मार्के होते हैं। प्रसन्नता होती है कि, बिहारकी ऐसी सर्वाङ्गसुन्दर पत्रिका इतनी सफलता प्राप्त कर रही है।"

२—सर जार्ज ए० प्रियर्सन (सरे, इङ्ग्लैण्ड)—"गङ्गाका 'वेदाङ्क' प्रत्यक्ष रूपसे एक नवस्वपूर्ण वस्तु है।"

३—डा० स्टेन कोनो पी-एच० डी० (नारवे)—"गङ्गामें बड़े हचिकर और सुपाठ्य प्रबन्ध रहते हैं।"

४—प्रो० रैप्सन एम० ए० (लण्डन)—"गङ्गा द्वारा प्राचीन भारतवर्षके साहित्य, इतिहास और पुरातत्त्वकी प्रगतिको आगे बढ़ाया जा रहा है।"

५—डा० वनेट एम० ए०, डी० लिट् (ब्रिटिश म्युजियम, लण्डन)—"वेदाङ्कका सम्पादन बड़ी योग्यतासे हुआ है।"

६—डा० ज्योटी स्टीन पी-एच० डी० (चेकोस्लोवेकिया)—"वेदाङ्कसे भारतकी प्राचीन संस्कृतिके प्रेमियोंको प्रज्ञा हो आनन्द मिलेगा।"

७—"ऋग्वेदिक इण्डिया"के लेखक डा० अचिनाशचन्द्र दास एम० ए०, पी-एच० डी० (कलकत्ता)—"वेदाङ्कके प्रकाशनका कार्य समस्त भारतवर्षमें अपने ढङ्गका एक ही है। खेद है कि, बङ्गला भाषामें ऐसा प्रकाशन अबतक नहीं हुआ है।"

८—श्रीयुत नारायण भवानराव पावगी (पूना)—"सम्पूर्ण वैदिक साहित्यमें 'वेदाङ्क'की समता रखनेवाला कोई भी ग्रन्थ नहीं है। इसपर गर्व होना चाहिये।"

९—भारत सरकारके "पुरातत्त्व-विभाग"के अन्येषक ए० हीरानन्द शास्त्री एम० ए०, एम० ओ० एल० (नौलगिरि)—"वेदाङ्कमें ऐसे मौलिक लेख हैं, जो अनुसन्धानके योग्य हैं।"

१०—पटियालाके इतिहास-कार्यालयाध्यक्ष ठाकुर किशोर सिंह बार्हलपत्य—"वेदाङ्ककी श्रेणीका विशेषाङ्क आजतक किसी मानिक पत्रिकाने नहीं प्रकाशित किया। 'वेदाङ्क'के सम्पादकीय विचार वेदोंके गहरे स्नाध्यायके निष्कर्ष हैं।"

११—राजा महेन्द्रप्रताप (बीनसे)—"गङ्गा भागीरथ-परिधमका फल है।"

"वेदाङ्क"का मूल्य २।। रु० है; परन्तु ५। रु० वार्षिक मूल्य भेजकर जो

"गङ्गा"के ग्रन्थ बनेंगे, उनको "वेदाङ्क" मुफ्त मिलेगा।

"गङ्गा"के प्राइमरको "ऋग्वेद-संहिता"का पूर्येक अष्टक बिना ढाकलचर्चके मिलता है।

मैनजर, गङ्गा, सुलतानगंज, भागलपुर

मुद्रक और प्रकाशक, मुन्शी नरेन्द्रनारायण, कृष्णगढ़, सुलतानगंज, भागलपुर।

